समर्पण

●

जिनके
सरल वात्सल्य
का सुन्दर और मधुर
विचार-पाथेय प्राप्त करके
हो अपने जीवन में ज्ञान—
साधना करता हूँ और जिनकी दया से
कुछ लिखने की क्षमता प्राप्त कर सका हूँ उन परम
श्रद्धेय जैनधर्म-दिवाकर साहित्यरत्न जैना-
गम रत्नाकर पावनचरण गुरुदेव
आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री
आत्मारामजी महाराज
के मंगल चरणों
में—

●

सभक्ति
सविनय
समर्पित

प्रस्तावना

मौलिक दृष्टि से मानव का इतिहास अहिंसा का इतिहास है। इस इतिहास के निर्माण में भगवान् महावीर और बुद्ध की देन अद्वितीय है। मानव जाति की प्रगति में इन्होंने एक महान् क्रान्ति को जन्म दिया और वह मार्ग दिखलाया जिसकी महत्ता और उपयोगिता समय के साथ बढ़ती जा रही है। आधुनिक युग में गांधीजी की देन विशेषकर राजनैतिक और सामूहिक अहिंसा के क्षेत्र में अकथनीय है। आनेवाला युग विज्ञान एवं अहिंसा का युग होगा। मनुष्य का कोई भविष्य नहीं जब तक इनका समन्वय न हो जाय। जैसा कि बरट्रेण्ड रसेल, आइन्स्टाइन आदि वैज्ञानिकों ने १९५५ के अपने वक्तव्य में कहा कि इस वैज्ञानिक युग में हमारे सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि क्या हम विज्ञान के दुरुपयोग से मानवता का सर्वथा नाश कर देंगे? किन्तु यदि मनुष्य ने बुद्धिमत्ता और अहिंसा के मार्ग का अनुसरण किया और हिंसा का त्याग कर दिया तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारा भविष्य बहुत उज्ज्वल, मंगल एवं शान्तिमय होगा।

भारत का, जिसकी संस्कृति के प्रतीक महावीर, बुद्ध और गांधी हैं, विज्ञान और अहिंसा के निर्माण में, बहुत बड़ा उत्तरदायित्व हो जाता है वह इसमें योगदान दे। अहिंसा कोई रूढ़िवाद नहीं। यह जागृत एवं विकासशील व्यक्ति और शक्ति है, और जीवन है इसकी प्रयोगशाला। अहिंसा और विज्ञान की एक प्रकार से जोड़ी है, यदि दोनों प्रयोग में न लाये जाय तो बेकार हैं। दोनों के प्रयोग से ही प्रगति सम्भव है। दोनों के समन्वय में भारत का विशेष योग-दान हो सकता है। यह आसान नहीं किन्तु प्रयत्न और [illegible] से [illegible] मिल सकती है। स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति, जो मनुष्य जाति की [illegible] एवं [illegible]-लता के लिए अपने समय और शक्ति को अहिंसा में लगाते, के जीवन और कार्य की विशेष महत्ता है।

धवल-संघ के वर्तमान आचार्य तुलसी [illegible] भार-तीय अहिंसा की जैन-परम्परा के [illegible] हैं। ११ वर्ष की [illegible] में भगवती-दीक्षा लेकर आप निरन्तर अपने जीवन में अहिंसा को उतारने में लगे हुए हैं। आज तक आपने लगभग ३१०० मील [illegible] विहार कर ग्राम, दर्शन एवं चरित्र का [illegible] जन-जन तक [illegible]

द्रव्य सहायकों की शुभ नामावली

१००१)	श्री वीरसैन जैन	दिल्ली
५०१)	मोहनलाल जुगलकिशोर जैन	लुधियाना
"	मुन्नीलाल राजकुमार जैन	"
"	खेरातीलाल मनोहरलाल राममूर्ति जैन	मालेरकोटला
"	बग्गाराम जगन्नाथ जैन	[illegible]
"	सौ० लाजवन्ती धर्मपत्नी डोंगरमलजी जैन	[illegible]
"	हीरालालजी सुभाषचन्द्रजी जैन	भिवानी
"	मोहनलालजी जैन	पटियाला
"	प्रतापसिंहजी महेन्द्रसिंहजी जैन	हांसी
"	बाबूलाल डाया भाई	अमरावती
"	तिलोकचन्द जवाहरलाल जैन	शक्तिनगर देहली
"	मिलेखचन्द केशोराम जैन	[illegible]
"	सौ० पानकुवर बाई पन्नालालजी जागड	जालना
२४६)	शान्तिस्वरूपजी जैन	पटियाला
१५१)	फकीरचन्द फिरोदिया	अहमदनगर
१००)	बहन शीला	लुधियाना
"	रामेश्वरलालजी लाहोरीराम जैन	"
"	कंवरसैनजी चोरड़िया	चीरखाना देहली
"	स्वार्थीलालजी नैनसुखजी भटेवड़ा	चाकन
६०)	कौशल्याजी	लुधियाना

अध्यात्म-साधना के साथ साहित्य-साधना का समन्वय स्थापित करते हुए
आचार्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज

दूसरो को सुख देने के समान ससार मे कोई धर्म नही है, और दूसरों
को दुःख देने के समान कोई पाप नही है। भाव यह है कि परहित सम्पादन
करना, दूसरों को सुखशान्ति पहुँचाना धर्म है।

धर्म की लोक-प्रियता

धर्म की महिमा महान है। ससार के सभी महापुरुषों ने धर्म के महात्म्य
पने-अपने श्रद्धा-सुमन समर्पित किये है। उपनिषद्कारों ने 'धर्मोधर्मेणगो
।' यह कह कर धर्म को जीवनगत विजय का कारण माना है, अहिंसा
र सत्य के अग्रदूत भगवान् महावीर ने 'धम्मो मगलमुक्किट्ठं' तथा देवावि त
मसन्ति' इन पदों द्वारा धर्म को सर्वोत्कृष्ट मगल और धर्मात्मा को देव-
न्दय समूचित किया है।

'गौतमकुलककार धर्म की महत्ता को कितनी सुन्दरता से स्वीकार
करते हैं—

सव्वा कला धम्मकला जिणेइ, सव्वा कहा धम्मकहा जिणेइ।
सव्व बल धम्मबल जिणेइ, सव्व सुह धम्मसुह जिणेइ॥

७२ कलाओं मे धर्मकला उत्तम है, राजकथा आदि कथाओं मे धर्म कथा
प्रशस्त है, धनादि बलों मे धर्म-बल श्रेष्ठ है और शरीरादि सुखों मे धर्मसुख
प्रधान है।

मनुष्य ने अपनी सुख-सुविधा के लिए अनेक कलाओं का आविष्कार
किया है किन्तु धर्मकला इन सबमें उत्तम है, यह कला जीवन को स्थायी सत्य
शिव और सौन्दर्य से आपूरित कर देती है।

राजकथा तथा देशकथा आदि कथाओं के करने मे प्राय. रागद्वेष की
वृद्धि देखी जाती है, इनसे आध्यात्मिक जीवन का पोषण नही होता अत:
इनकी अपेक्षा धर्मकथा का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्मकथा मे मानव को अन्त-
र्जगत के अवलोकन का अवसर प्राप्त होता है, धन, जन, परिजन आदि अनेको
बल है किन्तु ये बल जीवन के भविष्य को समुज्ज्वल बनाने मे सहयोगी नही
बनते। रावण कस दुर्योधन का बल इनके सर्वनाश का ही कारण बना, धनादि
बलो के दुष्परिणाम से इतिहास के पृष्ठ रगे पडे हैं अत: इन बलो मे सर्वश्रेष्ठ
और सर्वोत्तम बल धर्मबल है। इस बल से आत्मा मे परमात्मा के दर्शन होते
है। परमात्मदर्शन के लिए धर्मबल से बढ़कर अन्य कोई बल नही है। सुख
भी अनेकविध माने जाते हैं, शरीरसुख, पुत्रसुख, नारीसुख, प्रतिष्ठासुख और
अधिकार सुख आदि अनेकों सुखों के रूप मिलते हैं, किन्तु ये सुख काल्पनिक

है, क्षणभगुर हैं, अन्त मे दु.खप्रद हैं, अत. सुखों मे धर्मसुख सर्वश्रेष्ठ है। धर्मात्मा को जो सुख प्राप्त होता है वह २६ वें देवलोक के देवता को भी प्राप्त नही हो पाता। धर्म का सुख कुछ निराला ही रहता है। आचार्य हरिभद्र समराइच्च कहा मे धर्म की प्रशस्ति करते हुए लिखते हैं—

धम्मेण कुलप्पसूई, धम्मेण य दिव्वरूप-संपत्ती।
धम्मेण धणसमिद्धी, धम्मेण सुवित्थडा कित्ती॥
धम्मो मंगलमउलं, ओसहमउलं च सव्वदुक्खाणं।
धम्मो बलमवि विउल, धम्मो ताण च सरण च॥
कि जपिएण बहुणा, ज ज दीसइ समत्य जीवलोए।
इन्दिय-मणाभिराम, त त धम्मफल सव्व॥

—समराइच्चकहाए भूमिआ

धर्म से उत्तम कुल मे जन्म होता है, दिव्यरूप धनसमृद्धि और सुविस्तृत कीर्ति की प्राप्ति होती है। धर्म अनुपम मगल है, समस्त दु खो की अनुपम औषधि है, विपुल बल है, धर्म ही प्राणियो के लिए त्राण, रक्षक और शरण आश्रयदाता है, अधिक क्या कहा जाय? समस्त जीवलोक प्राणिजगत मे इन्द्रियो और मन को जो भी अभिराम प्रतीत होता है, वह सब धर्म का ही फल है।

उत्तराध्ययन सूत्र मे विश्ववन्द्य महामहिम भगवान् महावीर धर्म की उपयोगिता का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाते हैं—

जरा मरण-वेगेण, बुज्झमाणाण पाणिण।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तम॥ —उ० अ० २३।६८

जन्म और मरणरूप (जल के) वेग से बहाए जाते हुए प्राणियों को धर्म ही द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है और उत्तम शरण है। नदी के भयकर प्रवाह मे जिस प्रकार बहने वाली कोई भी वस्तु स्थिर नही रह सकती, कभी इधर तो कभी उधर यही उसकी दशा चलती है, उसी प्रकार जगती में जन्म-मरण के प्रवाह में जीव को अवस्था देखी जाती है। आज जन्म होता है तो कल उसे मृत्यु दबोच लेती है। जन्म-मरण का यह प्रवाह अनादि-काल से चला आ रहा है। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि जन्म मरण का यह प्रवाह सदा ऐसे ही चलता रहेगा, या इसका कभी अन्त भी आ सकेगा? प्रस्तुत गाथा मे इस प्रश्न का समाधान किया गया है। भगवान फरमाते है कि जन्म मरण के वेग को रोकने का एक ही साधन है, वह है धर्म। धर्म द्वीप के समान आधारभूत है। यही जीव को स्थिरता प्रदान करता है, इसके बिना

४

अनगार धर्म

धर्म के दो रूप

धर्म की द्विविधता अभिव्यक्त करते हुए स्थानांग सूत्र में भगवान् महावीर फरमाते हैं

> चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा —
> अगार-चरित्तधम्मे चेव अणगार चरित्तधम्मे चेव ।

भाव यह है कि धर्म के दो भेद होते हैं, सागार-धर्म और अनगार-धर्म-सागार गृहस्थ और अनगार साधु को कहते हैं। इस तरह गृहस्थ का धर्म सागार धर्म और साधु का धर्म अनगार धर्म कहलाता है। सागार धर्म अनगार धर्म की अपेक्षा अणु एवं सीमित होता है। दोनों की परिस्थितियों की विभिन्नता ही इसका कारण है। गृहस्थ संसार में रहता है, अत उसे परिवार समाज एवं राष्ट्र का कुछ दायित्व निभाना पड़ता है। परिणामस्वरूप अहिंसा सत्य आदि व्रतों की पूर्णतया आराधना उसके लिए शक्य नहीं, असंभव है।

गृहस्थ धर्म

गृहस्थ का अर्थ है गृह-घर में स्थ-स्थित-घर में रहने वाला गृहस्थ कहा जाता है। अत जीवन यात्रा को चलाने के लिए गृहस्थ को बहुत कुछ करना पड़ता है। कभी परिग्रह का जाल बुनना होता है, असत्य-मैथुन का सेवन करना होता है, देश जाति की रक्षा के निमित्त कभी हाथों में तलवार उठानी पड़ती है, सेनापति के आसन पर बैठकर शत्रुओं पर आक्रमणार्थ सैन्यदल को आदेश-प्रत्यादेश भी देने पड़ते हैं। ऐसे अनेकों दायित्व हैं जो गृहस्थ को निभाने होते हैं इसी दृष्टि से गृहस्थधर्म को साधु धर्म की अपेक्षा अणु कहा गया है। गृहस्थ तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का आंशिक रूप से ही

पालन कर सकता है अतएव शास्त्रों में गृहस्थ के व्रतों को अणुव्रत कहा गया है।

जैन साहित्य का परिशीलन करने से पता चलता है कि गृहस्थ धर्म के परिपालक श्रावक ऐसे-ऐसे चारित्रशील हो गये हैं, जिनपर देश और जाति को महान गौरव रहा है। वाणिज्य नगर के प्रतिष्ठित और जनगणमान्य सेठ आनन्द तथा चम्पानगरी के महामान्य श्रावक धर्म की सजीव प्रतिमा श्री कामदेव आदि श्रावक बहुत बड़े पूंजीपति होने पर भी संसार में विरक्त रहा करते थे। कमल जैसे पानी में रहकर भी उससे अलिप्त रहता है, वैसे ही ये श्रावक गृहस्थ जीवन में रहते हुए उनसे सदा अलिप्त रहते थे, उसमें आसक्त नहीं होते थे। आनन्द की गृहस्थ धर्म साधना इतनी विलक्षण थी कि श्री गौतमस्वामी जैसे महान सन्त भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे और कामदेव की आध्यात्मिक दृढ़ता का गुणानुवाद तो स्वयं भगवान महावीर को करना पड़ा था। गृहस्थ होने पर भी इन श्रावकों ने साधु जगत को आश्चर्य-चकित कर दिया था।

साधु धर्म

गृहस्थ धर्म की अपेक्षा साधु धर्म त्याग-वैराग्य की दृष्टि से महान माना गया है। साधु का अहिंसा सत्य आदि व्रतों को पालना पूर्णरूप से सम्पन्न करनी होती है। मन, वाणी और काया से हिंसा, असत्य, चोर्य, मैथुन और परिग्रह का परित्याग करना होता है। वह मनसा वाचा कर्मणा कृत कारित और अनुमोदित हिंसा आदि दोषों को छोड़कर अहिंसा आदि महाव्रतों का पालन करता है। साधु के व्रत महान होने से ही महाव्रत कहलाते हैं। जैन साधु की जीवन चर्या बड़ी कठिन है, दुष्कर है, इसकी पालना करना लोहे के चने चबाना है। प्राणघातक प्रहार होने पर भी प्रहारकर्ता पर साधु द्वेष न लाकर मन को शान्त एवं निर्विकार रखता है। जर, जोरू जमीन के ममत्व को छोड़कर सर्वथा अकिञ्चन रहता है, अपनी मर्यादा के अनुसार प्राप्त भिक्षा से ही जीवन-यात्रा सम्पन्न करता है। वर्षा या धुन्ध चाहे, चार दिन पड़ती रहे, तथापि भिक्षार्थ नहीं जाता। रात्रि को अन्न जल का सेवन तो क्या एक *कण भी अपने पास नहीं रख सकता। आचारांग आदि जैनागमों* में साधु के नियमोपनियमों का बड़ा गंभीर वर्णन मिलता है, ऐसा सूक्ष्म एवं व्यवस्थित आचार-विचार सम्बन्धी साधु-जीवन का विवेचन कहीं अन्यत्र जैनेतर शास्त्र में उपलब्ध नहीं होता। यदि संक्षेप में साधु जीवन की व्याख्या करें तो भगवान महावीर के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं :—

निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो ।
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ।।
लाभालाभे सुहे दुहे, जीविए मरणे तहा ।
समो निंदापसंसासु, समो माणावमाणओ ।।
अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिए ।
वासीचंदणकप्पो अ, असणे अणसणे तहा ।।
—उत्तरा १६।८६, ९०, ९२

भगवान महावीर साधु जीवन के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाते हैं कि साधु-जीवन को ममतारहित, निरहंकार, नि:संग, नम्र और प्राणिमात्र पर समभाव युक्त रहना चाहिये। लाभ हो या हानि हो, सुख हो या दुःख हो जीवन हो या मरण हो, निन्दा हो या प्रशंसा हो, मान हो या अपमान हो सर्वत्र समभावपूर्वक रहना ही सच्ची साधुता है। सच्चा साधु न इस लोक में आसक्ति रखता है और न परलोक में। यदि कोई विरोधी तेज कुल्हाड़े से काटता है या कोई प्रेमी भक्तजन शीतल तथा सुगन्धित चन्दन का लेप करता है, तो सच्चा साधु दोनों पर एक जैसा ही भाव रखता है, भला वह साधु क्या? जो न भूख पर नियंत्रण रखता है और न भोजन पर, जो बात-बात पर बौखला उठता हो, राग-द्वेष की आग में जलता रहता हो, बहुरूपिया बनकर जीवन के क्षण व्यतीत करता हो, उसे साधु कहना साधु शब्द का ही दुरुपयोग करना है, वस्तुतः साधुता का आदर्श रागद्वेष की लहरों से सुरक्षित रहने में ही जीवित रह सकता है।

साधु-जीवन और आनन्द

आचारांग तथा उत्तराध्ययन सूत्र आदि में साधु-जीवन की महत्ता का परिचय कराया गया है, यहां तो दिग्दर्शन मात्र है, साधु जीवन की महानता ने जैन साहित्य का बहुत बड़ा भाग रोक रखा है। साधु जीवन की महिमा अवर्णनीय है, यह बिना किसी संकोच के कहा जा सकता है कि यदि मनुष्य सच्चे हृदय से साधु मर्यादा की आराधना करता है, उसे आत्म-सात् कर लेता है तो उसका कायाकल्प ही हो जाता है। उसके मानस में एक ऐसे विलक्षण आनन्द की अनुभूति होने लगती है, जिसे शब्दों की सीमित रेखाओं में बांधा नहीं जा सकता। अधिक क्या? स्वर्गपुरी के निवासियों का सुख-वैभव भी उसके सामने नगण्य है, तुच्छ है। संभव है, इसी विलक्षण और अनुपम आनन्दानुभूति को ध्यान में रखकर वन्दनीय श्री गौतमजी महाराज को सम्बोधित करते हुए भगवती सूत्र में (शतक १४-९) श्रमण भगवान महावीर ने फरमाया है—

(शरीर का आकार) आयु बल आदि क्रमशः घटते चले जाएं, उसे अवसर्पिणी और जिसमें अधिकाधिक शुभ होते जाएं, उसे उत्सर्पिणी कहते हैं। प्रत्येक काल के छः आरे (विभाग) होते हैं। अवसर्पिणी काल के छः आरे इस प्रकार हैं—

१. सुषमसुषमा २ सुषमा ३ सुषम-दुषमा
४ दुषम सुषमा ५ दुषमा ६ दुषमदुषमा

अवसर्पिणी काल के ये छः आरे उत्सर्पिणी काल में व्युत्क्रम से होते हैं। अवसर्पिणी काल का पहला आरा उत्सर्पिणी का छठा और छठा आरा पहला है—जैसे—१ दुषमदुषमा, २ दुषमा ३ दुषमसुषमा, ४ सुषमदुषमा, ५ सुषमा, ६ सुषम सुषमा। इनकी अन्य सम्बन्धी विचारणा जैन शास्त्रों में बड़े विस्तार से सम्प्राप्त होती है। जिज्ञासुओं को विस्तार से प्रकाशित जैन सिद्धान्त बोल संग्रह का द्वितीय भाग या जैनतत्त्व प्रकाश आदि ग्रंथ को देखना चाहिए।

अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में धर्म का प्रवर्तन होता है। धर्म के आदि प्रवर्तक या तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव इसी आरे में अवतरित हुए थे। इस युग के अन्तिम २४ वें तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म चौथे आरे में हुआ था। आजकल भगवान् महावीर का ही शासन चल रहा है। तपोमूर्ति प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामीजी म०, आर्य सुधर्मा-स्वामी, वैराग्यमूर्ति जम्बू-स्वामी, आचार्य प्रभव, आचार्य शय्यंभव, आदि अध्यात्म महापुरुष इसी शासन के शृंगार थे। वीर प्रभु के अध्यात्म शासन का यह पवित्र महानद आज भी अपनी अनवरत गति से चलता चला आ रहा है। श्रमण जगत की उपलब्ध पट्टावलियाँ इस महासत्य का पूर्णरूपेण समर्थन कर रही हैं। आचार्य भद्रबाहु, मनोविजेता श्री स्थूलि भद्र, श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण, क्रियोद्धारक पूज्यश्री लवजी ऋषिजी म०, महामहिम श्री तिलोक ऋषिजी, म० स्वनामधन्य मंगल-मूर्ति आचार्यप्रवर पूज्य श्री अमरसिंहजी म०, परम श्रद्धास्पद वन्दनीय आचार्य-देव, पूज्य श्री मोतीरामजी म० भारत केसरी पूज्य श्री सोहनलालजी म०, आगममहारथी पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म०, श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमणसंघ के आद्य आचार्य पूज्य श्री आत्माराम जी म० आदि महामान्य महापुरुष श्री भगवान् महावीर के ही समुज्ज्वल सितारे थे।

५

आचार्य श्री आनन्दऋषि जी म०

भगवान् महावीर की अतीत कालीन समुज्ज्वल श्रमण-परम्परा का संक्षिप्त परिचय पीछे कराया गया है। भारत के अन्यधर्मों के साधुवर्ग में जैन श्रमण वर्ग का आचार विचार तथा त्याग वैराग्य की दृष्टि से जो सर्वश्रेष्ठ स्थान है यह सर्व विदित है। आज भी मानव जगत् जैन श्रमणों की कठोर संयम साधना का लोहा मानता है। प्रभुवीर के श्रमण जगत में आज भी अनेकों दिव्य विभूतियां हैं, जिनपर अध्यात्म जगत् को बहुत मान है। संयम साधना के महापथ पर चलकर आज भी ये अहिंसा सत्य का अमृत घर-घर बांटकर विश्वकल्याण की ओर अग्रसर हो रही है। इन्ही विभूतियों में से एक दिव्य विभूति हैं, प्रातः स्मरणीय जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् पूज्यश्री आनन्दऋषि जी म०, आचार्य देव एक विरक्त, निस्पृह, उदासीन, संयम-प्रिय, चरित्रशील, गुणवान् एवं विद्वान् सन्त हैं। इन्होंने जवानी का आरम्भ होने के पहले ही संसार के मोह बन्धनों को तोड़कर समाज तथा परिवार के सुखवैभव को ठुकराकर अहिंसा एवं सत्य के महापथ पर चलना आरम्भ किया था। जैन तथा जैनेतर आगमों शास्त्रों का मन्थन करके उनका सार निकाला, त्याग वैराग्य के कण्टीले मार्गपर चलकर भयंकर से भयंकर कठिनाइयों में भी अपने को कभी डावाडोल नहीं होने दिया। हंसते-हंसते सभी अनुकूल तथा प्रतिकूल बाधाओं को सहन किया, विकट से विकट प्रसंग में भी न्याय तथा संयमपथ से अपने को कभी विचलित नहीं होने दिया। इनकी इसी आदर्श गुणसम्पदा के कारण साधक जगत् में आज इनका जीवन आध्यात्मिकता से परिपूर्ण आदर्श जीवन माना जाता है। हमारे आचार्य प्रवर के जिस किसी ने मंगलमय दर्शन किये हैं, वह इनकी सादगी से खूब प्रभावित है। लेखक को लगातार बारह महीने तक

प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं।
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥

भगवन् ! प्रलयकाल के भयानक दुस्तर समुद्र को जैसे कोई मनुष्य भुजाओ से नही तैर सकता है, उसीप्रकार मैं भी आपके गुणो का वर्णन करने मे असमर्थ हूँ।

सिंह जब किसी मृग शिशु को पकड लेता है, तो शक्ति हीन होने पर भी जैसे हरिण अपने बच्चे को छुडाने के लिए सिंह के सामने आता है, वैसे ही भगवन् आपकी स्तुति करने का सामर्थ्य न होने पर भी मैं श्रद्धा के कारण आपका गुणानुवाद करने लगा हूं।

वन्दनीय आचार्यदेव का पवित्र जीवन चलता फिरता एक अध्यात्म शास्त्र है। इसके प्रत्येक पृष्ठ की प्रत्येक पक्ति का प्रत्येक अक्षर मानव को मानवता की आदर्श प्रेरणा प्रदान करता है। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह जीवनशास्त्र अहिंसा सत्य का सन्देश वाहक बनकर विश्व के इतिहास की अनमोल सम्पत्ति सिद्ध होगी और युग-युग तक मानव के भविष्य को उज्ज्वल अत्युज्ज्वल एव समुज्ज्वल बनाने मे सहयोग देता रहेगा। आगे की पक्तियों मे आचार्यप्रवर के पवित्र जीवन शास्त्र का ही चिन्तन किया जाएगा।

६

जन्म कब और कहाँ

वीरप्रसू भूमि महाराष्ट्र

महाराष्ट्र दक्षिण भारत का एक गौरवशाली प्रदेश रहा है। प्राचीन इतिहास का परिशीलन करने से पता चलता है कि किसी प्रान्त में देशभक्ति की भावना प्रबल रही है और किसी में आध्यात्मिक भावनाओं का प्राचुर्य रहा है किन्तु महाराष्ट्र की भूमि का यह सौभाग्य रहा है कि इसमें देशभक्ति और आध्यात्मिक शक्ति दोनों का बाहुल्य रहा है। हमें यहां दोनों का मधुर संगम दिखाई देता है। यही इसकी अपनी एक विशेषता है।

हिन्दू-कुल-भूषण महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी को कौन नहीं जानता? वीरता, साहस, उदारता, संयम तथा देशभक्ति के सजीव प्रतीक शिवाजी को इसी वीर प्रसू भूमि ने पैदा किया था। यह बिना किसी झिझक के कहना पड़ता है कि देशभक्ति और वीरता की दृष्टि से भारतीय प्रदेशों में महाराष्ट्र का स्थान सर्वोच्च और सदा प्रशंसनीय रहा है। संभव है इसीलिए यह भूमि सर्वत्र वीरप्रसू भूमि के नाम से विख्यात हो गई है। अतीत को जाने दीजिए, आज भी मराठों की देशभक्ति और वीरता-पूर्ण कहानियां घर-घर में सुनी सुनाई जाती हैं और लोग इन कहानियों से झूम उठते हैं, स्वाभिमान से आनन्दविभोर हो जाते हैं।

अध्यात्म जगत् में समर्थ गुरु रामदास का एक महत्वपूर्ण स्थान माना गया है, भारत के प्रसिद्ध सन्तों में वे एक प्रतिष्ठित सन्त रहे हैं। वे हिन्दू जाति संरक्षक शिवाजी के महामान्य गुरु थे। स्वतन्त्रता संग्राम में शिवाजी का मार्गदर्शन यही किया करते थे, शिवाजी के भविष्य को समुज्ज्वल बनाने में इनका बहुत बड़ा हाथ था, ये सन्त भी महाराष्ट्र की पावनभूमि में ही अवतरित हुए थे। प्रभुभक्ति और देशभक्ति के इस जीवित भण्डार को जन्म देने का सौभाग्य महाराष्ट्र ने ही सम्प्राप्त किया था।

कहा जा चुका है कि महाराष्ट्र आध्यात्मिक विभूतियों का केन्द्र रहा

है। इन विभूतियों में एक हमारे पूज्यपाद वन्दनीय आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज भी हैं। अहिंसा सत्य के महान् संदेशवाहक, त्याग-वैराग्य की साक्षात्मूर्ति, पुण्यात्मा, जैनधर्म दिवाकर, परमपूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० जैसे महामना सन्त शिरोमणि को पैदा करने का सद्भाग्य भी इसी पुण्य-भूमि महाराष्ट्र ने प्राप्त किया। ऐसे-ऐसे समाजसेवी मंगलमूर्ति साधु-सन्तों का जन्मप्रदेश होने के कारण ही महाराष्ट्र आज अध्यात्मजगत् द्वारा पुण्यभूमि के रूप में देखा व माना जा रहा है।

सम्वत् १९५७

काल के एक परिमाण को सम्वत् कहते हैं। इसके प्रायः ३६५ दिन होते हैं। सम्वत् तो असंख्य हैं, अनन्त हैं परन्तु सभी को आदर एवं श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखा जाता। वही सम्वत् आदरास्पद एवं श्रद्धास्पद माना जाता है जो किसी ऐतिहासिक राष्ट्रीय तथा अध्यात्म महापुरुष से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। व्यवहार इस सत्य का साक्षी है। देखा गया है कि जब किसी महापुरुष के जीवन को जानना आरम्भ करते हैं तो सर्वप्रथम उसके जन्म सम्वत् को देखना पड़ता है। ये महापुरुष कब पैदा हुए? इस जिज्ञासा की पूर्ति प्रायः सबसे पहले की जाती है। "जिस सम्वत् में ये महापुरुष पैदा हुए वह सम्वत् भी धन्य है,, इन शब्दों का भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे यह स्पष्ट है कि महापुरुषों की भांति उनका जन्म सम्वत् आदरास्पद बन जाता है। उदाहरणार्थ—जैन श्रमणपरम्परा के महान् उन्नायक, चारित्रनिष्ठ सन्त कविकुल भूषण पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी म० का स्मरण होते ही इनका जन्म सम्वत् १९०४ का स्मरण हो उठता है। इसी तरह महामना शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० के चरणों का ध्यान आते ही उनके जन्म सम्वत् १९१४ तथा श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य, जैन धर्म दिवाकर, साहित्यरत्न, पूज्यश्री आत्मारामजी म० की पुण्यस्मृति होनेपर उनके जन्म सम्वत् १९३९ की स्मृति होने लगती है। वस्तुतः महापुरुषों के आध्यात्मिक जीवन गत चमत्कारों का ही यह शुभ परिणाम है कि उनकी तरह उनका जन्म सम्वत् भी सम्मान के साथ याद किया जाता है।

जीवन चरित्र में जन्म सम्वत् का परिचय न रहे तो वह जीवन चरित्र ही अपूर्ण रह जाता है। अतः चरित्रनायक की जीवनी में उसके जन्म सम्वत् का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रहता है। १९५७ का विक्रमी सम्वत् भी बड़ा भाग्यशाली सम्वत् समझा जाता है। इसी सम्वत् में हमारे महाभाग्य जैनधर्म दिवाकर, बालब्रह्मचारी, आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० का जन्म हुआ था। *अहिंसा सत्य के महान् उपासक, आचार्य श्री का जन्मदाता होने के* कारण आज यह सवत् भी जन-मन के लिए आनन्द का प्रतीक बन गया है।

आचार्यश्री का जन्म

पुरानी बात है लगभग ६८ वर्षों की पुरानी । विक्रम सम्वत् १९५७ श्रावण मास की शुक्लपक्षीय प्रतिपदा तिथि थी । ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से समय बड़ा सुहाना था । चन्द्रमा नक्षत्र आदि के सब योग उच्च थे । ठीक ऐसे समय हमारे श्रद्धास्पद जैनधर्म दिवाकर, आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म० का जन्म हुआ । १९५७ का सम्वत् भी कितना प्रशस्त सौभाग्यशाली और ऐतिहासिक सम्वत् था, जिसे श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के द्वितीय पट्टधर वन्दनीय आचार्यदेव के जन्म सम्वत् बनने का सौभाग्य सम्प्राप्त हुआ । बहुत प्रसिद्ध किम्वदन्ती है कि "काठ के संग लोहा भी तर जाता है" महामहिम बालब्रह्मचारी महापुरुष के जन्म के साथ जुड़कर यह सम्वत् भी अध्यात्म जगत् में सदा के लिए सम्मानित हो गया । जबतक विश्व में आध्यात्मिकता का साम्राज्य जीवित रहेगा तबतक जन-जन के मन में इस सम्वत् का श्रद्धा एवं आस्था के साथ स्मरण होता रहेगा ।

सम्वत्-वर्ष के बारह मास होते हैं । शास्त्रों के परिशीलन से पता चलता है कि सभी मास एक जैसे नहीं होते, मास मास में भी अन्तर होता है. जिस मास में कोई ऐतिहासिक आध्यात्मिक या सामाजिक घटना सघटित होती है, किसी राष्ट्रीय मनीषी महापुरुष का जन्म होता है, तो वह मास मानव-जगत् में एक विलक्षण एवं विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लेता है । साहित्यकार आदरपूर्ण भाषा में उसका उल्लेख करते हैं । संगीतकारों की अन्तर्वीणा उसके गुणगान के लिए लालायित हो उठती है । श्रावण भी एक भाग्यशाली मास रहा है, इसी मास में श्रीहमारे सघ के सन्देशवाहक बालब्रह्मचारी हमारे चरित नायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० का जन्म हुआ था । ज्योतिष शास्त्र के अनुसार प्रत्येक मास के दो पक्ष और प्रत्येक पक्ष की १५ तिथियां होती हैं, किन्तु सभी तिथियां एक जैसी नहीं होतीं । कोई तिथि प्रशस्त और कोई अप्रशस्त मानी जाती है तिथियों में सघटित होनेवाली विशिष्ट घटनाएँ ही उनके प्रशस्त या अप्रशस्त होने का कारण बना करती है । जिन तिथियों में कोई विशेष मगल-

सुश्रावक श्री देवीचन्द जी गूगलिया

विश्ववन्द्य मंगलमूर्ति श्रमण भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ में श्रावक का भी अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। श्रावक शब्द जितना छोटा सा दिखाई देता है, इसका अर्थ उतना ही गंभीर है। प्रश्न हो सकता है कि श्रावक किसे कहते हैं ? इस प्रश्न का समाधान करते हुए संस्कृत के एक अनुभवी आचार्य लिखते हैं—

> श्रद्धालुतां श्राति शृणोति शासनं, दानं वपेदाशु वृणोति दर्शनम्
>
> कृन्तत्यपुण्यानि करोति संयमं, तं श्रावकं प्राहुरमी विचक्षणाः ॥१॥

वीतराग प्ररूपित तत्त्वों पर दृढ़ श्रद्धा रखने वाला, जिनवाणी को सुननेवाला, पुण्यमार्ग में द्रव्य का व्यय करने वाला, सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाला पाप को छेदन करने वाला व्यक्ति देशविरति श्रावक कहलाता है।

श्रावक के चार रूप

श्रावक पद का अन्तर्दर्शन करते हुए भगवान् महावीरस्वामी ने स्थानांग सूत्रीय स्थान चतुर्थ के ३२१ वें सूत्र में श्रावक के चार प्रकार बतलाए हैं। वे प्रकार ये हैं—

१. माता-पिता के समान—बिना अपवाद के साधुओं के प्रति एकान्त रूप से वात्सल्य—भाव रखने वाले माता-पिता के समान श्रावक कहलाते हैं।

२ भाई के समान—तत्त्व-विचारणा आदि में कठोर वचन से कभी साधुओं से अप्रीति होने पर भी शेष प्रयोजनों में अतिशय वात्सल्य भाव रखने वाले भाई के समान श्रावक समझे जाते हैं।

३ मित्र के समान—मित्र की तरह दोषों को ढकने वाले और गुणों का प्रकाश करने वाले मित्र के समान श्रावक कहे जाते हैं।

४. सौत के समान साधुओं के सदा दोष देखने वाले और उनका अपकार करने वाले श्रावक सौत के समान कहे गये हैं।

श्रावक की दश विशेषताएँ

जैन साहित्य का गभीर अध्ययन करने से पता चलता है कि चतुर्विध जैनसघ मे श्रावक का बड़ा प्रशस्त स्थान रहा है। उसकी गुणसम्पदा बडी विशाल है। भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशा ५ के अनुसार जब श्रावक के जीवन की ओर देखते हैं तो उसमे निम्नोक्त दस बातो की उपलब्धि होती है।

१ श्रावक—जीव,अजीव, पुण्य-पाप आदि नवतत्वो का ज्ञाता होता है।

२. श्रावक का अपना आत्मविश्वास इतना महान् होता है कि वह स्वर्गपुरी के देवता की भी सहायता नही चाहता, वह किसी कार्य में दूसरे पर निर्भर नहीं रहता।

३. श्रावक धर्मकार्यों एव निर्ग्रन्थ प्रवचन मे इतना दृढ तथा इतना सतर्क होता है कि, देव असुर नागकुमार ज्योतिष्क, यक्ष राक्षस, किन्नर किम्पुरुष गरुड महोरग गन्धर्व आदि कोई देवता उसको धर्म से विचलित करने मे समर्थ नही हो सकता।

४ श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन मे शका-अरिहन्त प्ररूपित तत्वो मे सन्देह रखना, काक्षा—अन्यदर्शनो की चाह करना, विचिकित्सा-तप आदि अनुष्टानो के फल मे सदेह शील बनाना आदि सम्यक्त्व के दोषो से दूर रहता है।

५. श्रावक शास्त्र के अर्थ को बडी कुशलता के साथ ग्रहण करता है। शास्त्रों के अर्थों मे सन्देह वाले स्थानो का भली प्रकार निर्णय करके और शास्त्रो के गूढ़ रहस्यो को जानकर उनपर अटूट प्रेम रखनेवाला होता है। उसके जीवन का कण-कण धर्म के रग से रगा हुआ होता है।

६ निर्ग्रन्थ प्रवचन ही सत्य है, परमसत्य है। ससार का शेष मत-मतान्तर आत्म कल्याण साधक नही है, वीतरागवाणी ही आत्मा के लिए हित-कारिणी एव कल्याण कारिणी है। ससार के अन्य सभी कार्य आत्म कल्याण मे बाधक है, अहितकर है, ऐसा विश्वास रखकर श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन पर ही दृढ भक्ति एव श्रद्धा रखता है।

७. श्रावक इतना उदार होता है कि उसका घर साधु-साध्वी माहण आदि सबको दान देने के लिए सदा खुला रहता है। दान देने की भावना उसकी सदा बनी रहती है। दान से वह कभी जी नही चुराता।

८. श्रावक, ऐसा विश्वासपात्र होता है कि वह किसी के घर चला जाय अधिक क्या ? राजा के अन्त पुर मे भी चला जाय फिर भी किसी को किसी प्रकार की आशका नहीं होती, सर्वत्र उसे आदर की दृष्टि मे देखा जाता है।

६ .

माता हुलासाबाई

हमारे परम सम्मानास्पद जैन धर्मदिवाकर पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म० की पूज्य माता का नाम श्रीमती हुलासाबाई था। हुलासाबाई चिचोंडी गाव की नारियों मे बडी आदरणीय एवं प्रतिष्ठित नारी समझी जाती थीं। सती, साध्वी, सुशीला, सच्चारित्रा, पतिव्रता होने के साथ-साथ इनका स्वभाव बड़ा कोमल तथा मधुर था। मन में सात्विकता थी, वाणी में मिश्री जैसा मिठास था चेहरा हसमुख, मिलनसार स्वभाव, दीनदुखी के प्रति वात्सल्यभाव आदि विशेषताएं ही इनके जीवन का परिचय था। आकृति और प्रकृति दोनों से भव्य सुन्दर थी। आकृति में जहा सुन्दरता का निवास था वहा उसमे सौम्यता, सादगी, लज्जाशीलता के भी दर्शन होते थे। प्रकृति में कोमलता सरलता, मधुरता स्नेहशीलता, दया सहानुभूति की पवित्र भावनाओं का निवास था। अन्तर्वीणा मे सदा —

> सुखी रहे सब जीव जगत के कोई कभी न घबरावे।
> वैर पाप अभिमान छोड़ जग नित्य नए मगल गावे॥
> घर-घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
> ज्ञान चरित उन्नत कर अपना मनुज जन्म फल सब पावें॥

यही स्वर निकलते रहते थे। ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, निन्दा, चुगली, वैर विरोध से इनको बडी चिढ़ थी। किसी की निन्दा करना और सुनना ये पाप समझती थी। भगवान महावीर के शब्दों में "पिट्ठी मस न खाइज्जा" अर्थात् पर निन्दा को दूसरों की पीठ का मास खाना मानती थी। प्रभु भक्ति, सामायिक सन्ध्या साधु साध्वियों की सेवा सुश्रूषा ही इनके जीवन की मुख्य साधना थी।

माता हुलासाबाई बड़ी सौभाग्यवती नारी थी। ससार का सभी सुख वैभव इनको प्राप्त था। सन्तहृदय, पत्नीव्रत के परिपालक, सुशील पतिदेव मिले थे। एक पुत्री के अतिरिक्त दो पुत्र भी थे। पुत्र भी नाम के पुत्र नहीं थे प्रत्युत दोनों आज्ञाकारी, विनीत धर्मात्मा एव पुण्यात्मा पुत्र थे। सन्तति प्रभुभक्त हो, सुयोग्य हो, दीनदु खी के प्रति सहानुभूति रखने वाली हो, धर्माराधन समाज-सेवा आदि सत्कार्यों मे अपने बल का प्रयोग करने वाली हो, तब माता का मातृत्व सफल एव कृतकृत्य समझा जाता है। सम्भव है इसी दृष्टि को आगे रखकर एक अनुभवी हिन्दी कवि की अन्तर्वीणा झकृत हो उठी हो।

जननी जने तो भक्त जन, या दाता या शूर।
नहीं तो जननी बा जने, काहे गमावे नूर॥

कवि कहता है कि माता बनना तभी सार्थक कहा जा सकता है कि यदि उसकी सन्तति प्रभुभक्त या दानी या शूरवीर हो, ऐसे पुत्र को जन्म देकर ही माता पद को सफल बना सकती है। कवि की इस उक्ति के अनुसार माता हुलासाबाई का जीवन एक सफल एव सार्थक मातृ-जीवन था। उसने पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म० जैसे धर्मदिवाकर, ज्ञानदाता, सयम-साधना की पालना मे वज्र के समान कठोर महापुरुष की जन्मदात्री बनकर मा के रूप को पूर्णरूप से सफल बना लिया था।

भगवान् महावीर ने अपने चतुर्विध सघ मे श्रावक की तरह श्राविका को भी आदरास्पद स्थान दिया। जैसे श्रावक अणुव्रतों का पालन करता हुआ धीरे-धीरे अनगार धर्म की आराधना द्वारा स्वर्ग तथा अपवर्ग के द्वार खोल सकता है, वैसे श्राविका अपनी मर्यादा का परिपालन करती हुई भी ऊपर उठ सकती है। स्वर्ग और अपवर्ग की साधना सम्पन्न करके मुक्तिपुरी मे विराज-मान हो सकती है। जैनेतर साहित्य मे अर्धनारीश्वर भगवान् की जो कल्पना की गई है, उसमें भी नारी की महत्ता को स्वीकार किया है। कल्पना मे भगवान् की आकृति आधी नर और आधी नारी के रूप में की गई है। अर्ध-नारीश्वर का वामभाग नारीरूप और दक्षिण भाग नररूप है। इस कल्पना से यह अभिव्यक्त करने का बुद्धिशुद्ध प्रयास किया गया है कि जगत् मे नर और नारी का समान स्थान है, अधिकार है, और समान सम्मान है। शास्त्रों मे वर्णित इस सत्यता को माता हुलासाबाई ने अपने जीवन मे पूर्णतया चरितार्थ करके दिखा दिया था। वह श्रावक धर्म की आराधना तथा परिपालना मे बड़े से बड़े किसी श्रावक से पीछे नहीं थी। तपस्या की उपासना मे कभी-कभी तो

सेठ जी की जीवन लीला समाप्त

सेठ देवीचन्दजी को अपने अन्तिम समय का आभास होने लगा, परन्तु उन्होंने अपने मन को अधीर नही होने दिया। वे धर्मपत्नी से बोले—व्याकुल होने वाली कोई बात नही, मुझे संथारा कराओ और महामंत्र नवकार की मंगलमय ध्वनि से मेरे मानस को पवित्र करो। संथारा जैन दर्शन का अपना एक पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है आमरण अनशन। जैनदृष्टि मे जप, तप, त्याग, वैराग्य और प्रभुभक्ति की छाया मे या इनकी आराधना मे यदि जीवन लीला समाप्त हो तो वह भविष्य की समुज्वलता का कारण बनती है, मरने के बाद जीव को अच्छा स्थान प्राप्त होता है, 'अन्ते मतिः सा गति' की मान्यता इसी सत्य को परिपुष्ट करती दिखाई देती है। सेठ साहब की इच्छानुसार इनको संथारा करवा के महामंत्र की ध्वनि का उच्चारण प्रारम्भ करवा दिया गया। गाव मे सेठजी का बडा आदर था वे सर्वजनप्रिय व्यक्ति थे, अतः इनकी चिंताजनक स्थिति सुनकर लोग बहुत चिंतित हुए और सभी इनके स्वास्थ्य के लिए मंगलकामना करने लगे। किन्तु मृत्यु के आगे किसी का बस नहीं चला। सब देखते ही रह गए सेठ साहिब महामंत्र नवकार का श्रवण करते-करते ही इस पार्थिव शरीर को छोडकर परलोक सिधार गये। देहान्त हो जाने पर ऐसा लग रहा था, मानो सेठ के मुखपर मुस्कराहट नाच रही थी, विषाद का कोई चिन्ह नही था पर, परिवार तथा गाव वाले सब उनके वियोग मे आँसु बहा रहे थे। गोस्वामी तुलसीदास की—.

तुलसी जब जग मे भए, जग हसा तुम रोए।
ऐसी करणी कर चलो, तुम हसो जग रोए॥

यह सारगर्भित और अमरवाणी सेठजी के जीवन मे पूर्णतया चरितार्थ हो रही थी —

लहलहाते हुए खेत को यदि आग लगजाय और जलकर राख का ढेर बन जाय तो जो दशा खेत के स्वामी किसान की होती है, उससे भी भयकर दशा माता हुलासाबाई की बन रही थी। पति का आकस्मिक देहान्त और वह भी उस अवस्था में जब कि बच्चे बहुत छोटे हो उनका कोई सरक्षक न हो तो नारी जीवन में एक भूकम्प सा ला देता है। हुलासाबाई को ऐसा धक्का लगा, बेहोश होकर गिर पड़ी। घरमे कोहराम मच गया। बच्चो का रुदन देखा नही जा रहा था। घर के इस करुणाजनक दृश्य को देखकर वज्रहृदय मनुष्य भी अपने दिल को नही सम्भाल सकता था। सभी के आखो मे समवेदना के

आंसू थे। गांव का प्रत्येक व्यक्ति इस दुर्घटना से व्यथित था, परिपीडित था, शोक मानो साकार रूप धारण करके आ गया था।

जीवन और मृत्यु

जीवन और मृत्यु का सम्बन्ध आज का नहीं बहुत पुराना है, इतना पुराना कि ढूंढने पर भी उसका आरंभ मिल नहीं सकता। इसीलिए शास्त्रकारों ने इस सम्बन्ध को अनादिकालीन सम्बन्ध बतलाया है। पहले कोई इस सम्बन्ध को तोड नहीं सका और भविष्य में कोई तोड नहीं सकेगा। इसके अतिरिक्त जब मृत्यु का आक्रमण होता है तो संसार की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। सभी, स्त्री पुत्र, मित्र, भाई, बन्धु रिश्तेदार सब देखते ही देखते रह जाते हैं, पशुओं के झुण्ड में से शेर किसी पशु को जब पकड लेता है, तब उसे कोई जैसे छुडा नहीं सकता, वैसे मृत्यु का शेर जब आक्रमण करता है और किसी जीव को पकड कर ले जाता है, उसे अपना भोज्य बना लेता है, तो सगे सम्बन्धी भी उसे छुडाने में असमर्थ रहते हैं। इसलिए उत्तराध्ययन सूत्र में मंगलमूर्ति भगवान् महावीर ने संसार की मोहमाया में फंसे प्राणियों को सम्बोधित करते हुए फरमाया था -

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले।
न तस्स माया न पिया व भाया, कालम्मि तम्मंसहरा भवन्ति॥—उ०अ० १३।२२

जैसे सिंह हरिण को पकड कर उसकी जीवन लीला समाप्त कर देता है, उसी प्रकार अन्तकाल आने पर मृत्यु निश्चितरूप से मनुष्य को आ दबोचती है, परलोक में ले जाती है, उस समय उस मनुष्य की माता, उसका पिता अथवा भ्राता उसके मृत्युजन्य दुःख में अंशधर-भागीदार नहीं बनते।

भगवान् महावीर की यह कल्मषहारिणी, पवित्र वाणी सेठ देवीचन्दजी के जीवन में पूर्णतया चरितार्थ हो रही थी। सेठजी के घर में आर्थिक दृष्टि से कोई कमी नहीं थी, सुयोग्य पतिव्रता पत्नी थी, आज्ञाकारी एक पुत्री और किशोर दो पुत्र थे, सगे सम्बन्धी रिश्तेदार मित्र तथा गांव के लोग सेवा में उपस्थित थे प्रत्येक दृष्टि से बहुत पहुंच थी, परन्तु जब मृत्यु आई, सबके मध्य में से इनको उठाकर ले गई। न धन काम आया न स्त्री बचा सकी, पुत्र भी खड़े के खड़े रह गये। सगे सम्बन्धी रिश्तेदार इसप्रकार कोई भी सेठजी के जीवन की सुरक्षा नहीं कर सका। यह दशा सेठ देवीचन्द जी की ही नहीं संसार सभी की है। चक्रवर्ती छ खण्ड का नाथ होता है, ३२ हजार राजा सेवा में हैं, अन्य वैभव का क्या कहना? तथापि मृत्यु के समय कोई कुछ नहीं

११ नारी का आदर्शरूप

मानसशास्त्र का यदि गंभीरता के साथ अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि दुःख का वेग जब प्रबल हो जाता है, संकट की काली घटाएँ उमड़ उमड़ कर जब जीवन-नभ पर छा जाती हैं, तो कई बार जीवन में निराशा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि मनुष्य जीवन से मृत्यु को अधिक महत्व देता है। उसके रोम-रोम में जीवन समाप्त कर लेने का ही स्वर निकलता है, वह सदा मर जाने के ही स्वप्न देखता है, परन्तु जब उसका मन कुछ शान्त होता है और गंभीरता की छायातले बैठकर चिन्तन करता है तो आत्महत्या का संकल्प उसे जानो भूल प्रतीत होती है उसकी अन्तर्वीणा झंकृत हो उठती है। वह सोचता है दुःखों से घबरा कर मृत्यु की बात सोचना जीवन की बहुत बड़ी दुर्बलता है, कायरता है, व्यक्ति की दूरदर्शिता और विवेकशीलता की हीनता का प्रतीक है। वस्तुतः मरने को सुख का साधन समझना, अज्ञान ही है। संभव है इसीलिए उर्दू भाषा के एक अनुभवी कवि को यह कहना पड़ा हो—

अब तो घबरा के कहते हैं कि मर जायेंगे।
मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे॥

चिन्तन के क्षेत्र में जब पहुँचते हैं, तो दुःख का कारण जीव का अपना ही अशुभ कर्म उत्तरदायी होता है। अशुभ कर्म के अभाव में दुःख ढूँढने पर भी दिखाई नहीं पड़ता। इसके अस्तित्व में न चाहते पर भी दुःख मनुष्य को घेर लेते हैं। इसके अतिरिक्त यह बात भी सर्वथा असंदिग्ध है कि जबतक जीव संसारी है, आवागमन के चक्र में फँसा हुआ है, तबतक कर्म उसके साथ रहता है। मनुष्य कहीं भी चला जाए, कर्म उसका साथ नहीं छोड़ता, जैसे हजारों गौओं में बछड़ा अपनी माँ के पास पहुँचता है, वैसे कर्म भी अपने कर्ता को नहीं

भुगतना। अधिक क्या जब मनुष्य मरता है, तभी ही मकान दुकान माता पिता भाई बहिन पुत्र पुत्री नारी आदि सब कुछ यह छोड़ जाता है किन्तु कर्म तब भी उसके साथ ही रहता है। वह उससे अलग नहीं होता, इस विचार विमर्श से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि मनुष्य के भाग्य में दुःख पाना ही लिखा है, तब सुख पाने की इच्छा से यदि आत्महत्या भी कर लेता है, पर जाता है तब भी वह अपने जीवन में सुखी नहीं हो सकता। वह कहीं भी चला जाय अशुभ कर्मों के प्रकोप के कारण उसे दुःखों की ज्वालाओं में जलना ही पड़ता है, अतः जो लोग इस सत्य को समझते हैं, कर्मशास्त्र के मर्म से सुपरिचित हैं, वे दुःख की घड़ियों में कभी घबराते नहीं, विवेक और सहिष्णुता के सहारे पर चलते हुए आत्महत्या का संकल्प मन में नहीं लाते, प्रत्युत कर्मों के प्रहारों को शान्ति और धीरता के साथ सहन करते हैं। दुःख को कर्मभोग मानकर डांवाडोल नहीं होते। माता हुलासा बाई का जीवन इस सत्य का एक ज्वलन्त उदाहरण है। उसकी अपनी छोटी अवस्था थी, बच्चों की अबोध दशा थी। ऐसी दशा में उसके सौभाग्य का लुट जाना, उसका विधवा बन जाना, बहुत बड़ी दु:खद घटना है। भूकम्प जैसी एक भीषण स्थिति है। सुनने वाले का मानस सिहर उठता है, जिसके जीवन में यह भूकम्प आया हो तो उसके दुःखातिरेक का तो कहना ही क्या है? धन्य है माता हुलासा बाई जो इस दुःख वेला में भी डांवाडोल नहीं हो पाई। प्रत्युत शान्त रही, उसने सोचा मेरा पति से इतना ही सम्बन्ध था। संयोग के साथ वियोग का अनादि कालीन सम्बन्ध है। उसे तोड़ा नहीं जा सकता। आयुष्य कर्म की समाप्ति पर जीवन का वृक्ष कभी खड़ा नहीं रह सकता, उसे धराशायी होना ही पड़ता है। मालूम होता है वह एक आदर्श एवं विचारक नारी थी। वह अच्छी तरह जानती थी—

> अरक्षितं तिष्ठति दैव—रक्षितं।
> सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति॥
> जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः।
> कृत-प्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति॥ पञ्चतन्त्र

रक्षा का कोई साधन न होने पर भी दैव रक्षित (भाग्य से रक्षित) मनुष्य सदा सुरक्षित रहते हैं, और रक्षा के सभी साधनों से सम्पन्न दैवहत (भाग्य से अरक्षित) मनुष्य विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। देखा गया है कि वन में विसर्जित असहाय बच जाता है और घर में अनेकविध प्रयत्न करने पर भी मनुष्य मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

जीवन मे विवेक का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। विवेक का अर्थ है, यथार्थ ज्ञान, विचार, भले बुरे की पहचान, वस्तुओं में उनके गुण के अनुसार भेद करने की शक्ति। विवेक का दीपक जब हृदय मे जगमगाने लगता है तो अवस्थित अज्ञानान्धकार विनष्ट हो जाने पर उसमे ज्ञान के प्रकाश का आविर्भाव हो जाता है। ज्ञान—प्रकाश से प्रकाशित जीवन सुख और दुःख दोनो अवस्थाओं मे सूर्य के समान एक सा रहता है। एक मनीषी विद्वान् इस सत्य को कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त करते हैं।—

उदये सविता रक्त, रक्तश्चास्तमये तथा।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥१॥

आचार्य कहते हैं कि—उदय हो या अस्त, दोनो दशाओं मे जैसे सूर्य अपनी लालिमा नही छोड़ता, वैसे विवेकशील व्यक्ति भी जीवन की उदय अस्त अवस्था मे अपने बौद्धिक सन्तुलन को डांवाडोल नहीं होने देता। विद्वान् आचार्य से प्रतिपादित यह सत्य माता हुलासाबाई के जीवन मे स्पष्टरूप से चरितार्थ होता दिखाई दे रहा है। नारी जीवन मे वैधव्य से बढ़कर कोई दुःख नहीं होता। जिस नारी का सौभाग्य लुट गया हो, उसका सब कुछ लुट जाता है, परन्तु माता हुलासाबाई अपना सब कुछ लुटाकर भी मन पर नियन्त्रण रखे हुए हैं, उसे सभाले हुए हैं। जीवन मे कर्मप्रदत्त दुःख को शान्त और धीर भाव से सहन कर रही है। अपने जीवन क्षेत्र को निशा की काली रात्रि द्वारा आक्रान्त नही होने दिया, प्रत्युत धीरता सहिष्णुता तथा उत्साह शीलता की पूर्णिमा के प्रकाश से ही उसका जीवन क्षेत्र सदा प्रकाशित रहा। सुख दुःख की प्रत्येक घड़ी मे समता की शीतल छाया तले ही उसने अपनी जीवन यात्रा सम्पन्न की। यही उनके जीवन की विशेषता है, आदर्शता है। नारी का जो एक आदर्शरूप होना चाहिये, उसके दर्शन हमे माताजी के जीवन मे स्पष्टरूप से हो रहे हैं।—

ध्यान के चार रूप—

एक लक्ष्यपर चित्त को एकाग्र कर लेना ध्यान कहलाता है। श्री स्थानाङ्ग सूत्र मे ध्यान के चार प्रकार लिखे हैं। वे ये हैं।

१ आर्तध्यान—अति-दुःख के निमित्त या दुःख मे होने वाला ध्यान-आर्तध्यान है। अथवा मनोज्ञ वस्तु के वियोग एवं अमनोज्ञ वस्तु के संयोग आदि के कारण चित्त की व्याकुलतागत तन्मयता को आर्तध्यान कहते हैं।

२ रौद्रध्यान—हिंसा-झूठ-चोरी धनकी रक्षा मे मन जोड़ना अथवा

...पर्यालोचन में मन को एकाग्र कर
...श्रुत चारित्ररूप धर्म मे युक्त ध्यान धर्मध्यान कहा जाता है।

४ शुक्लध्यान—पूर्व विषयक श्रुत के आधार से मन की अत्यन्त स्थिरता
...योग का निरोध शुक्लध्यान है। अथवा जिस ध्यान मे विषयो का सबध
...र भी वैराग्य बल से चित्त बाहरी विषयो की ओर नही जाता तथा
... का छेदन होनेपर भी स्थिर हुआ चित्त ध्यान मे लेश मात्र भी नही
..., उसे शुक्लध्यान कहते है। आर्त आदि चार ध्यानोमे प्रथम दो ध्यान
... के कारण होने से दुर्ध्यान माने गये है। अत ये दोनो हेय है, त्याज्य
... और शुक्ल ये दो ध्यान मोक्ष के कारण होने से शुभध्यान है और
ग्रहण-करने योग्य माने है।

... जैन साहित्य मे ध्यान सम्बन्धी चिन्तन, मनन को लेकर बहुत कुछ लिखा
...। सभी कुछ यहाँ लिखना हमारा उद्देश्य नही है। प्रस्तुत मे आर्त-
... सम्बन्ध मे कुछ निवेदन करना है। भगवती सूत्र तथा स्थानाग सूत्र
...ध्यान के १-आक्रन्दन २-शोचन ३ परिवेदना और ४ तेपनता ये चार
... बताए है। ऊँचेस्वर मे रोना और चिल्लाना आक्रन्दन है। आँखो
...लाकर दीनभाव धारण करना, शोचन है, बार-बार क्लिष्ट भाषण
...लाप करना, परिवेदना और आँसू गिराना तेपनता है। आर्तध्यान
...ओ का अध्ययन करने से मालूम होता है कि आज हिन्दू समाज मे
...र जाने के पश्चात् जो रोने पीटने और स्यापे की प्रथा दिखाई
... सब आर्तध्यान की वृत्तियो का ही परिणाम है।

... जा चुका है कि आर्तध्यान अप्रशस्त ध्यान है, दुर्ध्यान है।
...-मरण की परम्परा का कारण माना है। इससे गति बिगड जाती
... दुर्गतियो मे भटक जाता है। आर्तध्यान के दुष्परिणाम
...ी विवेकशील व्यक्ति इससे दूर रहता है, आर्तध्यान को निकट
...ा। इष्ट वियोग हो या अनिष्ट सयोग, भयकर रोग हो या
...क, तथापि विचारशील व्यक्ति मन को आर्तध्यानी बनने नही
... बडे सकट मे भी मन पर अकुश रखता है। यह सत्य है कि
... बडा कठिन होता है, पुत्र या पति आदि का वियोग हो, सकटो
...ी वर्षा हो रही हो, उस समय मन को आकुल व्याकुल न होने
...को कर्मभोग समझकर शान्तभाव से सहन करना, साधारण बात

निराला स्वावल

नारी निर्बल नहीं है

जन साधारण में प्रायः यह बात कही जाती है कि नारी स्वभाव
शक्तिहीन, साहस, पराक्रम तथा उत्साह से शून्य होती है। प्रकृति न
कोमलता और सुकुमारता इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न कर दी है कि
जरा से कठिन और श्रमसाध्य कार्य से व्याकुल हो जाती है। किसी समय
साधारण सा कष्ट भी आ जाए तो वह सिहर उठती है, इसका मस्ति
चकरा जाता है, निराशा में इतनी अधिक घिर जाती है कि सावन-भा
की तरह आंसुओं की झड़ी लगा देती है। नारी की इस दीनता-पूर्ण दश
देखकर बरबस यह कहना पड़ता है कि प्रकृति ने इसे साहस और क्षमता
वञ्चित ही रखा है। इस प्रकार कहने वाला जो चाहे कह सकता है, किन्तु
जब नारी जगत् का अतीत और आधुनिक इतिहास पढ़ते हैं तो उक्त कथन के
विश्वास में कोई सत्यता प्रतीत नहीं होती। लोगों ने नारी-जगत् को जितना
दुर्बल और शक्तिहीन समझ रखा है, उतना वह है नहीं। प्रत्युत कई बार तो
वीरता के क्षेत्र में वह पुरुष को भी पछाड़ देती है। जब जब और जहाँ-जहाँ
समय आया, तब-तब नारी-जगत् ने साहस और पराक्रम के वे वे जौहर दिखाए
है, कि साहस और पराक्रम का अभिमान रखने वाले पुरुष-जगत् को भी
आश्चर्य-चकित करके रख दिया। प्राचीन इतिहास को देखते हैं तो ब्राह्मी,
सुन्दरी, सीता, सुमित्रा, कौशल्या, द्रौपदी, चन्दनबाला, सुभद्रा आदि वीर
नारियों के ऐसे-ऐसे नाम सामने आते हैं, जिन पर आज भी भारतीयों को
बड़ा गौरव है। भगवतीस्वरूप इन सन्नारियों की भगवान् की तरह पूजा
होती है। अन्तिम शताब्दियों में झांसी की रानी, लक्ष्मीबाई और गढ़मंडला

समझ में आ सकता है किन्तु सबल होने पर भी दूसरों से सुख-वैभव पाने की लालसा रखना जीवन की बहुत बड़ी दुर्बलता है। मूढ़ता है। वे लोग गिरे हुए होते हैं। पुरुषार्थ और विवेक से दूर हैं। अशुभ कर्मों का उदय हो जाने पर आर्थिक या पारिवारिक दृष्टि से निर्बल हो जाना पड़ता है, किन्तु शुभ कर्मों की पूर्ण कृपा होने के कारण प्रत्यक्ष दृष्टि से सम्पन्न होने पर भी इधर उधर से बटोरते रहना, अपने को दीन-हीन सा प्रकट करना, निर्धनों की भांति गिड़गिड़ाते रहना विडम्बना कहलाता है। निर्बल होने पर भी किसी की ओर न देखना, किसी से सहायता की आशा न रखना अपने हाथों से श्रम करके ही अपने जीवन-निर्वाह का भार लेना, बड़ा कठिन कार्य है। धन्य है, माता हुलासाबाई जिसने वैधव्य दशा में भी किसी से सहायता नहीं मांगी, बच्चे छोटे छोटे हैं, सर्वथा अबोध हैं, काम करने की उनमें अभी कोई क्षमता नहीं है। तथापि किसी से सहायता न लेना, अपने श्रम से अपने परिवार खड़ा होना, खाला जी का बाड़ा नहीं है। माता हुलासाबाई का यह निराला स्वावलम्बन आदर्श बनकर सदा नारी जगत् का मार्गदर्शन करता रहेगा। धन्य वह जननी, जिसने हुलासाबाई जैसे कन्या-रत्न को जन्म दिया था, धन्य है वह पति, जिसे स्वावलम्बन की साकार प्रतिमा हुलासाबाई जैसी चारित्र सम्पन्ना तथा श्रमशीला पत्नी मिली, तथा धन्य है वह पुत्र, जिसे साहस और शक्ति का पुञ्ज हुलासाबाई जैसा निराला स्वावलम्बी मातृ-जीवन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

श्री नेमीचन्द्रजी का शैशव-काल

कहा जा चुका है कि चिचोडी गांव के प्रसिद्ध श्रावक सेठ देवीचन्द्र जी जैन के दो पुत्र थे। बड़े श्री उत्तमचन्दजी थे और छोटे श्री नेमीचन्द्रजी। पुत्र तो दोनों ही सुयोग्य विनीत और आज्ञाकारी थे, परन्तु छोटे पुत्र श्री नेमीचन्द्रजी का जीवन कुछ निराला ही था। जिस दिन से इन्होंने घर मे जन्म लिया था, तब से सेठ साहब अपने आपको विशेष सुखी अनुभव करने लगे थे। मान-प्रतिष्ठा, सुख, वैभव, व्यापार सभी दृष्टियों से चढ़ती कला चल रही थी। पुण्य-वान् जीव का घर मे आना, जन्म-जन्मान्तर के शुभ कर्मों का ही सत्परिणाम होता है। सेठ देवीचन्दजी के पुण्य का प्रकर्ष ही समझिए कि इन्हें नेमीचन्द्र जैसे महा भाग्यवान् पुण्यात्मा पुत्र के पिता बनने का सौभाग्य उपलब्ध हुआ।

निधि के पाँच प्रकार

सुयोग्य पुत्र माता पिता के सुख का कारण बनता है—परिवार, जाति कुल और प्रान्त की प्रतिष्ठा को चार चान्द लगा देता है। सभव है शास्त्रकारों ने इसीलिए पुत्र को निधि रूप मे स्वीकार किया है। वैसे रत्न स्वर्ण आदि द्रव्य जिसमे रखे जायें, ऐसे पात्र आदि को निधि कहते हैं, किन्तु निधि की तरह जो आनन्द और सुख के साधन रूप हों, उन्हे भी निधि कहा जाता है। श्री स्थानाग सूत्र स्थान ५ उद्देशा ३ के ४४८ वें सूत्र मे निधि के पांच प्रकार लिखे हैं, वे ये हैं—

१. पुत्रनिधि—पुत्र स्वभाव से ही माता पिता के आनद और सुख का कारण होता है, तथा धनोपार्जन करके उनका निर्वाह करवाता है, अतः वह निधिरूप है।

२. मित्रनिधि—मित्र अर्थ और काम का साधक होने से आनन्द का कारण बनता है, इसलिए उसे निधि के रूप में स्वीकार किया गया है।

... आनंद और सुखकर है, इसलिए ... माना गया है।

४. धननिधि - सोना चांदी हीरा, मोती आदि सम्पत्ति सुख साधक होने से धन निधि है।

५. धान्यनिधि गेहूं आदि खाद्य पदार्थ प्राण रक्षक होने के कारण निधि रूप माने गये हैं।

निधि के उक्त पाँच प्रकारों में पहला सम्मान्य हुआ स्थान पुत्र को है, पुत्र भी सब एक समान नहीं होते हैं। किसी का भाग्य सामान्य और किसी का प्रबल होता है। संभव है, इसी कारण कवियों की धर्मवीणा में यह स्वर गूंज उठा था।

"इक बाप के दो बेटे किस्मत जुदा जुदा है"

सेठ देवीचन्दजी के जिस पुत्र के सम्बन्ध में हम कुछ कहना चाह रहे हैं, वे कोई सामान्य पुत्र नहीं हैं, वे तो एक होनहार पुत्र हैं। अध्यात्म-जगत् को इनपर महान गौरव है, अहिंसा, संयम और तप की चलती फिरती त्रिवेणी हैं, यही त्रिवेणी आज प्रातःस्मरणीय श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण जगत् के द्वितीय पट्टधर पूज्य श्री आनन्दऋषिजी म० के नाम से संसार में विद्यमान हो रही है। इस तेजस्वी, वर्चस्वी तथा महान् सन्त के चरणों की रज लेकर आज मनुष्य तो क्या स्वर्गपुरी का देवता भी अपने भाग्य की सराहना करता नहीं थकता। धन्य है सेठ देवीचन्दजी, जिनको ऐसे धर्मप्राण पुत्र के पिता होने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

बालरूप में योगी

नेमीचन्द्र अभी बालक थे, अवस्था बहुत छोटी थी, पर इनका उठना बैठना, चलना फिरना आदि सभी चेष्टाएं कुछ विलक्षणता को लिए हुई थी। सामान्य व्यक्ति तो इतना ही समझ लेता था कि यह बालक बड़ा शिष्ट विनीत और बड़ा नम्र है, किन्तु जब कोई अनुभव की आँखों से देखता था, तो बरबस बोल उठता था कि यह बालक या तो महान् योगी होगा, या किसी देश का शासक बनेगा। छह या सात वर्षों की क्या आयु होती है! परन्तु श्री नेमीचन्दजी उस समय ध्रुव भक्त की तरह अपनी भावी महानता को धीरे-धीरे अभिव्यक्त करने जा रहे थे। गंभीरता और विरक्ति ये दो बातें विशेष रूप से

इनमें देखने को मिलती थी। संसार के आमोद प्रमोद, खेल तमाशों में कोई लगाव नहीं था। समान आयु के बालक कुश्ती, खेल कूद में सम्मिलित होने के लिए आग्रह करते, लड़ते झगड़ते, शोर मचाते, पर इनपर प्रायः कोई असर नहीं पड़ता था। ये सबको इनकार कर देते। गम्भीरता तथा स्नेहपूर्ण भाषा में समझाकर उनको भेज देते। बालक हो या युवक, स्त्री हो या पुरुष, रंक हो राजा, ढोंगी हो या त्यागी, पूर्व-जन्म के संस्कारों का जीवन पर बड़ा महत्वपूर्ण स्थान होता है। किन्हीं भी परिस्थितियों में मनुष्य का जन्म हो, पर संस्कारों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। भक्तराज प्रह्लाद भले ही अत्याचारी शासक हिरण्य के पुत्र थे, पर संस्कारों ने उन्हें एक सच्चे धर्मात्मा और प्रभुभक्त के रूप में संसार के सामने प्रस्तुत किया। धार्मिक परिवार में जन्म लेने वाले बहुत से पुत्र दुरात्मा, दुराचारी, दुःशील और राष्ट्रद्रोही भी बनते देखे जाते हैं। यहां भी संस्कारों का ही प्रभाव मुख्य कारण मानना होता है। बालक - नेमीचन्द जी के जीवन को जब निकट से देखते हैं, तो यहां भी पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों की पवित्र छाया ही दिखाई देती है। बचपन के साथ खेलकूद, [illegible], दौड़धूप तथा खींचातान का बहुत पुराना सम्बन्ध चला आ रहा है, परन्तु इन्होंने उसे ऐसे मोड़ के रख दिया, जैसे कभी सम्बन्ध रहा ही न हो। इनके जीवन में 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात" का सत्य पूर्णतया चरितार्थ हो रहा था।

नेमीचन्दजी सांसारिक झंझटों से जितने दूर थे, उतने ही वे सतत प्रभुभक्ति साधु सन्तों का पवित्र समागम हो, कीर्तन हो, व्याख्यान का आयोजन हो, यह पता लगने की देर थी कि वे झट वहां पहुंच जाते थे। कई बार प्रबन्धक लोग "यह बच्चा है यह सन्तों की पवित्र वाणी को क्या समझ सकता है" यह सोच कर इनको सभा स्थान में जाने से रोकते, पर ये कभी रुकते नहीं थे। किसी न किसी तरह वहां पहुंच कर ही दम लेते। व्याख्यान स्थान में ऐसे बैठते जैसे कोई योगी ध्यान मुद्रा में बैठा है। इनकी तन्मयता, आसन की स्थिरता देखकर प्रबन्धक स्वयं आश्चर्य चकित रह जाते। इनकी इस प्रकार की अन्य अनेकविध चेष्टाओं ने ही लोगों को यह एक असाधारण बालक है" वैदिक जगत् के ध्रुव था या जैन जगत् के अतिमुक्त (अयवन्ता) कुमार का ही दूसरा रूप है, यह कहने के लिए विवश कर दिया था।

मधुर गायक

श्री नेमीचन्दजी बचपन से ही एक मधुर गायक और संगीत प्रेमी थे।

विशेषरूप से त्याग, वैराग्य और प्रभुभक्ति के गीतों से इनको बहुत प्रेम था। जहाँ इनके कानों में भक्तिपूर्ण संगीत की ध्वनि पड़ जाती, वे वहीं रुक जाते, बड़े प्रेम से सुनते झूम उठते। साथ में गुनगुनाते भी थे। तुम कभी को ऐसा समझिये, इनका अपना कण्ठ भी बड़ा मधुर था। जब ये स्वयं संगीत बोलना आरम्भ करते तो लोगों के कान खड़े हो जाते थे। उनका प्यार भरा माधुर्य भरा स्वर सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। अभी गत वर्ष काश्मीर प्रदेश की राजधानी जम्मू में परम श्रद्धेय, जैनधर्मदिवाकर, आचार्यसम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० के चरणों में मेरा चातुर्मास था। चातुर्मास काल में मुझे आचार्य देव का मंगलमय प्रवचन सुनने का विशेषरूप से अवसर प्राप्त रहा। श्रद्धेय आचार्य श्री व्याख्यान में जब कभी प्रसंगानुसार कोई संगीत बोला करते तो सन्नाटा छा जाता था, कण्ठ में इतनी सरसता और मधुरता अनुभव में आई कि कुछ कहते नहीं बनता। श्रोताजन मन्त्रमुग्ध हो बैठे रहते और आनन्दातिरेक से झूमते हुए दिखाई देते थे। मैं सोचता हूँ हमारे आचार्य प्रवर की इस समय लगभग ६८ वर्ष की आयु है, जब इतनी बड़ी आयु में इनके कण्ठ में इतनी मधुरिमा सरसता है, तो बचपन में कण्ठगत माधुर्य की कल्पना ही क्या की जा सकती है? पाठक पूछ सकते हैं? बात चल रही थी श्री नेमीचन्द जी की और बतलाया जाता है कण्ठगत माधुर्य, श्रमणसंघ के आचार्य सम्राट् का दोनों का आपस में क्या सम्बन्ध? प्रिय पाठकों? ये नेमीचन्दजी कोई अन्य व्यक्ति नहीं है, किन्तु ये तो हमारे आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्दऋषि जी म० ही हैं। आगे चलकर यही नेमीचन्दजी संयम साधना के महापथ पर चलते हुए श्रमण संघाधिपति पूज्य श्री आनन्दऋषि जी म० के नाम से संसार में प्रसिद्ध हो रहे हैं।

मैं कह रहा था कि श्री नेमीचन्दजी का कण्ठ बड़ा मधुर था, उसमें एक अपूर्व एवं विलक्षण मिठास था, आकर्षण था, जन मन को अपनी ओर आकर्षित करने की अद्भुत क्षमता थी। इनके गीतों को गांव वाले बड़े चाव के साथ सुनते थे। स्वयं साधु सन्त भी इनके भजनों स्तवनों से अत्यधिक प्रभावित थे। जहाँ कहीं भी कोई धार्मिक आयोजन होता, वहाँ श्री नेमीचन्द्रजी का संगीत अवश्य चलता था, इनके संगीत के बिना आयोजन कर्त्ता अपने आयोजन को नीरस ही मानते थे। श्रोताजनों की ओर से "नेमि का संगीत अवश्य हो" यही स्वर सुनाई पड़ते थे। कलाओं में गायनकला का भी एक आदरास्पद स्थान है। इसमें जादू का सा प्रभाव रहता है। संस्कृत-साहित्य तो मुक्त कण्ठ से गायन कला का गुणगान करता दिखाई देता है। गायनकला के मार्मिक विद्वान् एक

स्थान में पुत्र के निम्न चार प्रकार बताये है। उनका नाम निर्देशपूर्वक अर्थ सम्बन्धी ऊहापोह इस प्रकार है।

१. अतिजात – आचार-विचार तथा प्रसिद्धि की दृष्टि से पिता से अधिक मान प्राप्त करने वाला अतिजात पुत्र कहलाता है। देश, जाति तथा परिवार मे पिता ने जितना यश प्राप्त किया है, यह पुत्र उससे अधिक यश प्राप्त करते हैं, पिता से बढ जाते हैं। उदाहरणार्थ - राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, नानक आदि युगपुरुष ऐसे ही अतिजात पुत्र थे। अध्यात्मजगत् मे आज इनके नाम की माला जपते हैं। इन पुत्रों मे जो आस्था तथा निष्ठा उपलब्ध हो रही है, वह अनुपम है।

२. अनुजात - आदरमान की दृष्टि से पिता के समान रहनेवाले अनुजात पुत्र कहे जाते हैं। जिस पथ पर पिता चलते थे, उसी पर यह चलते हैं, पिता से न आगे बढते है और न ही उनसे पीछे रहते हैं। खानपान, रहन-सहन, आचार-विचार, आहार तथा व्यापार को लेकर पिता-पुत्र में कोई मौलिक अन्तर नही होता। जिस आदर से या अनादर से लोग पिता को देखते हैं उसी से पुत्र को निहारते हैं।

३. अपजात—सामाजिक मर्यादा, तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि पिता से पीछे रहने वाले, पिता की यशसम्पत्ति को लुटानेवाले, भाग्यहीन बालक अपजात पुत्र माने जाते हैं। पिता लखपति थे, व्यवसाय बड़ा अच्छा था, लोगो मे प्रतिष्ठा थी, परन्तु पुत्र ने अपनी मूर्खता तथा अदूरदर्शिता मे सब कुछ खो दिया। वह लोगो मे अपमानित होकर रहता है, दरिद्रता ने उसके जीवन को नीरस बना दिया है, पेट भरना भी एक समस्या हो रही है, धर्मध्यान से सदा दूर रहता है।

४. कुलाङ्गार—कुल के लिए जो बच्चे अङ्गार के समान होते हैं वे कुलाङ्गार पुत्र समझे गये हैं। अङ्गार स्वय भी जलता है, और अपने सम्पर्क मे आने वाले को भी जला डालता है। इसी प्रकार ऐसे पुत्र भी होते हैं, जो स्वय भी दुःखी होते हैं और अपने माता-पिता, परिवार, कुल, जाति को भी परिपीडित करते हैं। पिता की लाखो की सम्पत्ति को स्वाहा बना डालते हैं। श्रद्धेय आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० अपने प्रवचन मे फरमाया करते हैं कि दो भाई थे, पिता मरता हुआ २१ लाख की सम्पत्ति छोड गया था। एक दुकान को लेकर भाइयों में विवाद खड़ा हो गया। एक कहता था कि यह मैं लूगा, दूसरा अपने लिए चाहता था। मुकदमे मे दोनो बर्बाद हो

१४

भगवती विद्या के मन्दिर में

मानव जीवन में विद्या का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। विद्या एक अपूर्व प्रकाश है, उसके द्वारा मनुष्य के जीवन में अज्ञान रूप अन्धकार नष्ट होता है, उसके आन्तरिक नेत्र खुल जाते हैं। क्या हेय है ? क्या उपादेय है ? इस तरह अपनी हानि—लाभ सोचने की उसमें क्षमता प्राप्त होती है। मनुष्य कितना भी कुरूप हो, खराब आकृति वाला हो, पर यदि उसके पास विद्या का प्रकाश है, तो वह रूपवान् मनुष्य से भी अधिक सम्मानित हो जाता है, इसीलिए विद्या को कुरूपों का रूप माना गया है।

> विद्यारूपं कुरूपाणां क्षमारूपं तपस्विनाम्।
> कोकिलानां स्वरोरूपं, स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्॥

विद्या एक अपूर्व कोष है

कोष का अर्थ है खजाना। विद्या भी एक कोष है। सुवर्ण आदि के कोषों की अपेक्षा यह विद्याकोष एक विलक्षण निराला कोष है। हम देखते हैं, कि सुवर्ण, रजत, धन और धान्य आदि के जितने भी कोष है, यदि सुवर्ण आदि द्रव्य उनमें से निकालने आरम्भ करदिये जाँय, तो उनमें स्वल्पता-कमी आने लगती है। उनमें रखे द्रव्य-संख्या की दृष्टि से कम होने आरम्भ हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि उन कोषों में से कुछ न निकाला जाय, तो वहां रखे द्रव्य कम नहीं होते, जितनी संख्या में रखे हैं, उतने ही रहते है। निकालने से घटते है, वैसे नहीं। किन्तु विद्या का कोष ऐसा अपूर्व कोष है, कि इसमें से जितना मन चाहे, विद्याधन निकाल ले, पर इसमें कोई कमी नहीं आती, प्रत्युत वह बढ़ता ही चला जाता है। विद्याधन निकालने पर भी उसकी समृद्धि होती है, इसके विपरीत यदि उसमें से कुछ न निकालें, अर्थात् विद्याधन का उपयोग

करना बन्द कर दें, तो वह कम होना आरम्भ हो जाता है। सुवर्णादि कोषों की तरह वह ज्यों का त्यों नहीं रहता। विद्याधन निरालापन, उपयोग में लाने पर बढ़ता है और न निकालने पर घटता है। यही इस विद्या कोष की अपनी अपूर्व विशेषता है अलौकिकता है। संस्कृत के अनुभवी विद्वान् इसी सत्य को कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त कर रहे हैं -

> अपूर्व कोऽपि कोषोऽयं विद्यते तव भारति ।
> व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात् ॥१॥

विद्या के आठगुण

विद्या गुणों का एक अपूर्व भण्डार है। विद्यागत गुणों का परिगणन करना बड़ा कठिन कार्य है, तथापि मनीषी विद्वानों ने विद्या के गुणों का सकलन करते हुए उनके आठ रूप प्रस्तुत किये हैं। निम्नांकित श्लोक में इन्हीं गुणों की ओर संकेत किया गया है।

> विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो ।
> धेनु. कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीय च सा ॥
> सत्कारायतन कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणम् ।
> तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्व वि विद्याधिकार कुरु ॥१॥

प्रस्तुत श्लोक में आचार्यों ने विद्या के आठगुणों का निर्देश करके मानव-जगत को यह सत्प्रेरणा प्रदान की, सब काम छोड़कर विद्या का उपार्जन करो। वे आठगुण इस प्रकार है—

१ विद्या मनुष्य के यश को फैलाती है।

२ भाग्यक्षय (ऐश्वर्य का नाश) होने पर विद्या ही मनुष्य को आश्रय प्रदान करती है।

३ विद्याकामधेनु-सी है, प्रत्येक कामना को पूर्ण करने वाली है।

४ बन्धु, स्त्री, पुत्र, पिता आदि का विरह-वियोग हो जाने पर विद्या मनुष्य के डावाडोल हुए मानस को सभालती है, उसे शान्त बनाए रखती है।

५ विद्या तीसरी आंख है, चर्मचक्षुओं द्वारा बाह्य ससार देखा जाता है, परन्तु ज्ञानरूपी चक्षु से अन्तर्जगत् के दर्शन होते है।

६ विद्या सम्मान का घर है, राजा की अपने देश में पूजा होती है, पर विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।

७ विद्या से कुल की महिमा बढ़ती है। विद्या जनित चमत्कारों द्वारा

विद्वान् सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त करके अपने कुल की प्रतिष्ठा को चार चान्द लगा देता है।

८ विद्या विना रत्नों के आभूषण है। रत्न जडित अनेक-विध आभूषणो से आभूषित व्यक्ति जैसे सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, वैसे धन आदि सम्पत्ति से हीन होते पर भी विद्या के आभूषणो से विभूषित व्यक्ति सर्वत्र आदरास्पद बन जाता है। जन-मन उसे स्नेह श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखता है।

श्री नेमीचन्द जी पाठशाला में

स्वतत्र हो जाने के अनन्तर भारतवर्ष मे विद्या का क्षेत्र जितना विशाल दृष्टिगोचर हो रहा है, उससे पूर्व इतना नही था। स्वतत्रता से ५० वर्ष पीछे चले तो और भी दुरवस्था थी। विशेषरूप से गावो की स्थिति खराब थी, वहाँ पढ़ाई लिखाई का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नही होता था। कोई विरला ही ऐसा गाव देखने को मिलता था, जिसमें कोई पाठशाला हो, पढ़ने लिखने की व्यवस्था हो। सौभाग्य से अहमदनगर जिले के चिचोडी गाँव मे एक छोटी सी सरकारी मराठी पाठशाला थी। गाव के बालक उसी मे शिक्षा प्राप्त किया करते थे। *हमारे चरितनायक श्री नेमिचन्दजी को भी उसी पाठशाला मे* प्रविष्ट कराया गया। समय की बात समझिए कि चरितनायक के पाठशाला मे प्रविष्ट होने की देर थी, कि पाठशाला का वातावरण ही बदल गया। सर्वत्र चहल पहल सी दिखाई देने लगी थी। क्या प्रबन्धक क्या अध्यापक और छात्रवर्ग, सभी मे एक नूतन उत्साह नव्य चेतना, नई स्फूर्ति-सी आ गई थी। पाठशाला की उन्नति तथा प्रगति को देखकर सबने अनुभव किया कि जिस दिन से नेमिचन्द पाठशालामे आया है, उस दिन से पाठशाला मे नव जीवन आगया है। नेमिचन्द तो कोई भाग्यशाली जीव प्रतीत होता है। पुण्यात्मा का कुछ प्रभाव ही निराला होता है। पुण्यशाली जीव यदि जगल में बैठ जाय, वहाँ भी मगल हो जाता है। नव छात्र नेमिचन्दजी इस पुण्योत्कर्ष से पाठशाला का कण-कण प्रभावित हो रहा था।

विद्यार्थी सुयोग्य हो, परिश्रमी हो और विनयवान हो, तो अध्यापक को हार्दिक सन्तोष होता है। ऐसे छात्र को पाकर वह अपने को धन्य मानता है। परिणाम स्वरूप वह उसे ध्यानपूर्वक पढ़ाता है, लिखाता है, तथा उसे ऊँचा उठाने *का अधिकाधिक प्रयास करता है। और अपना समस्त ज्ञान उसमे डालने के लिए* लालायित रहता है। हमारे चरितनायक श्री नेमिचन्द जी तो योग्यता,

तीव्र-मनोविकार । क्रोध = दुःख । भगवान् महावीर फरमाते हैं कि विद्यार्थी व्यक्ति को क्रोध नहीं करना चाहिये । मनुष्य सामान्य मनुष्य है, उससे कभी न कभी भूल हो जाती है । चलता हुआ वह कहीं न कहीं पथ भ्रष्ट हो जाता है, ऐसी दशा में मार्गदर्शक या समझाने वाला उसे मार्ग दिखाता है, परन्तु यदि वह पुनः पथ भ्रष्ट हो जाए तो मार्गदर्शक उसे फिर दूसरी बार समझा देता है । यदि फिर भी वह न समझे तो कई बार उसे जरा आक्रोशपूर्ण भाषा में समझाना पड़ता है, पर यदि वह व्यक्ति क्रोधी होता तो वह आगे मार्गदर्शक की जरा सी कठोर बात भी सहन नहीं कर सकेगा, झुंझला उठेगा । जिसे जरा सी कठोर बात कहने पर क्रोध आ जाय, तो वह व्यक्ति विद्या के सर्वथा अयोग्य होता है । ऐसा व्यक्ति कभी विद्या नहीं प्राप्त कर सकता ।

महाभारत में एक प्रसंग आता है । पाण्डुपुत्र श्री युधिष्ठिर गुरुकुल में पढ़ रहे थे । एक दिन गुरुदेव ने सब छात्रों को पाठ पढ़ाया "क्रोधं मा कुरु" । अर्थात् क्रोध नहीं करना । अगले दिन सब छात्रों ने गुरु महाराज को कल का पढ़ा पाठ सुना दिया पर युधिष्ठिर मौन रहे । गुरुदेव बोले—युधिष्ठिर ! पाठ याद नहीं हुआ ? उत्तर में युधिष्ठिर कहने लगे गुरुदेव ! अभी याद नहीं हुआ । याद करने का प्रयत्न कर रहा हूँ । तीसरी बार पूछने पर भी जब यही उत्तर मिला, तो गुरुदेव ने युधिष्ठिर के मुंह पर एक तमाचा दिया । चपत पड़ते ही युधिष्ठिर बोले, गुरुदेव ! अब मुझे पाठ याद हो गया । गुरुदेव आश्चर्य चकित थे, चपत पड़ते ही कैसे पाठ याद हो गया ? गुरुदेव के पूछने पर युधिष्ठिर ने निवेदन किया । गुरुदेव ! राजकुमार होने के कारण मुझे सर्वत्र सम्मान मिलता है, अनादर करने का किसी को साहस ही नहीं है, फलतः क्रोध करने का कभी अवसर नहीं आता । आपने कल पढ़ाया था "क्रोधं मा कुरु" क्रोध का प्रसंग हो, पर क्रोध न किया जाय तभी कह सकता था, पाठ याद हो गया । बिना प्रसंग आये कैसे कहूँ कि पाठ याद कर लिया । अब मुख पर चपत लगी, राजपुत्र होने का जरा गर्व नहीं आया और न ही जरा क्रोध आया । क्रोध करने का प्रसंग उपस्थित था, किन्तु उसे निकट नहीं आने दिया, अतः अब कहने का साहस कर रहा हूँ कि पाठ याद हो गया ।

महाभारत के इस प्रसंग से यह भली भांति स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में पाठ को वही विद्यार्थी याद करता है, जो जीवन में क्रोध का प्रसंग नहीं आने देता । हमारे चरितनायक श्री नेमीचन्द जी बड़े शान्त स्वभाव के विद्यार्थी थे । पहले तो अध्यापक इन पर रुष्ट हों, किसी बात से नाराज हों,

प्रसंग ही नहीं आता। यदि कभी किसी भूल या भ्रान्ति के कारण अध्या-
ो इन्हें कुछ कहना पड़ता, तो ये बड़ी श्रद्धा से उसे सुनते। आने अध्या-
शिक्षापूर्ण वाक्य को वरदान समझकर जीवन में उतारने का न
जिस बात को लेकर अध्यापक ने इनको एक बार रोक दिया, पुनः उसे
मे लाने का ये अवसर नहीं देते थे। शान्ति, क्षमा सहिष्णुता की शीतल
ने ही प्रमुदित रहा करते थे। विद्यार्थी जीवन में इनका किसी - क
कोई विवाद खड़ा हुआ हो या किसी छात्र को इनके सम्बन्ध ई
करने का अवसर मिला हो, ऐसी कोई घटना पाठशाला के ...
 सामने नहीं आने पाई।

प्रमाद—शुभ कार्य में यत्न, उद्यम या पुरुषार्थ न करना, प्रत्युत
में प्रयत्नशील बनकर पुरुषार्थ करते रहना, प्रमाद कहलाता है।
सूत्र में प्रमाद के पाँच प्रकार लिखे हैं। जैसे कि १ मद्य, २
पाय, ४ निद्रा और ५ विकथा। मदिरा आदि नशीली वस्तुओं
रना, मद्य प्रमाद है। मदिरा सेवन वैयक्तिक, पारिवारिक, सामा-
राष्ट्रीय सभी दृष्टियों से हानिकारक है, अहितकर है। अत
न को मदिरा आदि नशीले पदार्थों का कभी सेवन नहीं करना
ोत्र, चक्षु, घ्राण रसना और स्पर्शन ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं ये
शब्द, रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श को ग्रहण करती हैं, अत ये
के विषय कहलाते हैं। इन विषयों में आसक्त रहना विषय
विद्यार्थी यदि सुन्दर-सुन्दर नगीनों की ओर आकृष्ट रहता है,
तियों के दर्शन में उलझ जाता है, सुगन्धित वातावरण में मन
है, चटपटे और स्वादिष्ट भोजनों के आस्वाद के लिए प्रयत्न-
ा शरीर को शृंगारित रखने के लिए सुकुमार और कोमल
वस्त्र के लिए अपने को सदा चिन्तित बनाए रखता है, तो
में उन्नति नहीं कर सकता, उसे इन्द्रियों के विषयों में उप-
हिये। विषय शब्द वासना, विषयभोग, मैथुन का भी बोधक
 का रोग जिसे घेर लेता है वासना की कामना जिसपर
, वह छात्र विद्या भगवती की आराधना नहीं कर सकता।

ाया निद्दा विगहा य पञ्चमी भणिया।
, जीवा पाडेन्ति संसारे।

वासना से प्रभावित व्यक्ति अपने जीवन का सर्वतोमुखी पतन कर लेता है। अतः विद्यार्थी को वासना-नागिनी के डंकों से अपने को सदा बचाते रहना चाहिये।

क्रोध, मान, माया (कपट) और लोभ को कषाय कहते हैं। क्रोध एक भीषण अग्नि है, इस आग में जलते रहने वाला विद्यार्थी विद्या से खाली रहता है। मान कुल, जाति बल रूप तप, विद्या लाभ और ऐश्वर्य भेदों से आठ प्रकार का माना गया है। जिस बालक में जाति आदि का अहंकार होगा, वह अध्यापक का कभी विनय नहीं कर सकेगा और विनय के अभाव में अध्यापक से विद्या की प्राप्ति नहीं हो पाती। अतः विद्या के अर्थी छात्र को अभिमान से कभी लगाव नहीं रखना चाहिये। माया कपट को कहते हैं। कहना कुछ और करना कुछ। दिखलाना कुछ और देना कुछ। ये सब रूप माया के होते हैं। मायावी विद्यार्थी विद्या के सर्वथा अयोग्य होता है। अतः सुयोग्य विद्यार्थी को माया जैसी नीच वृत्ति से सदा दूर रहना चाहिये। लोभ लालच का नाम है। यह सब पापों का मूल माना गया है। इसे पापों का बाप (जनक) भी कहते हैं। जिस छात्र में स्वार्थ प्रियता है, केवल अपने स्वार्थ की ही भावना निवास करती है, वह छात्र भी विद्या से वञ्चित रहता है। विद्यार्थी को परमार्थी भी होना चाहिये। दूसरे छात्रों का भला सोचना, उनके विकास के लिए प्रयत्न करना, यथासंभव, दूसरों के छात्र जीवन को ऊँचा उठाने के लिए सतर्क रहना भी सुयोग्य विद्यार्थी का कर्त्तव्य बनता है। केवल अपने ज्ञान-विकास की चिन्तना पर्याप्त नहीं है। दूसरों के समुत्कर्ष में अपना समुत्कर्ष समझने वाला विद्यार्थी ही सर्वप्रिय बन सकता है। ऐसे विद्यार्थी को ही अध्यापक विद्या के धन से मालोमाल बनाते हैं।

निद्रा का अर्थ है—प्राणी की वह अवस्था जिसमें संज्ञावहा नाड़ियों का काम रुक जाता है, आँखें बन्द हो जाती हैं, शरीर शिथिल पड़ जाता है और चेतना जाती सी रहती है। वैसे विद्यार्थी को निद्रा लेना, विश्राम करना, आवश्यक है, किन्तु आवश्यकता से अधिक निद्रा लेना, सदा सोते ही रहना, असमय में सोना, प्रमाद बन जाता है। यह प्रमाद विद्यार्थी के लिए हेय एवं त्याज्य है। मर्यादा से अधिक सोनेवाला व्यक्ति स्वास्थ्य की दृष्टि से भी घाटे में रहता है। अतः विवेकशील विद्यार्थी को आवश्यक निद्रा के अतिरिक्त अधिक निद्रा लेने की वृत्ति छोड़ देनी चाहिये।

मनीषी - अनुभवी विद्वानों का कहना है कि निद्रा को बढ़ाने से

जाय, तो यह बढ़ जाती है और इसे घटाने का प्रयत्न करते रहें, तो यह घट जाती है। इसी तथ्य को कृष्ण वासुदेव अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त कर रहे हैं—

> वर्द्धन्ते पञ्च कौन्तेय ! सेव्यमानानि नित्यशः ।
> आलस्यं, मैथुनं निद्रा, क्षुधा, क्रोधश्च पंचमः ॥

हे अर्जुन ! आलस्य, मैथुन, निद्रा, क्षुधा, और क्रोध इन पाँचों का ज्यों-ज्यों सेवन करते जाओ, त्यों-त्यों ये अधिक-अधिक होते जाते हैं सदा बढ़ते रहते हैं।

५. विकथा—जो राग-द्वेष पूर्ण होकर जो वचन बोले जाते हैं उन सब का बोधक है। स्त्री, भोजन, देश, तथा राजा के विषय में व्यर्थ की बात करते रहना, विद्यार्थी जीवन का बहुत बड़ा दूषण माना गया है। अमुक स्त्री का रूप बड़ा सुन्दर है, स्वर्ग की देवी उसकी क्या समानता कर सकती है ! जिसकी वह अर्धांगिनी बनेगी, संसार का सबसे बड़ा भाग्यशाली मनुष्य बनेगा, ऐसी वासनोत्तेजक वाणी स्त्री कथा है। अमुक भोजन बड़ा स्वादिष्ट होता है, यदि अमुक अमुक पदार्थों का संगम हो, तब भोजन बड़ा सरस तथा मधुर बनता है, आदि वचन-समुदाय भक्त कथा है। देशों में अमुक देश बड़ा सुन्दर है। वहाँ का वायुमण्डल स्वास्थ्यवर्द्धक है, वहाँ के स्त्री पुरुष बड़े सादा खुराकखोर होते हैं, अमुक देश के लोग बड़े क्रूर, विलासी, भ्रष्टाचारी एवं आततायी कहे जाते हैं, आदि बातें देश कथा के अन्तर्गत होती हैं। अमुक राजा बड़ा दुष्ट है, आततायी है, बादशाह है उसकी किस दिन मृत्यु होगी, वह धन्य दिन होगा, ऐसी बातों-विलास राज कथा है। विद्यार्थी जीवन यदि इन कथाओं में उलझा रहेगा, सदा स्त्री भोजन आदि की आलोचना तथा प्रत्यालोचना में अपना समय लगा देगा, तो वह अपनी पाठ्य पुस्तकों के पठन से वंचित रह जायेगा, पाठ्यक्रम से बाहिर का जितना भी बातों विलास है, वह सब विद्यार्थी को छोड़ना चाहिये, तभी वह तन्मयता से अपने स्वकल्पित एवं निश्चित पाठ्यक्रम का अध्ययन कर सकेगा। अतः सुयोग्य विद्यार्थी को स्त्री आदि कथाओं में समय न लगाकर अपनी पाठ्य पुस्तकों के चिन्तन-मनन में ही समय लगाना चाहिये। तभी वह विद्या प्राप्ति में सफल हो सकता है। आज देखा जाता है, कि आजकल विद्यार्थी अपनी पढ़ाई लिखाई की ओर उतना ध्यान नहीं दे, जितना ध्यान वे इधर उधर की ऊटपटांग बातों की ओर देते हैं। राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेना, हड़ताल करना, देश की [illegible] का साथ

लगा देना, किसी की लड़की से नाजायज सम्बन्ध स्थापित करना, उसे निकालकर भाग जाना, नौजवानों में धांधली मचाना, बोर्डिंगहाऊस की व्यवस्था को अस्त व्यस्त कर देना, परीक्षा में हजारों छात्रों का अनुत्तीर्ण रहना ये सब दुष्परिणाम प्रमाद सेवन के कारण ही देखने को मिलते हैं। इसीलिए भगवान महावीर ने विद्यार्थी-जगत के लिए प्रमाद सेवन का निषेध किया है।

उक्त पंक्तियों में प्रमाद के पांच प्रकारों के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है। मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा, इनके चंगुल में फंसा विद्यार्थी विद्या के धन को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। अतः विद्या के इच्छुक छात्र को इन पांच अवगुणों से सदा बचना चाहिए। हमारे चरित नायक श्री नेमीचन्द जी इन पांचों अवगुणों से बिलकुल सुरक्षित थे। जैनधर्म में जीवन पनपने के कारण इनको इन अवगुणों से आरम्भ से ही घृणा थी। इनकी अपनी बात तो दूर रही, यदि किसी अन्य छात्र में ये इन अवगुणों में से कोई एक अवगुण भी देखते, तो उसे दूर करने का प्रयास करते। जबतक उस छात्र का अवगुण दूर न कर देते, तब तक ये शान्ति से बैठते नहीं थे। अपना प्रयत्न चालू ही रखते। नेमीचन्दजी की इन्हीं विशेषताओं के कारण पाठशाला में ये एक आदर्श विद्यार्थी समझे जाते थे। पाठशाला के अध्यापकों तथा छात्रों में इनके आचार विचार पर उच्चता एवं महत्ता की धाक थी, स्वप्न में भी इनके सम्बन्ध में किसी का कोई अनादर नहीं हो पाती थी। यदि इनके आचार विचार के सम्बन्ध में कोई आलोचना करने का दुस्साहस करता, तो अध्यापकों तथा छात्रों द्वारा उसी समय उसका मुंह बन्द कर दिया जाता था।

रोग — विद्यार्थी जीवन का यह चतुर्थ अवगुण है। इसका अर्थ है — शरीर की विकार पूर्ण अवस्था, अस्वास्थ्य। भगवती विद्या की आराधना के लिए शरीर का स्वस्थ होना अत्यावश्यक है, जो रोगों से आक्रान्त नहीं होता [illegible] स्वस्थ छात्र विद्या के पारंगत होता है। जिस विद्यार्थी को सदा कोई न कोई रोग घेरे रहता हो, कभी सिर में दर्द है, कभी ज्वर है, कभी जुकाम है, कभी अतिसार ने [illegible] घेर लिया है। वात, पित्त और कफ का कोई न कोई [illegible] बना ही रहता है, ऐसी दशा में छात्र पढ़ भी कैसे सकता है? अतः विद्या [illegible] के लिए निरोग, स्वस्थ और सबल स्वास्थ्य की जरूरत रहती है।

मन का आनन्द भी स्वस्थ शरीर के बिना सम्भव नहीं होता। [illegible] अस्वस्थ व्यक्ति मन को क्या [illegible] कर सकता है? अहिंसा

को ही ले लीजिये। अहिंसा को जीवनोपयोगी बनाने के लिए शरीरगत सबलता अपेक्षित रहती है। कल्पना करो, आपके सामने एक आदमी पड़ा है, वह दर्द से कराह रहा है। स्थिति बड़ी भयंकर है। दर्द इतना अधिक हो रहा है कि उसे सहा नही जा रहा। हॉस्पिटल मे ले जाए बिना उसका जीवन बचाया नही जा सकता। उसकी इस दशा से आपका मन भी बड़ा व्याकुल है। आप उसे सहायता पहुँचाना चाहते है। आपकी हार्दिक इच्छा है कि हास्पिटल पहुचा दिया जाय, किन्तु आप विवश है। आपको स्वय जोरो का ज्वर चढ़ा हुआ है। शरीर निढाल हो रहा है। सर चकरा रहा है। आखो के आगे अन्धेरा छा रहा है, चला जाता नही, ऐसी दशा मे आप उस व्यक्ति की क्या सहायता करेंगे ? उत्तर स्पष्ट है, कुछ नही। इसीलिए शास्त्रकारो ने फरमाया है, धर्म की परिपालना के लिए स्वास्थ्य का सन्तोषजनक होना अनिवार्य है। सभव है इसी दृष्टि को आगे रखकर भारत के मनीषी महापुरुषो को यह कहना पड़ा—

"शरीरमाद्यम खलु धर्मसाधन"।

धर्म की आराधना का पहला साधन शरीर है। शरीरगत स्वास्थ्य है, तन्दुरुस्ती है, आरोग्य है, रोग का अभाव है। जैसे मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है, वैसे शारीरिक-स्वास्थ्य भी विद्यार्थी के लिए आवश्यक है। हमारे चरित्रनायक श्री नेमीचन्दजी का स्वास्थ्य सातावेदनीय कर्म के प्रताप से बड़ा सन्तोषजनक था। जन्म जन्मान्तर के शुभ सस्कारो से जिसने पुण्योपार्जन किया हो, खाने पीने पर जिसका पूर्ण नियत्रण हो और शरीर को अस्वस्थ बनानेवाली साधन-सामग्री से जिसका कोई सम्बन्ध न हो, वह अस्वस्थ या रोगाक्रान्त हो भी कैसे सकता है ? श्री नेमीचन्दजी बालक अवश्य थे, पर अपने स्वास्थ्य का पूर्ण ध्यान रखते थे, समयपर भोजन करते, वह भी परिमित। आजकल के बालको की भाति पशुओ की तरह दिनभर मुँह नही चलाते रहते थे। रसना पर इनका वाञ्छनीय नियत्रण था। सेठ देवीचन्दजी तथा माता हुलासाबाई जैसे तपस्वी दम्पति की जितेन्द्रिय छत्रछाया मे रहनेवाला बालक चटोरा, लोलुप और स्वादु हो, यह कैसे सभव हो सकता है ? शुभ कर्मों की कृपा समझिये कि नेमीचन्दजी, १ कमखाना, २ गमखाना, ३ नमजाना इन तीन बातो को अपने जीवन मे उतारकर चल रहे थे। परिणामस्वरूप विद्या क्षेत्र मे दिनोदिन उन्नति एव प्रगति करते चले जा रहे थे।

५. आलस्य—विद्यार्थी-जीवन का परत्यय। आलस्य का अर्थ है—काम करने की अनिच्छा,

फरमाया कि आलस्य विद्यार्थी जीवन का एक भयंकर अवगुण है। वस्तुस्थिति भी यही है। विद्या और आलस्य का दिन रात का विरोध है। जब दिन हो तब रात नहीं, और जब रात्रि हो, तब दिन नहीं रहता। इसी तरह जहाँ आलस्य हो, वहाँ विद्या नहीं, और जहाँ विद्या का निवास हो, वहाँ आलस्य का कोई काम नहीं बन सकता। अतः आलस्य के साथ स्नेह रखनेवाला विद्यार्थी विद्या से वञ्चित ही रहा करता है। जो विद्यार्थी यही विचार करता रहता है, कि अभी पढ़ूंगा, अभी पाठ याद करूंगा, किन्तु पढ़ता एक अक्षर भी नहीं है, शेखचिल्ली की तरह केवल विद्वान् बनने की योजनाएँ तैयार करता रहता है, सुस्त है, लापरवाह है, विद्या भगवती उसपर प्रसन्न नहीं होती। ऐसा व्यक्ति विद्या प्राप्त नहीं कर सकता। अतः सुशील विद्यार्थी को आलस्य का परित्याग करके चुस्ती से काम लेना चाहिये, एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। पढ़ने लिखने में अधिकाधिक ध्यान देकर अपने भविष्य को समुज्ज्वल बनाने का प्रयास करना चाहिये। आलस्य आरंभ में सबको प्रिय लगता है, परन्तु इसका अन्त दुःखमय ही रहता है। शिक्षा प्राप्ति में तो यह विशेषरूप से बाधक है। जिस छात्र में फुरती नहीं, चुस्ती नहीं, मरे हुए मन से काम करता है, दस मिण्टों के कार्य को एक घण्टा लगा देता है, आलस्य की शय्या पर सदा सोया रहता है, जल्दी सोना और सूर्योदय तक बिछौने पर पड़े रहना, यही जिसका काम है, वह विद्यार्थी कभी विद्या का पात्र नहीं बन सकता।

हमारे चरित नायक श्री नेमिचन्द्रजी, आलस्य की बुराइयों को अच्छी तरह जानते थे। यह समझते थे, कि विद्या में आलस्य करना, घर में आती हुई लक्ष्मी को मानो आने से रोकना है। दरिद्रता को निमन्त्रण देना है। आलस्य जीवन का एक भयंकर शत्रु है। यह जीवन का विकास नहीं होने देता, उसकी उन्नति में प्रतिबन्धक बन बैठता है। यही कारण है कि इन्होंने आलस्य से कभी स्नेह नहीं किया। पाठशाला में जो पढ़ते, उसे घर में आकर याद करते। जब तक अपना पाठ याद नहीं कर लेते थे, तब तक किसी और कार्य को हाथ तक नहीं लगाते थे। पाठशाला के सभी छात्रों में से सर्वाधिक फुरतीले समझे जाते थे। जो काम घण्टा का समझा जाता था, उसे ये मिन्टों में करके रख देते। जिस पाठ को अन्य बालक सारा दिन याद करते रहते, ये उसे घण्टे में याद कर लिया करते थे। कुछ बालक आगे-आगे पढ़ते जाते हैं और पीछे-पीछे भूलते जाते हैं। परन्तु हमारे चरितनायक ऐसे प्रमादी जीव नहीं थे। वे अपने पिछले पाठ का सदा चिन्तन-मनन करते रहते थे। अध्यापक जहाँ से जब चाहें पूछ सकते थे, इनको कोई भय नहीं था। पूछने पर ये ऐसे तड़ाक से

उत्तर देते, कि पूछने वाला आश्चर्य चकित रह जाता था। उक्त विवेचन से हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य ये पांच विद्यार्थी जीवन के महान् दूषण माने गये हैं। सर्व प्रथम इन दूषणों वाला विद्यार्थी विद्या प्राप्त ही नहीं कर सकता। पूर्व जन्म कृत किसी शुभकर्म के कारण यदि कहीं कोई विद्यार्थी इन अवगुणों के रहते भी विद्या प्राप्त कर लेता है, तो उस अविनीत की यह विद्या कभी सफल नहीं हो पाती। बाँस का फल जैसे बाँस के विनाश का ही कारण बन जाता है, वैसे अभिमान आदि अवगुणों वाले छात्र को विद्या भी उसके विनाश का ही कारण बन जाती है। अतः समुज्ज्वल भविष्य के इच्छुक छात्र को उक्त अवगुणों से सदा बचते रहना चाहिये। हमारे आदरणीय चरितनायक बालरूप श्री नेमिचन्द्रजी इन पांचों अवगुणों से दूर रहने का सदा प्रयत्न करते रहते थे। उन्होंने कभी अभिमान नहीं किया। "अध्यापक जो कुछ पढ़ाते हैं, यह सब तो मैं स्वयं जानता हूँ।" ऐसा इन्होंने विचार नहीं किया। नम्र होने के कारण ही अध्यापक वर्ग इनसे आन्तरिक स्नेह रखते थे और स्नेह के साथ ही इनका शिक्षण चलता था। क्रोध की दृष्टि से देखें तब भी ये इस अवगुण से बहुत दूर थे। अध्यापक द्वारा कभी डांटने-डपटने का प्रसंग आया, तो ये कभी क्रोधित नहीं हुए, —आगबबूला नहीं बने। प्रमाद के कारण अध्यापक को इन्होंने कभी शिकायत करने का अवसर नहीं दिया। अपने पठित विषय की बारम्बार आवृत्ति करते, उसे स्मरण करते, पिछले पृष्ठ को कभी विस्मृत नहीं होने देते। जब छात्र इतना जागरुक हो, तब अध्यापक कुछ कहे, यह प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। शारीरिक स्वास्थ्य की भी इन्होंने कभी उपेक्षा नहीं की। परिमित भोजन, शारीरिक व्यायाम आदि सभी दृष्टियों को आगे रखकर चलते थे। मानसिक स्वस्थता के साथ-साथ शारीरिक स्वस्थता का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान है। स्वस्थ तन में ही मन का स्वस्थ रहना सम्भव है, अस्वस्थ तन में मन सदा-अस्वस्थ रहा है। इस सत्य से ये अनजाने नहीं थे। इसके अतिरिक्त आलस्य का इन्होंने कभी स्पर्श नहीं किया। जब वृद्धावस्था में ये आलस्य को निकट नहीं आने देते तो बचपन में उसके साथ सम्पर्क रहा हो, यह कैसे हो सकता है? इस तरह विद्यार्थी जीवन के उक्त अवगुणों से सर्वथा दूर रहकर हमारे नेमिचन्द्रजी विद्या-प्राप्ति में धीरे-धीरे प्रगति करते जा रहे थे।

१५ वैराग्य के महापथ पर

कर्मों का चक्र

जैन साहित्य का यदि गम्भीरता के साथ अध्ययन करते हैं, तो जहाँ उसमें आत्मवाद, परमात्मवाद, अहिंसावाद, अनेकान्तवाद और अपरिग्रहवाद आदि सैद्धान्तिक तत्त्वों का विवेचन मिलता है, वहाँ कर्मवाद का भी विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। कर्मवाद, जैन साहित्य का हृदय है, प्राण है। कर्मवाद का जितना सूक्ष्म गम्भीर, व्यवस्थित और हृदयस्पर्शी वर्णन जैनसाहित्य ने अध्यात्म जगत के सामने प्रस्तुत किया है, इतना किसी अन्य जैनेतर साहित्य ने नहीं किया। यह बिना किसी सन्देह से कहा जा सकता है कि विश्वसाहित्य को कर्मवाद जैन साहित्य की बहुत बड़ी देन है। कर्म क्या है? वह कितने प्रकार का है? उसका बन्ध कैसे होता है? वह अपने कर्ता को किस प्रकार फल प्रदान करता है? उससे छुटकारा कैसे प्राप्त किया जा सकता है? आदि सभी दृष्टियों को लेकर जैनाचार्यों ने प्रकाश डाला है। जैनदर्शन के कर्मवाद को जानने के अभिलाषी विद्वानों को जैन साहित्य के कर्मग्रन्थ आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना अत्यावश्यक है।

सामान्यरूप से कर्म शुभ और अशुभ इन भेदों से दो प्रकार के होते हैं। शुभ कर्म को पुण्य और अशुभ कर्म को पाप कहा जाता है। यह दृष्ट या अदृष्ट समस्त जगत् पुण्य और पाप का ही पसारा-खेल है। जीवन में दोनों का ही चक्र चलता रहता है। कभी पुण्य की प्रबलता होती है तो कभी पाप की। जब पुण्य का उदय होता है, तो सुख, ऐश्वर्य, वैभव, सुविधा और प्रत्येक दृष्टि से अनुकूलता की उपलब्धि होती है। जीवन में एक नूतन, स्फूर्ति, और नव चेतना का आविर्भाव होता है। इसका कण-कण नववधू की भांति विकसित, प्रफुल्लित पुलकित एवं शृंगारित दिखाई देने लगता है। इसके विपरीत जब पाप का चक्र चलता है तो पूर्व प्राप्त सभी सुख-सुविधाएं विनष्ट होती

था, अनिष्ट की कोई आशंका नहीं थी, प्रत्येक दृष्टि से आनन्द मंगल चल रहा था, केवल कुछ घंटों का अन्तर पड़ा कि दुनिया बदल गई। स्वर्ग जैसा परिवार दुःखों का घर बन गया। प्रसन्नता, मस्ती मानो कोसों दूर हो गई। ऐसा भूकम्प आया, जिसकी स्वप्न में भी आशा नहीं थी। पिताजी का कंचन जैसा सुन्दर शरीर माटी का ढेर बन गया, पूज्य माताजी की जो दुःख दशा हो रही है, वह किसी से देखी नहीं जा रही। बड़े भाई श्री उत्तमचन्दजी कितना करुणाजनक विलाप कर रहे हैं! और तो और घर भी खाने को आ रहा है। क्या इसी का नाम जीवन है? अहह! यह तो जीवन की विडम्बना है। जो जीवन विषादान्त, दुःखान्त हो, जिसका अन्तिम परिणाम केवल रुदन ही हो, वह क्या जीवन है? वास्तविक जीवन तो वही है, जहाँ कोई क्लेश न हो, विक्षोभ न हो, विप्लव न हो, मृत्यु का भय न हो, तथा जो प्रसादान्त हो, एवं जिसका अन्तिम परिणाम सुखमय हो।

हमारे चरितनायक गम्भीरता की पगडण्डियों को पार करते जा रहे थे, वे कहने लगे—मोहमाया दुःखों की जननी है, विपत्तियों की प्रसारिका है, जन्म-मरण जन्य सकटों की उत्पादिका है, यह सब कुछ समझने पर भी न जाने मनुष्य क्यों संसार की मोहमाया से प्यार करता है? दिन-रात माया के जाल बुनता रहता है। मोह माया यदि सुखों की जनिका होती, इसका सुखान्त परिणाम होता, तो संसार के महापुरुष इसका परित्याग क्यों करते? और क्यों संसार को इससे उपराम होने का सन्देश देते? वस्तुतः मोह में उलझना बहुत बड़ी मूर्खता है, अज्ञानता है, विवेक विकलता है। इनकी अन्तर्वीणा झंकृत होने लगी, धीमे धीमे स्वर में गुनगुनाने लगे। वही गुनगुनाना यदि कविता के चरणों से परिवेष्टित कर दें, तो वह कहा जा सकता है—

> है भला संसार में धरा क्या? स्वप्न सा इक है तमाशा।
> है दो दिन के सब बहलावे, आगे चलकर है पछतावे।
> रेत की दिवारें हैं दुनिया, थोड़े का सा प्यार है दुनिया॥
> बिजली जैसी चमक है इसकी, पल दो पल की झलक है इसकी।
> पानी का सा है ये पसारा, जुगनू का सा है चमकारा॥

कभी है बाधा कभी है घाटा, कभी है ज्वार कभी है भाटा।
हार कभी और जीत कभी है, इस नगरी की रीत यही है॥
खुशी में खेद भी मिला हुआ है, अमृत में विष घुला हुआ है।
गिरते हैं यहां चढ़ने वाले, घटते हैं यहां बढ़ने वाले॥
ओ नशे के अन्दर जाने वाले, गुम ना हो तू ओ मतवाले।
दुख को पटा है आती देखो, पञ्छी मृत्यु बजाती देखो॥

कितना आश्चर्य है कि मनुष्य अपनी आंखों से लोगों को मरते देखता है, कंचन जैसे शरीर को चिता की ज्वालाओं में जलना तथा भस्म बनता अनुभव करता है, और वह भलीभांति समझता है, संसार का कोई पदार्थ परलोक मे साथ जाने वाला नही है, धन धान्य, स्त्री, पुत्र, मकान, दुकान आदि सब कुछ न साथ लाया था, और न साथ ले जाएगा। साधु-सन्त त्यागी-वैरागी अनुभवी पुरुषों की यह कल्याणकारिणी वाणी सदा कानो मे पड़ती रहती है —

छोड़ना होगा तुम्हे, इक रोज तख्तों ताज को।
छोड़ना होगा तुम्हें, इक रोज अपने राज को॥१॥
छोड़ना होगा तुम्हें, इक रोज घर और बार को।
छोड़ना होगा तुम्हें, दिलदार[1] और गमखार[2] को॥२॥
छोड़ना होगा तुम्हें, मां बाप और औलाद को।
छोड़ना होगा तुम्हे, सब बेटी व दामाद को॥३॥
छोड़ना होगा तुम्हें, हर पेशा व हर काम को।
छोड़ना होगा तुम्हें हर काम के अन्जाम को॥४॥
छोड़ना होगा तुम्हें, आलम[3] जवानी एक दिन।
छोड़ना होगा तुम्हें, यह जिस्मे फानी एक दिन॥५॥
छोड़ना है हर एक चीज को तो छोड़ दे।
छोड़ने से पेशतर[4] मुजतर[5] तअल्लुक छोड़॥६॥

यह दुनिया एक मुसाफिर खाना है। यहां का रहना स्थायी नही है, अस्थायी है। सबको एक दिन यहां से चलना है, सब ऐश्वर्य छोड़ना है, परन्तु यह नादान इन्सान इसमे उलझा पड़ा है, जैसे सदा यहीं रहना है, यह समझ

---

१. प्रियस्वजन, २. पराए, ३. युवावस्था, ४. पहले ५. कवि का उपनाम है

बैठा है। मृत्यु इसे बिलकुल याद ही नहीं है। लोगों की जा रही अरथी को देखकर यह नही सोचता, कि एक दिन इसी तरह मेरी भी अरथी निकलेगी। आज तू औरों की शवयात्रा देख रहा है, समय आने पर तेरी शवयात्रा दुनिया देखेगी। मनुष्य यदि इस सत्य को अच्छी तरह समझ ले और हृदयगम कर ले तो उसका मन मोह ममता में कभी उलझ नही सकता। वह ससार के झझटो से एकदम किनारा करके आत्मोत्थान और आत्मकल्याण के पथ का पथिक बन जाए।

हमारे चरित नायक का मन ससार की मोह माया से उपरत होने लगा। अन्त मे इन्होने निश्चय किया कि मैं संसार के प्रपचों से अपने को अलग रखूंगा। किसी योग्य मार्ग दर्शक के मिल जानेपर प्रभुभक्ति आत्मचिंतन जप तप तथा त्याग-वैराग्य के महापथ पर चलकर अपने जीवन का कल्याण करूंगा। अपने इस निश्चय के अनुसार इन्होने त्याग-वैराग्य के पथ पर चलना आरभ कर दिया सारादिन प्रभुभक्ति के सगीत, साधु सन्तों के दर्शन, शास्त्र-श्रवण आदि सत्कार्यों मे ही व्यतीत होने लगा। घर मे रहकर भी ये कमल की भांति उसके ममत्व से निर्लेप बन गये।

वैराग्य की तरंगे

वैराग्य का अर्थ है, विषय वासना और सामाजिक सम्बन्धों से मनका उचाट हो जाना। उदासीनता, विरक्ति, राग और, द्वेष का परित्याग कर देना। अध्यात्मशास्त्र मे राग और द्वेष यह बहुत बडे दूषण माने गये हैं। अध्यात्म-शास्त्रियों का विश्वास है कि यह दोनो जीव के आन्तरिक शत्रु है। इन्ही के कारण बाहिर के कल्पित शत्रु पैदा हो जाया करते हैं। इन आन्तरिक शत्रुओं का यदि सर्वथा अभाव हो तो बाहिर के शत्रुओं का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

प्रश्न हो सकता है कि राग और द्वेष किसे कहते हैं ? उत्तर मे निवेदन है कि मन पसन्द वस्तु पर होने वाला मोह, राग है और नापसन्द चीज पर की गई नफरत घृणा, द्वेष है। ये दोनो साथ-साथ रहते हैं। जिस हृदय मे राग होता है, उसमे द्वेष का अस्तित्व भी अवश्य होता है। वह किसी न किसी से द्वेष नफरत घृणा भी अवश्य रखता है और जहां द्वेष निवास रहता है, वहाँ राग की सत्ता भी अवश्यभाविनी है।

जीवन शास्त्र का अध्ययन करने से पता चलता है, कि राग और द्वेष ये दोनों ही जीव को दुःख देते हैं। क्लेश, विप्लव के जाल मे उसे

में भी सुखशान्तिपूर्ण वातावरण प्राप्त करता है। वैराग्यशाली पुरुष स्वयं सुखों के सागर में तैरता है। दूसरों को भी संसार में आई नौका को किनारे पर लगाता है। दुःख-ज्वालाओं में जल रहे प्राणिजगत् के लिए यदि कहीं कोई विश्रान्ति का स्थान है तो वह वैराग्य ही है। स्वर्ण के सिंहासनों पर विराजमान बड़े-बड़े चक्रवर्ती सम्राटों का धर्म की कल्याण कारिणी गंगा में स्नान करने का श्रेय भी वैराग्य-धारी महापुरुषों को ही है।

खाने में, पीने में, चलने में, फिरने में, किसी तरह जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में कहीं न कहीं किसी समय हानि का भय हो सकता है, किन्तु वैराग्य सर्वथा अभय है। इसमें भय के लिए कोई स्थान नहीं है। वैराग्य की शीतल छाया तले बैठनेवाले व्यक्ति को न अतीत में कोई कष्ट हुआ और न भविष्य में होने की सम्भावना है। वैराग्य को लेकर अनिष्ट की आशंका का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। वैराग्य की इसी अभयतापूर्ण महिमा का वर्णन करते हुए भक्तराज भर्तृहरि अपने वैराग्य शतक में लिखते हैं

> भोगे रोगभयं, कुले च्युतिभयं, वित्ते नृपालाद् भयम्।
> माने दैन्यभयं, बले रिपुभयं, रूपे जराया भयम्॥
> शास्त्रे वादभयं, गुणे खलभयं काये कृतान्ताद् भयम्।
> सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥१॥

भोगों में रोगों का भय होता है, कुल में अपमान का, धन में राजा का, मान में दीनता का, बल में शत्रु का, रूप में बुढ़ापे का, शास्त्र में वाद-विवाद का, गुणों में दुर्जनों का और शरीर में मृत्यु का भय बना रहता है। इस प्रकार की सभी वस्तुएँ भय से युक्त हैं। कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो भय से शून्य हो, किन्तु वैराग्य ही केवल एक वस्तु है जो भय से सर्वथा रहित है। जहाँ वैराग्य का महादेव विराजमान होता है, वहाँ भय का पिशाच नहीं आ सकता।

वैराग्य के तीन प्रकार

श्रोत्र, चक्षु आदि इन्द्रियों का अपने विषयों में उदासीन विरक्त रहना, या मोह और घृणा की वृत्तियों से मानस को अछूते रखना वैराग्य कहा गया है। यह बात पीछे की पंक्तियों में स्पष्ट की जा चुकी है। अब प्रश्न हो सकता है कि वैराग्य कितने प्रकार का होता है? या उसकी उत्पत्ति किस तरह होती है? इसके आविर्भाव का कारण क्या है? जैनाचार्यों ने बड़ी गम्भीरता के साथ इस प्रश्न का समाधान किया है। उनका कहना है कि वैराग्य तीन प्रकार का

अंगीकार करके समम-भावना सम्पन्न की जाती है, ऐसी विरक्ति या साधु-भावना को ज्ञानगर्भित वैराग्य कहते हैं। यह वैराग्य उत्कृष्ट है। सबसे उत्तम और प्रशस्त है।

चार प्रकार के भक्त

परमात्मा-ईश्वर या पूज्य व्यक्ति के प्रति अत्यानुराग, श्रद्धा-निष्ठा रखना भक्ति है। भक्तियुक्त मनुष्य भक्त कहलाता है। भारतीय मनीषी सन्तो विचारकों ने भक्तो के सम्बन्ध मे बडे महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं। वैदिक परम्परा की महामान्य श्रीमद्भगवद्गीता मे त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव ने अर्जुन के सामने भक्तो के स्वरूप का निर्देश करते हुए उनके चार प्रकार बतलाए थे। कृष्ण महाराज के अपने शब्द इस प्रकार हैं—

> चतुर्विधा भजन्ते मां, जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
> आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ अ. ७।१६

हे भरतवंशियो मे श्रेष्ठ अर्जुन! उत्तम कर्म वाले मेरे भक्त चार होते है, वे ये हैं—

अर्थार्थी—१—आर्त, दुःखी, शारीरिक, मानसिक दुःखो, सकटो की निवृत्ति के लिए भगवान का स्मरण करने वाला। २—जिज्ञासु—सच्चिदानन्द, अन्तर्यामी परमात्मा के स्वरूप का यथार्थ रूप से अवबोध प्राप्त करने की भावना रखने वाला तथा ३—धनधान्य आदि सासारिक पदार्थों की कामना से प्रभु का भजन करने वाला। ४ ईश—चिन्तन करने वाला ज्ञानी। उक्त चार प्रभु भक्तो मे कौन श्रेष्ठ है? जब यह प्रश्न सामने आया तो कृष्ण महाराज ने इसका भी समाधान करते हुए फरमाया—

> तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त, एकभक्तिर्विशिष्यते।
> प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थं मह स च मम प्रियः ॥ गीता अ. ७।१७

इन भक्तो मे भी नित्ययुक्त – नित्य मेरे मे एकीभाव से स्थित हुआ, एक भक्ति अनन्य प्रेम भक्ति वाला, ज्ञानी भक्त अति उत्तम है, क्यो कि (मेरे को तत्व से जानने वाले) ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हू और वह ज्ञानी मेरे को अत्यन्त प्रिय है।

सर्वश्रेष्ठ वैराग्य

जैनाचार्यों ने वैराग्य के तीन प्रकार बताए हैं और श्रीमद्भगवद्गीता मे प्रभु भक्तो के चार भेद वर्णित हुए हैं। इन सबका सूक्ष्म चिन्तन करने के

नामक गाव मे सगार पक्ष की मामी के यहाँ जाने का अवसर मिल
शास्त्र विशारदा, महाविदुषी त्याग वैराग्य की सजीव प्रतिमा महा
रामकुवरजी महाराज तथा इनकी शिष्या महासती श्री सुरंकुवरजी
साध्वियाँ विराजमान थी। विशेष रूप से इन्ही महासतियो के द
जाना हुआ था। लगभग २० दिनो तक इनके मगलमय प्रवचन सु
सेवा का लाभ लिया। अन्त मे वहाँ से प्रस्थान करते समय हमने म
म० से मगलपाठ सुना। तदनन्तर मैं और माताजी टागे पर बैठ
आगे की ओर बैठा था। रास्ता समतल नहीं था, भूमि कही ऊची
कही नीची। अचानक नीची भूमि आगई, परिणाम स्वरूप टागा पूर्ण
चलने लगा। मैं उस समय अपने आपको सभाल नहीं सका। तत्क
धडाम से नीचे गिरा। टागे का एक पहिया भी मेरे ऊपर से गुजर
मुझे गिरते तथा मेरे ऊपर से गुजरे टागे के पहिए को देखकर माताजी
चीख निकल गई। तत्काल टागा रोक कर माताजी नीचे उतरे, मुझे उठ
छाती से लगाकर मेरे शरीर की सार सभाल की। धर्म का प्रताप समझिये
मुझे कोई चोट नही आने पाई, माताजी मुझे पुचकारती हुई बोली—

बेटा! तू इतनी ऊचाई से गिरा, और तेरे ऊपर टागे का पहि
गुजर गया, टागा भी खाली नही था, मैं और टागेवाला दोनो उसमे बैठे
तथापि तुझे कोई चोट नही आई, यह धर्म का ही विलक्षण चमत्कार है
चलती बार महासती श्री रामकुवरजी म० से जो मगलपाठ सुना था, उसी के
प्रभाव से तेरा बाल बाका नहीं हुआ, अन्यथा सकट बडा भयंकर था।

पूज्य चरितनायक सुनाया करते हैं कि माताजी के वे शब्द आज भी
मेरे कानो मे गूज रहे हैं। माताजी के इन शब्दो से मेरे हृदय मे धर्म के
प्रति ऐसी आस्था पैदा हो गई कि मैं उसे शब्दो से प्रकट नहीं कर सकता।
यही शब्द मेरे जीवन क्षेत्र मे वैराग्य के बीज बनकर स्थित हो गये, जो आगे
चलकर श्रद्धेय मुनिराजो व महासतियों के मगलमय प्रवचनो से धीरे-धीरे
अकुरित पल्लवित एव पुष्पित होते चले गये। जहां तक मैं समझता हूं कि
यही बीज तथा पिताजी की मृत्युसूचक घटना ही मुझे साधु जीवन मे लाने मे
सहायक बनी है।

पाठशाला का परित्याग

जिस समय सेठ देवीचन्दजी का देहान्त हुआ उस समय हमारे चरितनायक
सरकारी मराठी पाठशाला मे अध्ययन कर रहे थे। पढ़ने की रुचि भी थी,

अध्यापक गण बड़े उत्साह से पढ़ा रहे थे, बुद्धि भी कुशाग्र थी इस तरह सभी दृष्टियों से स्थिति बड़ी सन्तोषजनक थी। किन्तु पितृवियोग हो जाने के कारण इनका मन इतना उदासीन हो गया, कि पाठशाला की पढ़ाई में वह जरा भी नहीं लग रहा था। जैसे घर बार से मन ऊब गया था, वैसे ही पाठशाला से उकता गया था। परिणाम स्वरूप चतुर्थ कक्षा में ही पाठशाला के विद्यार्थी-जीवन का परित्याग कर दिया।

दूसरी बात अपने पिता के मृतक शरीर को देखने के कारण चरित नायक का मानस अनित्य एवं अशरण भावना से भावित हो चुका था। संसार का रहन-सहन ऐश्वर्य-वैभव सब तुच्छ एवं नगण्य दिखाई दे रहा था। फलतः हृदय में त्याग, वैराग्य, प्रभुभक्ति, अहिंसा-साधना के दीपक जगमगाते थे। जहां आत्मज्ञान का प्रकाश होना आरम्भ हो, वहाँ अर्थ सम्पादन की विद्या का क्या मूल्य ? यही कारण है कि इनको पाठशाला की आत्मज्ञान से बहुत दूर ले जाने वाली मशारी विद्या अच्छी नहीं लग रही थी। इनका लगाव अध्यात्म-विद्या की प्राप्ति की ओर हो चुका था।

अध्यात्म शास्त्रियों का विश्वास है कि जो विद्या केवल पेट भरने की कला सिखा रही है, वह क्या विद्या है ? जिससे आत्मज्ञान न हो, और जो मनुष्य को कर्मों से उन्मुक्त होने की कला न सिखाती हो, उसे विद्या कहना विद्या शब्द का दुरुपयोग करना है। उनके मत में वास्तविक विद्या वही है, जो मनुष्य को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र के आलोक से आलोकित कर देती है। आत्मकल्याण के महापथ पर अग्रसर होने की सबल प्रेरणा प्रदान करती है। तभी तो कहा गया है।

"सा विद्या या विमुक्तये"

हमारे चरितनायक ने अध्यात्म विद्या प्राप्ति के विचार से सरकारी मराठी पाठशाला से अपना त्यागपत्र दे दिया। वहां पढ़ना छोड़कर साधु सन्तों के पास बैठना, शास्त्र श्रवण करना, माला जपना, नित्यनियम करना, तथा प्रभु रसभरे भक्ति सगीत द्वारा अन्तर्वीणा को झंकृत बनाना ही इनके जीवन की मुख्य साधना बन गई थी। माता, भाई आदि सभी रिश्तेदारों से इन्होंने अपने ममता सम्बन्ध तोड़ना आरम्भ कर दिये थे। ये सदा अपने ही मस्ति में मस्त रहने लगे थे।

आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत—

सेठ श्री देवीचन्द्रजी के देहान्त से माता हुलासाबाई का मन बड़ा

उदासीन रहता था उसे सारा भविष्य अन्धकारपूर्ण दिखाई दे रहा था,
किन्तु केवल एक किरण उसे कुछ सान्त्वना प्रदान करती थी। वह किरण कोई
और नहीं प्रत्युत उसके परिचायक भी नेमीचन्दजी थे। नेमीचन्दजी की
वात्सल्यता कार्यकुशलता मातृ चरणों के प्रति विनयशील भावना, तथा बुद्धिमत्ता
प्रवीणता को देखकर इनको शान्ति प्राप्त होती थी। अपने पुत्र के द्वारा अपने
भविष्य को समुज्ज्वल बनाए जाने की इनको पूर्ण आशा थी। किन्तु नेमिचन्द
के रहन सहन ने अब इस पर भी पानी फेर दिया।

एक दिन माता हुलासाबाई अपने बड़े पुत्र उत्तमचन्द से कहने लगी
बेटा! नेमिचन्द का विवाह करना है तुम्हारे पिता होते तो बहुत धूमधाम से
कार्य होता, परन्तु अब भी कोई कसर नहीं रहने देगी। पूरा जोर लगा दूँ।
मि जैसी सुन्दर वधू के आ जाने पर ही मेरे मन को शान्ति मिलेगी। माता
बात का श्री उत्तमचन्दजी उत्तर देना ही चाहते थे कि विवाह की बात
कर नेमिचन्दजी तिलमिला उठे। वह विवाह की बात भी सुनना नहीं
हते थे, करना तो दूर रहा। परिणाम स्वरूप विवाह की वार्ता से वह घबरा
। माता की आवाज सुनते ही यह कहने लगे माता किस विचार में बैठी
आपका यह विचार कभी पूर्ण नहीं हो सकेगा। माँ! मैंने तो ब्रह्मचर्य-
ता का मार्ग अपनाने का निर्णय कर लिया है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने
के स्वप्न में भी कभी विचार नहीं आता। आजीवन ब्रह्मचर्य की आरा-
एवं उपासना ही मेरे जीवन की साधना है। अतः मेरे सामने भूलकर भी
विवाह का नाम लेने का कष्ट न करना। जननि! गृहस्थाश्रम में प्रवेश
दुःखों एवं संक्लेशों को आमन्त्रण देना है, दुःखों की ज्वालाओं में अपने
जलाकर राख बनाना है। पूज्य पिताजी के देहान्त के अनन्तर तो
य वैसे ही उपराम हो गया है। माँ! यदि सत्य जानना चाहती हो
दन कर देता हूँ। मैं तो किसी योग्य मार्गदर्शक की राह देख
आचार—विचार की दृष्टि से महान् चारित्र-चूड़ामणि किसी सन्त
के मिलने की देर है, ऐसे अभिलषित सन्त महात्मा के सम्प्राप्त हो
मैं उनके चरणों में अपने आप समर्पित कर दूँगा। प्रियपुत्र की
रा से कभी-कभी माँ हुलासाबाई चिन्तित अवश्य हो जाया करती
बालक समझकर इनकी बातों पर विशेष ध्यान नहीं देती थी।
कि नेमि अभी बालक है, इसे ब्रह्मचर्य साधना का क्या पता है?
डा होगा, अपने आप समझ जायगा।

मानो आरम्भ हो गई। साधु जीवन की मर्यादा के पालन में जितनी पहले सतर्कता थी, उतनी फिर नहीं रह पाई। साधना केवल तन-तक सीमित रह गई। मन उससे उपराम होने लगा। मूर्तिपूजा इसी समय आरंभ हुई थी। ठीक ऐसे शिथिलाचार प्रधानयुग में महान् उपकारक परम श्रद्धालु समाजसेवी, क्रान्तिकारी क्रियोद्धारक वीर लोंकाशाह ने धार्मिक उत्क्रान्ति का बिगुल बजाया। शिथिलाचार का परिहार करने तथा आचार विचार की दृष्टि से साधु जीवन को ऊँचा उठाने में जहाँ वे प्रेरक बने, वहाँ ४५ श्रावकों को उस समय के महान् क्रियापात्र तेजस्वी पूज्य श्री ज्ञानऋषिजी म० के चरणों में दीक्षित करवाकर इन्होंने जिन शासन की महान् सेवा की। बहिर्मुखी जन-मानस को शास्त्रीय ज्ञान के प्रकाश द्वारा अन्तर्मुखी बनाकर आचार-विचार पर निष्ठा एवं आस्था को मजबूत बनाया। सुधारक श्री लोंकाशाह की इसी धार्मिक निष्ठा तथा प्रभावना के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के उद्देश्य से तत्कालीन साधु समाज ने भी अपने गच्छ का लोंकागच्छ यह नाम रखकर महान् दूरदर्शिता का परिचय दिया तथा उपकारक व्यक्ति के प्रति अपनी आदरास्पद भावना को अभिव्यक्त करने का बुद्धि शुद्ध प्रयास किया।

लोंकागच्छ के प्रथम पट्टधर श्री भाणजी ऋषिजी म० थे, दूसरे श्री रूप ऋषिजी म० और तीसरे पट्टधर श्री जीवाजी ऋषिजी म०, इनके स्वर्गवास के अनन्तर यह गच्छ १. गुजराती लोंकागच्छ २ नागोरी लोंका गच्छ तथा ३. उत्तरार्ध लोंकागच्छ ऐसे तीन भागों में विभक्त हो गया था।

पूज्यपाद श्री लवजी ऋषिजी महाराज

वीरनिर्वाण से दो हजार वर्षों के अनन्तर लोंकागच्छ का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय त्याग-वैराग्य अपने यौवन पर था। शास्त्रीय विधि-विधान के नेतृत्व में ही संयम-साधना को सम्पन्न करने का ध्यान रखा जाता था। शिथिलाचार ढूंढने पर भी कहीं नहीं मिल रहा था। अधिक क्या, आचार-विचार की समुन्नता की दृष्टि से उस समय गच्छ की धाक थी। परन्तु समय का प्रकोप समझिये कि विक्रम की सतरहवी शताब्दी के द्वितीय चरण में इस गच्छ का ह्रास होना आरम्भ हो गया। संयम सम्बन्धी शिथिलता तथा गच्छ-भेद-जनित पारस्परिक मनोभेद ने सारा वातावरण दूषित कर दिया। ठीक ऐसे ही समय में पूज्य श्री लवजी ऋषिजी महाराज धर्म दिवाकर के रूप में *अध्यात्म नभ पर प्रकट हुए। श्री लवजी सूरत नगर निवासी श्री वीरजी वोरा* के दौहित्र एवं श्रीमति फूलाबाई के सुपुत्र थे। इनकी जीवन कथा भी बड़ी विस्तृत है।

महापुरुषों की दृष्टि से पंजाब अन्य किसी प्रान्त से पीछे नहीं रहा
ने भी ऐसे-ऐसे युगद्रष्टा महापुरुषों को जन्म दिया है, जो विश्व
पुरुषों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जैन जगत् के चम
चारित्र चूड़ामणि, प्रात स्मरणीय, पूज्य श्री अमर सिंहजी म०,
स्वनाम धन्य पूज्यश्री रामबक्षजी म०, आगमों के महारथीजी ज्ञान
पूज्य श्री मोतीरामजी म०, भारतकेसरी, वन्दनीय पूज्य श्री सोहनलालजी
स्रष्टा पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी म०, जैनधर्म दिवाकर साहित्य
गम रत्नाकर श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के आद्य आचार्य पूज्य श्री
रामजी म० आदि महापुरुष पंजाब श्रमण संघ के ही मनोनीत युग
जो भारत के समूचे अध्यात्म जगत् को आचार-विचार की महत्ता एव
की सुरक्षा के लिए सदा अपना मधुर सहयोग देते रहे।

पूज्य श्री कहान ऋषिजी महाराज

आप की जन्मभूमि सूरत नगर था। क्रियोद्धारक पूज्य श्री लवजी ऋ
म० के अमृतोपम उपदेशों को सुनकर आप का वैराग्य उत्पन्न हुआ था।
सं० १७१३ में आप पूज्य श्री सोमऋषिजी महाराज के चरणों में दीक्षित
थे। आप एक प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष थे। एक बार जिस शास्त्र का
लेते थे, उसे बुद्धिस्थ कर लेते थे। आप को शास्त्रों एवं ग्रन्थों की लगभ
चालीस हजार गाथाएँ कण्ठस्थ थी। आप की वाणी में ऐसा अपूर्व माधुर्य
कि श्रोताजन आनन्द विभोर हो उठते थे। आप का विहार क्षेत्र मुख्यत
मालवा प्रान्त ही रहा। आप के शिष्यों में से श्रद्धेय श्री तारा ऋषिजी म०
तथा सम्मानास्पद श्री रणछोड़ ऋषिजी म० विशेष प्रभाविक मुनिराज थे।
श्री तारा ऋषिजी म० आप के साथ मालवा में विचरते थे और श्री रणछोड़
ऋषिजी म० गुजरात काठियावाड़ में धर्म-प्रचार किया करते थे। आप श्री
के दिवगत हो जाने के अनन्तर दोनों मुनिराजों को भिन्न-भिन्न प्रान्तों में
आचार्यपद से विभूषित किया गया था। पूज्य श्री तारा ऋषिजी म० के
शिष्यों की संख्या २२ थी। इनमें पूज्य श्री काला ऋषिजी म० तथा पूज्य श्री
मगल ऋषिजी म० यह दोनों महान प्रतापी महापुरुष थे। इनका अध्यात्म
प्रभाव कुछ निराला ही था। आगे चलकर इन दोनों का परिवार मालवा
शाखा और खंभात शाखा इन दो शाखाओं में विभाजित हो गया। मालवीय
शाखा के नायक पूज्य श्री काला ऋषिजी म० थे। भविष्य में इनके पाट को
पूज्य श्री बधु ऋषिजी म० पूज्य श्री धनजी ऋषिजी म० आदि अनेकों महा-

पुष्प समान सुशोभित करते रहे। वि० सं० १६८६ में आगमोद्धारक महा-महिम पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० को इन्दौर नगर में आचार्य पद से प्रतिष्ठित किया गया।

पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज

आप का जन्म वि० सं० १६३४ मेड़ता (मारवाड़) में हुआ था। आप के पिता का नाम श्री केवलचन्द्रजी था, श्रद्धेय माता का नाम हुलासा बाई था। आप के पिता श्री केवलचन्द्रजी स्थविर पदविभूषित श्रद्धेय श्री मूना ऋषिजी म० की सेवा में दीक्षित हो गये थे। पिता के दीक्षित हो जाने पर आप भी महामहिम श्री रत्न ऋषिजी म० के हाथों सं० १६४४ में दीक्षित किये गये और स्वनामधन्य श्री चेना ऋषिजी म० की नेश्राय कर दिये गये। साधु बन जाने के अनन्तर आपने जैनागमों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। आप एक ऊंचे विद्वान् होने के साथ साथ एक सिद्धहस्त लेखक भी थे। साहित्य साधना के क्षेत्र में आप का बहुत बड़ा प्रभावपूर्ण स्थान था।

श्रद्धेय पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० द्वारा रचित तथा अनुदित ग्रन्थों को यदि एक स्थान पर सगृहीत करलें तो एक सुन्दर पुस्तकालय सा बन जाता है। जैनतत्त्व प्रकाश, परमात्ममार्गदर्शन, मुक्तिसोपान (गुणस्थान ग्रन्थ) ध्यान कल्पतरु, धर्मतत्त्वसंग्रह आदि ७० ऐसे ग्रन्थ हैं जो आपकी स्वतंत्र रचना है, ३२ आगमों का आपने हिन्दी भाषानुवाद किया। इन सब ग्रन्थों को सम्मिलित कर लेने पर आपकी कृतियों की संख्या १०२ हो जाती है। इनमें कई ग्रन्थों की गुजराती, मराठी, कन्नड और उर्दू भाषा में आवृत्तियां प्रकाशित हो चुकी है। पूज्य श्री ने सब मिलाकर लगभग ५०० हजार पृष्ठों में साहित्य की रचना की है। प्रतिदिन एकान्तर तपस्या करते हुए सात-सात घंटों तक लगातार शास्त्र लिखते रहना, तीन वर्षों में आचारांग आदि विशालकाय ३२ आगमों का हिन्दी भाषा में अनुवाद कर डालना, यह आपका ही काम था। बिना किसी सहायक सामग्री के इतनी बड़ी साहित्य सेवा करना, साधारण बात नहीं है। जैन जगत् आपकी इस साहित्य सेवा तथा जैनागम प्रभावना के लिए सदा ऋणी रहेगा।

वि० सं० १९९३ का चातुर्मास धुलिया में था। चातुर्मासकाल में श्रद्धेय पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० के कान में दर्द हो गया। असाता

वेदनीय कर्म का उदय समझिये कि अनेक विधि उपचार करने पर भी आपको स्वास्थ्य लाभ नहीं हुआ। परिणामस्वरूप कर्णवेदना ही आपकी जीवन-लीला की समाप्ति का कारण बनी इस वेदना ने ही आप जैसे साहित्य महारथी त्यागी, वैरागी आचार्य देव की छत्र-छाया से जैन जगत् को सदा के लिए वञ्चित कर दिया।

वन्दनीय श्री रत्न ऋषिजी महाराज

पीछे की पक्तियों मे ऋषि सम्प्रदाय की आचार्य परम्परा का सक्षेप मे परिचय कराया गया है। इस सम्प्रदाय के इतिहास का परिशीलन करने से पता चलता है, कि इस सम्प्रदाय मे ऐसा भी युग रहा है कि जब इसकी आचार्य परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई थी, एकता की कडियाँ बिखर जाने के कारण किसी को आचार्य पद नहीं दिया जा रहा था।* किन्तु अजमेर का स्थानकवासी जैन बृहत्साधु सम्मेलन इस सम्प्रदाय की बिखरी शक्ति को केन्द्रित करने का निमित्त बन गया। फलत ऋषि सम्प्रदाय के मनीषी सन्तों ने दूरदर्शिता एव गम्भीरता से काम लेकर अपने को सुसगठित करके पूज्य श्री धनजी ऋषिजी म० के पश्चात् टूटी-आचार्य परम्परा को पुन चालू किया और इसका दायित्व आगमोद्धारक पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज पर डाला गया था।

यह सत्य है कि ऋषि सम्प्रदाय को जहा महान् चरित्र चूडामणि, सम्यग्दर्शन ज्ञान तथा चारित्र के आराधक तेजस्वी एव ओजस्वी आचार्यों को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त रहा है, वहा इसने कविकुलभूषण महामहिम स्वनाम धन्य पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषि जी म० तथा कविवर्य अहिंसा सयम और तप के पुण्यसरोवर परमश्रद्धेय प० रत्न श्री अमी ऋषि जी म० ऐसे-ऐसे विद्वान् गुणवान् तथा त्याग वैराग्य के पवित्र निधान महापुरुषों को उत्पन्न करने का भी सुअवसर प्राप्त किया है। जिनकी सयम साधना, साहित्य सेवा तथा समाज सेवा पर जैन समाज ही नहीं प्रत्युत भारत का समूचा अध्यात्म-समाज-महान् गौरव का अनुभव कर रहा है। इन्ही मुनिवरो मे एक मुनिवर हैं, प्रातः स्मरणीय श्री रत्न ऋषि जी महाराज।

---

*पं० रत्नमुनि श्री मोती ऋषि जी म० द्वारा विरचित 'ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास" नामक पुस्तक के आधार पर पृष्ठ १६१

प्रतिक्रमण शब्द की व्याख्या

प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ? इसका क्या अर्थ है ? इस बात का ह स्वाभाविक है इसपर भी थोड़ा सा विचार कर लेना आवश्यक है। आ हेमचन्द्रजी योगशास्त्र के चौथे प्रकाश की स्वोपज्ञ वृत्ति में प्रतिक्रमण श की व्युत्पत्ति करते हुए लिखते हैं

*प्रतीपं क्रमणं प्रतिक्रमणम् अयमर्थः — शुभयोगेभ्योऽशुभयोगान्तरं क्रा शुभेषु एव क्रमणात् प्रतीपं क्रमणम्।

अर्थात् — शुभ योगों से अशुभ योगों में गए हुए अपने आपको पु शुभयोगों में लौटा लाना प्रतिक्रमण है।

प्रतिक्रमण शब्द में प्रति उपसर्ग है, और क्रमु धातु है, प्रति का अर्थ है प्रतिकूल और क्रमु का अर्थ पद निक्षेप होता है। दोनों के मिलने से अर्थ होत है — जिन कदमों से बाहिर गया है, उन कदमों से लौट आये। जो साधक किसी प्रमाद के कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप स्व स्थान से हटकर मिथ्यात्व अज्ञान एवं असंयमरूप पर स्थान में चला गया है, उसका पुनः स्व स्थान में लौट लाना प्रतिक्रमण है। यदि संक्षेप में कहें तो पापक्षेत्र से वापिस आत्मशुद्धि के क्षेत्र में लौट आने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यक निर्युक्ति में प्रतिक्रमण के सम्बन्ध मे बहुत सुन्दर विचार धारा प्रस्तुत की है। उन्होंने साधक के लिए चार विषयों का प्रतिक्रमण बतलाया है। वह चतुर्विध प्रतिक्रमण इस प्रकार है।

१—हिंसा, असत्य आदि जिन पापकर्मों का श्रावक तथा साधु के लिए प्रतिषेध किया गया है, यदि कभी भ्रान्तिवश वे कर लिए जाय तो प्रतिक्रमण करना चाहिये।

२—शास्त्रस्वाध्याय, प्रतिलेखना, सामायिक आदि जिन कार्यों के करने का शास्त्र मे विधान किया गया है, उनके न किये जाने पर भी प्रतिक्रमण करना चाहिये। कर्तव्य कर्म को न करना भी एक पाप ही है।

३—शास्त्र प्रतिपादित आत्मा आदि अमूर्त तत्वों की सत्यता के विषय मे संदेह लाने पर अर्थात् अश्रद्धा उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण करना चाहिये; ये मानसिक शुद्धि का प्रतिक्रमण है।

---

*"श्रमणसूत्र मे उपाध्याय श्री अमर मुनिजी म०

४– आगम विरुद्ध विचारों का प्रतिपादन करने पर हिंसा आदि के समर्थक विचारों की प्ररूपणा करने पर भी अवश्य प्रतिक्रमण करना चाहिए। यह वचन शुद्धि का प्रतिक्रमण है।

सूक्ष्म दृष्टि से प्रतिक्रमण शब्द की व्युत्पत्ति तथा इसके भेदों का वर्णन ऊपर की पंक्तियों में किया जा चुका है। यदि स्थूल दृष्टि से विचार करें तो प्रतिक्रमण उस शास्त्र का नाम है जो साधु और श्रावक द्वारा प्रतिदिन नियमित रूप से आत्म शुद्धि के लिए प्रात और सायं पढ़ा जाता है। इसीलिए इस शास्त्र को आवश्यक सूत्र कहते हैं। यह प्रतिदिन साधु और श्रावक द्वारा क्रमशः दिन और रात्रि के अन्त में अवश्य किया जाता है, पढ़ा जाता है। अत यह आवश्यक सूत्र कहलाता है। इस आवश्यक सूत्र के १ –सामायिक समभाव समता। २ – चतुर्विंशतिस्तव—भगवान् आदि नाथ आदि २४ वीतराग देवों की स्तुति। ३. वन्दन-गुरुदेवों का वन्दन। ४. प्रतिक्रमण-संयमसाधना में लगे दोषों की आलोचना। ५. कायोत्सर्ग-शरीर के ममत्व का परित्याग और ६. प्रत्याख्यान-आहार आदि की आसक्ति का त्याग यह छः अध्याय हैं। इनमें से चतुर्थ अध्याय को प्रधान मानकर इस शास्त्र का प्रतिक्रमण इस नाम से भी व्यवहृत किया जाता है। इसे आवश्यक और प्रतिक्रमण के अतिरिक्त *अवश्यकरणीय, ध्रुवनिग्रह और विशोधि आदि अन्य अनेकों नामों से भी पुकारा जाता है।

प्रतिक्रमण साधु और श्रावक इन भेदों से दो प्रकार का होता है। साधुओं का सुबह और शाम करने का एक आवश्यक अनुष्ठान साधु प्रतिक्रमण और श्रावकों का प्रातः और सायं दोनों समय करने का एक आवश्यक अनुष्ठान श्रावक प्रतिक्रमण कहा गया है। इसी श्रावक प्रतिक्रमण को याद करने के लिए माता हुलासाबाई ने अपने प्रिय पुत्र हमारे आदरणीय चरित्र नायक श्री नेमिचन्दजी को आदेश दिया था। पूज्य माताजी

---

* मुमुक्षु साधकों के द्वारा नियमेन अनुष्ठेय होने से यह अवश्यकरणीय है। अनादि होने के कारण कर्मों को अनादि कहते हैं। कर्मों का फल जन्म जरा मरणादि भी अनन्त है, अत. यह भी [illegible] को
कर्म और कर्म के फलस्वरूप का [illegible] कर [illegible]
निग्रह कहते हैं। कर्म से मलिन [illegible] से
आवश्यक सूत्र विशोधि भी [illegible]

श्रावक प्रतिक्रमण का अभ्यास कर रहे थे। गुरु कृपा से बौद्धिक बल हो, साथ मे परिश्रम का संगम हो, फिर बढ़ना मुश्किल नहीं होता। चरित नायक को इन सभी बातों का सुयोग प्राप्त था। परिणामस्वरूप थोड़े ही दिनो मे इन्होंने श्रावक प्रतिक्रमण पाठ कर लिया।

मान्य चरित नायक बड़े दीर्घदर्शी थे, अत इन्होंने गुरुदेव के अनुग्रह से पूरा-पूरा लाभ उठाया। प्रतिक्रमण का शिक्षण समाप्त होने के अनन्तर इन्होंने २५ बोल का थोकड़ा और सडसठ बोल का थोकड़ा याद किया। बहुत से स्तवन सीखे। तथा आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरों के रूप मे अन्य शास्त्रीय तथ्यों को हृदयगम किया। इस तरह चातुर्मास काल मे चरित नायक ने वन्दनीय पूज्य चरण गुरुदेव से प्रतिक्रमण, अनेक विध थोकडे, स्तवन सवाद तथा अन्य धार्मिक शिक्षण प्राप्त करके ज्ञानप्रकाश से अपने अन्तर्जगत् को प्रकाशित बनाने मे सफलता सम्प्राप्त की। अन्त करण वैराग्य की पवित्र भावना से तो पहले ही भावित हो रहा था, परन्तु गुरुदेव के सानिध्य मे आ जाने के अनन्तर जो शास्त्रीय ज्ञानप्रकाश प्राप्त किया। उसने आपके वैराग्य भावना को और अधिक परिपुष्ट कर दिया।

संयम और साधना के महापथ पर

कहा जा चुका है कि वि० सं० १९६९ में प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्रद्धेय श्री रत्न ऋषिजी महाराज का चातुर्मास मिरी (अहमदनगर) में था। उस समय हमारे चरितनायक श्री नेमिचन्द्रजी इनकी सेवा में रहकर धार्मिक शिक्षण प्राप्त कर रहे थे। पूज्य चरण गुरुदेव की इन पर पूर्ण कृपा थी, दया दृष्टि थी, ज्ञान का मानो भंडार खुला हुआ था, बिना किसी प्रतिबन्ध के उनसे प्रत्येक व्यक्ति लाभ उठा सकता था। सबको वहाँ सस्नेह तथा सोल्लास ज्ञान-मोतियों की उपलब्धि हो रही थी। हमारे चरितनायक भी दिल-खोलकर ज्ञान के मोतियों से अपनी झोलियाँ भर रहे थे। ज्ञान-पिपासा शान्त करते हुए इन्होंने अध्यात्म क्षेत्र में काफी शास्त्रीय जानकारी प्राप्त कर ली थी। ज्ञान के महासागर में गोते लगाकर भी यदि ज्ञान की सम्पत्ति प्राप्त न की जाय, तो इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा? हमारे चरितनायक एक भाग्यशाली महापुरुष थे, वे भला ऐसा स्वर्णिम अवसर क्यों व्यर्थ जाने देते? गुरुदेव के ज्ञानालोक से अपने अन्तर्जगत् को आलोकित करने में इन्होंने पूर्णरूपेण सतर्कता से काम लिया।

ज्ञान की महिमा

ज्ञान का अर्थ है, बोध या जानकारी। जीवन में ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। इससे जीवन का आन्तरिक अन्धकार दूर होता है। ज्ञानदीप के प्रकाश से ही मनुष्य अपने हित और अहित तथा हानि और लाभ की गुत्थियाँ सुलझाता है। अहितकर एवं दुःखजनक प्रवृत्तियों को छोड़कर हितावह एवं कल्याणप्रद वृत्तियों को सम्पादित करने की क्षमता प्राप्त करता है। जीवन के अन्तरंग और बहिरंग रूप की पवित्रता की मधुर प्रेरणा भी इसी से प्राप्त होती

है। तभी तो श्रीमद्भगवद्गीता में वासुदेव श्रीकृष्ण ने एक बार अर्जुन के सामने यह उद्घोष किया था —

> नहि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते।
> तत्स्वयं योगसंसिद्ध, कालेनात्मनि विन्दति ॥ अ० ४-३८

ज्ञान की उपादेयता का वर्णन करते हुए महाराजकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अर्जुन ! इस संसार में जीवन को पवित्र बनाने वाला ज्ञान से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है।

ज्ञान की महिमा को अभिव्यक्त करते हुए कर्मयोगी कृष्ण वासुदेव ने ज्ञान को नौका बताकर सम्पूर्ण पाप-समुद्र से पार कर देने की उसमें अपनी क्षमता समूचित की है। ज्ञान को अग्नि मानकर उसमें संपूर्ण कर्मों को भस्म कर देने की शक्ति बताई है। महाराज कृष्ण के अपने शब्द इस प्रकार हैं।

> अपि चेदसि पापेभ्यः, सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
> सर्वं ज्ञानप्लवेनैव, वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ गीता अ० ४-३६

यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पापसमुद्र से भली भाँति तर जायेगा।

> यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
> ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि, भस्मसात् कुरुते तथा ॥ गीता अ० ४-३७

हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्ममय बना देती है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय बना डालती है। ज्ञान एक प्रकाश है, इससे शून्य व्यक्ति अज्ञानान्धकार में भटकता रहता है। आँखों के रहते भी वह अन्धा है। जीवन का ध्येय क्या होना चाहिये ? कौन वस्तु हितकर है, कौन अहितकर ? भौतिकवाद केवल शारीरिक जीवन के सुखसाधन जुटा सकता है, आत्मिक जीवन सुखमय बनाने का श्रेय तो अध्यात्मवाद को ही सम्प्राप्त है तथा इन्द्रियजन्य सुख आपातरमणीय (केवल तत्काल सुख देने वाला) होने से दुःखान्त परिणामवाला है, आदि सभी तथ्य ज्ञान के प्रकाश से ही मनुष्य को उपलब्ध होते हैं। जिस व्यक्ति को हिंसा, असत्य आदि दोषों की अनिष्ट-कारिता का बोध ही नहीं, वह भला इन दोषों से विरत हो भी कैसे सकता है ? अज्ञान से आवृत्त होने के कारण ही यह जीव अमानवीय कार्यों में संलग्न होकर अपने जीवन को विनष्ट कर बैठता है। वस्तुतः ज्ञान की उपादेयता से

चरितनायक - पूज्यपाद ! संसार के मोहबन्धनों से मेरा मन उदासीन हो गया है। संसार के मोहक वातावरण से मुझे कोई लगाव नहीं रहा। संसार अनित्य एवं अशरण दिखाई देता है। धर्म के अतिरिक्त संसार की कोई वस्तु अच्छी नहीं लग रही। सामायिक, सन्ध्या, जप, तप, त्याग, वैराग्य, प्रभुभक्ति के संगीत, साधुसन्तों की सेवा, शास्त्र-श्रवण और सत्संग आदि धार्मिक सत्कार्य ही मुझे सुखद एवं कल्याणप्रद अनुभव होने लगे हैं। केवल यह अनुभूति ही नहीं रही, प्रत्युत धर्म की आराधना ही मैंने अपने जीवन की मुख्य साधना बना ली है। घर में माता जी या भाई साहब मुझे सांसारिक दृष्टि से जब कुछ कहते हैं, तो मैं उनको स्पष्ट रूप में इनकार कर देता हूँ। एक बार पूज्य माताजी मेरे विवाह की चर्चा कर रहे थे, तो मैंने उनसे कहा है कि मैं विवाह नहीं कराऊंगा। विवाह के बंधन में मुझे बांधने का अपना विचार आप अपने मस्तिष्क से निकाल दीजिए। साथ में मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मैं तो धर्मध्यान में ही जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। किसी चरित्रशील ज्ञानी महापुरुष का मार्गदर्शन सम्प्राप्त होने पर उनकी सेवा में अपना जीवन समर्पित कर दूंगा।

वन्दनीय महाराज ! अब तो मुझे जन्म-जन्मान्तर के किसी शुभ कर्म के उदय से आप जैसे चारित्रचूडामणि, त्यागी-वैरागी, ज्ञान के सागर महापुरुषों की चरणसेवा प्राप्त हो गई है। आपश्री की चरणसेवा प्राप्त करके मेरे मानस को जो आध्यात्मिक शान्ति मिली है, उसे मैं शब्दों में अभिव्यक्त नहीं कर सकता। आपकी शान्ति, धीरता, सरलता, मधुरता, ज्ञान तथा चारित्रगत समुच्चता इतनी बड़ी-चढ़ी है कि कुछ कहते नहीं बनता। इतने ऊंचे महापुरुष होकर भी मुझ बालक को स्नेहपूर्वक जो आप ज्ञान-दान दे रहे हैं, यह आपकी ही अपनी विशेषता है। शास्त्रीय रहस्यों को समझाने की आपकी पद्धति कुछ विलक्षण ही है। गुरुदेव ! आपश्री द्वारा प्रदत्त धार्मिक शिक्षण से मेरी अन्दर की आंखें खुल गई हैं, संसार के चतुर्गतिमूलक दुःखद स्वरूप का भलीभांति बोध हो जाने के कारण संसार की मोहमाया से मेरा मन सर्वथा विरक्त हो गया है।

गुरुमहाराज - नेमि ? आपका मन आध्यात्मिकता की ओर बढ़ता जा रहा है, आपका शास्त्रीय तत्वों के अध्ययन में रस आने लगा है, और संसार के विषय भोगों से आपका हृदय उपराम हो गया है, यह सब कुछ प्रशंसनीय है। आपके सौभाग्य का सूचक है, परन्तु यह सब कुछ कहने का आपका उद्देश्य क्या है ? आप कहना क्या चाहते हैं ?

में विष मिला हुआ है तो वह उस भोजन को तत्काल छोड़ देता है, उसका स्पर्श तक नहीं करता। वस्तुत विष की हानिकारकता तथा अमृत की उपादेयता का ज्ञान होने पर ही व्यक्ति विष का परित्याग और अमृत का सग्रहण करता है।

गुरुदेव से दीक्षा की अनुमति

हमारे मान्य चरितनायक श्री नेमिचन्द्र जी पूज्य-चरण श्रद्धेय श्री रत्नऋषि जी म० के चरणों में ज्ञानाभ्यास कर रहे हैं, अध्यात्मज्ञान के प्रकाश से अपनी अन्तरात्मा को प्रकाशमान बनाने में प्रयत्नशील हैं, यह पूर्व निवेदन किया जा चुका है और ज्ञान के जीवन में कितना उच्च एवं महत्वपूर्ण स्थान है ? यह भी अभिव्यक्त कर दिया गया है।

पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में बैठकर चरित नायक ने जो ज्ञानाभ्यास किया, उसके प्रताप से चरित नायक के अन्दर के नयन खुल गये, अन्त करण जगमगा उठा। धार्मिक विधि विधान का परिचय हो जाने से तथा अहिंसा भगवती के सच्चे आराधक पवित्रात्मा, प्रात स्मरणीय श्री रत्न ऋषि जी म० की सेवा में रहने के कारण चरित नायक की वैराग्य भावना यौवन पर आ गई। इनका मानस पक्षी गृहस्थ जीवन के जाले से निकलकर साधुभाव के असीम गगन में विहरण करने के लिए छटपटाने लगा। कहा जा चुका है कि हमारे मान्य चरितनायक के मानस में वैराग्यभावना के अकुर तो माता के ज्ञान भरे उपदेश से तथा पूज्य पिता के देहावसान पर ही प्रस्फुटित हो चुके थे, किन्तु अब तक एक चरित्रशील, ज्ञानसम्पन्न महापुरुष का योग्य मार्गदर्शन प्राप्त हो गया, तो वे पल्लवित एव पुष्पित हो गये। सोने में सुहागे वाली बात बन गई थी। अन्त में एक दिन इन्होंने गुरुदेव के चरणों में सविनय सभक्ति वन्दन नमस्कार करने के अनन्तर कुछ निवेदन करने की इच्छा प्रकट की और उसके लिए आज्ञा की याचना की। चरितनायक और गुरुदेव के मध्य में जो वार्तालाप हुआ वह प्रश्नोत्तर के रूप में इस प्रकार है।

चरितनायक—गुरुदेव ! आप श्री के पवित्र चरणों में आज कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। यदि समय हो और आज्ञा हो तो अपनी बात आपकी सेवा में निवेदन करूँ ?

गुरुमहाराज नेमि ! आप तो हमारे प्रिय विद्यार्थी हैं। इतने दिनों से धार्मिक शिक्षण प्राप्त करते चले आ रहे हैं, आपको समय नहीं मिलेगा तो फिर किसको मिलेगा ? सहर्ष बोलो, क्या कहना चाहते हो ?

चरितनायक—गुरुदेव ! अब तो मैं यही कहना चाहता हूँ, कि आप श्री मुझ पर दया करो मुझे अपने चरणों में दीक्षा देने का अनुग्रह करो। अब मैं दीक्षित होना चाहता हूँ। दीक्षा लेने की मेरी कामना इतनी प्रबल हो चुकी है कि एक एक क्षण भी मेरे लिए भारी बन रहा है। सोचता हूँ, वह घड़ी धन्य होगी, जब मैं दीक्षा पाठ पढ़ूंगा। कृपालो ! इस चरण सेवक की इस विनम्र विनती पर ध्यान दो और इसे स्वीकार करके सेवक को धर्मसाधना करने का अवसर प्रदान करो।

गुरुमहाराज—नेमि ! अभी आप बालक हो, आपकी आयु छोटी है। १२ या १३ वर्ष के बालक को धर्म का क्या बोध हो सकता है ? दूसरी बात संयम साधना का मार्ग कण्टीला, कठोर है, तलवार की धार पर चलना है, लोहे के चने चबाना है। अत अभी तुम्हें और धार्मिक शिक्षण प्राप्त करना चाहिए।

चरितनायक गुरुदेव ! मेरी आयु छोटी है, इसके लिए चिन्ता की कोई बात नहीं है। १३ वर्षों का बालक बहुत कुछ कर सकता है। फिर जिसके सर पर आप जैसे महापुरुषों का हाथ हो, उसके सम्बन्ध में तो अनिष्ट की आशंका का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

यद्यपि मेरी आयु तो १३ वर्षों की है, किन्तु गुरुदेव ! मैं सुनता हूँ कि जिस समय आप दीक्षित हुए, अहिंसा संयम और तप की पवित्र साधना के लिए गुरुमहाराज के चरणों में उपस्थित हुए थे, उस समय आप श्री की आयु १२ वर्षों की थी। महाराज ! आपकी आयु से मेरी आयु एक वर्ष अधिक है। जब आप १२ वर्ष की आयु में दीक्षित हो सकते हैं तो मेरे मार्ग में १३ वर्ष की आयु बाधक कैसे हो सकती है ? गुरुदेव ! आपके दरबार में न्याय का जीवन सुरक्षित ही रहना चाहिये।

चातुर्मास के दिनों महापर्युषण के शुभ अवसर पर आपने श्री अन्तकृद्दशांग सूत्र का व्याख्यान सुनाया था, उस समय आपने पोलासपुर नरेश विजय राजा के सुपुत्र चरमशरीरी श्री अतिमुक्तक कुमार की जीवनी सुनाई थी। शास्त्रों के विश्वासानुसार वे भी छोटी आयु में ही साधु बन गये थे। माता-पिता ने जब उन्हें कहा कि तू धर्म और साधु भाव को क्या समझता है ? तो उन्होंने उत्तर में कहा था—

१—मैं जो जानता हूँ, उसे नहीं जानता, २—जिसे नहीं जानता उसे जानता हूँ माता पिता क्या इस पुत्र की इस रहस्यभरी बात को नहीं समझ

सके। अन्त मे अल्पवयस्क उस अतिमुक्तक कुमार ने ही इस पहेली का स्पष्टी-करते हुए फरमाया था—

मैं जानता हू, कि जिसने जन्म लिया है, उसे एकदिन अवश्य मरना पडेगा। किन्तु यह नही जानता कि कौन जीव कब और किस समय मरेगा। मैं यह नही जानता, कि कौन जीव किस कर्मबन्ध से नरक तिर्यञ्च आदि यनियो मे उत्पन्न होता है, किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ, कि कर्म ही जीव को नरकादि गतियो मे ले जाते हैं।

गुरुदेव ! आपश्री के पवित्र चरणो मे बैठकर मैंने जो अध्ययन किया है, उसके आधार पर मैं तो यही समझता हूँ और मानता हूँ कि अध्यात्म-साधना के साथ आयु का कोई सम्बन्ध नही है। आयु बडी हो या छोटी इसमे कोई फर्क नही पडता है, व्यक्ति की भावना महान् एव पवित्र होनी चाहिये।

तीसरी बात, जीवन विनाशशील है, क्षणभगुर है, प्रभात के तारे की तरह समाप्त हो जाने वाला है। अत इसका क्या पता है ? कब समाप्त हो जाय ? ऐसी दशा मे जितनी जल्दी आत्म कल्याण की साधना सम्पन्न हो सके, कर लेनी चाहिये। आपश्री तो स्वय फरमाया करते हैं, कि जीवन की स्थिति अविश्वसनीय है, कौन जाने कब इस जीवन की इतिश्री हो जाय। जैसे पेड के पके पत्र के स्थानच्युत होते देर नही लगती, ठीक वैसे ही मनुष्यो के जीवन अस्थायी है, न जाने कब धराशायी हो जाय ? अत जब तक यह स्थिर है, तब तक आत्मकल्याण के लिए इसका अधिक-से-अधिक उपयोग कर लेना चाहिये।

गुरुदेव ! जब मैं गाव मे था, वहा एक सन्त आया करते थे वे अपने प्रवचन मे एक दोहा बोला करते थे। वे फरमाया करते थे—

नव द्वारे का पिञ्जरा, तामे पछी पौन।
रहने में अचरज है, गये अचभा कौन ॥१॥

इस दोहे की व्याख्या करते हुए वे जनता को समझाया करते थे कि शरीर एक पिजरे के समान है, इसमे जीव रूपी हस बद पड़ा है। पिजरे के नव द्वार हैं, वे सदा खुले रहते हैं। ऐसी दशा मे हस कभी भी उड सकता है, यदि वह उड जाय तो उसमे कोई आश्चर्य वाली बात नही है, आश्चर्य तो इस बात का है कि वह अब तक उड क्यो नही गया।

गुरुदेव ! आपश्री तो सदा ही ससार की अनित्यता और असारता

जननि ! मुझे स्वीकृति दो, ताकि मैं शीघ्राति-शीघ्र संयम साधना के पथ का पथिक बनकर आत्म कल्याण करता हुआ देश जाति और धर्म के उत्थान में अपनी सेवाएं प्रस्तुत कर सकूं।

माता – पुत्र ! मेरे मन मे तेरे लिए जितना आदर था और है, उसे मैं ही जानती हूँ। उत्तम भी तो तेरा भाई है, पर उसमे मेरा इतना लगाव नही जितना तेरे से है। मेरी धारणा है कि तू बुद्धिमान है, विचारक है, दूरदर्शी है, परिवार के दायित्व को सभालने की तेरे मे क्षमता है। समझ मे नही आ रहा, आज तुझे क्या हो गया। बेटा ! तेरे सहारे पर तो मैंने आशाओ का एक बहुत बड़ा महल खड़ा कर रखा है, और तू ऐसी-ऐसी दु खद बातें करने लगा है। क्या मेरे आशाओं के विशाल भवन को धराशायी करना चाहता है ? विश्वास रखो, ऐसा कभी नहीं होने दूंगी। खबरदार ! मेरे सामने भूलकर भी कभी दीक्षा का नाम मत लेना। अभी तो तुम्हारे पिता के विरह की अग्नि ही शान्त नही हुई। देखता नही मेरे शरीर की क्या दुर्दशा हो रही है ? यह सब कुछ जानते हुए भी अपने मुख से ऐसी बात निकालते तुझे लज्जा नही आती। मुझे मारने का तो निश्चय नहीं कर लिया।

चरित नायक—माताजी ! आप तो रुष्ट ही हो गई जरा शान्ति से काम लें। गभीरता और सहृदयता के साथ वस्तु स्थिति पर विचार करने की कृपा करें। वर्षों से जिन मनोरथो का आप चिन्तन करती चली आ रही हैं, उन्ही को आज मैं मूर्तरूप देने लगा हूं। आप स्वय फरमाया करती हैं, कि धन्य वह दिन होगा, जब परिग्रह का परित्याग करूंगी और सयम का परिपालना करके पडित मरण को प्राप्त करूंगी। मां ! आज मैं इन मनोरथो को ही जीवन मे उतारने का सोच रहा हूँ, तो आप आवेश मे क्यो आ गई और मुझे रोकने क्यों लग गई ? जरा स्वस्थता से विचार कीजिए यह कहाँ तक ठीक है ?

एक बार नही अनेकों बार आप को कहते हुए मैंने सुना है, कि गृहस्थ जीवन दुःखो का घर है, यहाँ दु ख ही दु ख है, सुख का तो इसमें लेश भी नही है। फिर इसी दु:खाक्रान्त गृहस्थ जीवन में मुझे फंसाने के लिए आप क्यो समुद्यत हो रही हैं ? मां होकर पुत्र के साथ यह अन्याय क्यो ? जिसे स्वयं जाल समझती है और जिससे उन्मुक्त होने के लिए सदा छटपटाती रहती हैं, आज उसी जाल मे फँसाने की आप की यह योजना मेरे लिए कहाँ तक हितावह है ? जरा गंभीरता से विचार करने का अनुग्रह करें।

जब कभी वे अपने इष्टदेव का स्मरण करने बैठते, उस समय भी इनके मन में दीक्षा ही घूमती थी। यह अपने कार्यक्रम के अनुसार जब प्रात: उठते, तब गुरु-चरणों में वन्दना करने के अनन्तर गुरु महाराज के चरणों में भी यही प्रार्थना करते—गुरुदेव ! इस सेवक पर ऐसी दया कर कि मेरे माताजी मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दें। इस तरह दीक्षा लेने की लगन इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि प्रतिक्षण और प्रतिपल चरित-नायक को दीक्षा के ही स्वप्न आते थे।

जीवन-शास्त्र का परिशीलन करने से पता चलता है कि मनुष्य की भावना यदि सात्विक और सच्ची हो तो वह एक दिन अवश्य पूर्ण होती है। अन्तराय कर्म का प्रकोप यदि शान्त हो, फिर तो कहना ही क्या है ? इच्छा पूर्ण होते जरा विलंब नहीं लगता। हमारे चरितनायक की दीक्षित होने की भावना सर्वथा सात्विक थी, उसमें कोई सजावट या बनावट नहीं थी, बिल्कुल सच्ची भावना थी फिर वह पूर्ण क्यों न होती ? धर्म के प्रताप से ऐसा वाता-वरण बनना आरम्भ हो गया कि चरितनायक की अपनी आशापूर्ति के चिह्न दिखाई देने लगे। एक बार रात को सोये पड़े थे। स्वप्न आया क्या देखे हैं ? एक दिव्यमूर्ति आकाश से उतरती हुई सामने आकर खड़ी हो जाती है, सिरपर हाथ रखकर कहती है—बेटा ! चिन्ता मत करो, तुम्हारी आशा शीघ्र पूर्ण हो जायगी और दीक्षा कार्य सानन्द सम्पन्न हो जायगा। इतना सुनना था कि चरित-नायक की आंख खुल गई। स्वप्नगत इस आश्वासन से चरितनायक की अन्तरात्मा को बड़ी शान्ति मिली। इन्हें विश्वास हो गया कि दीक्षित होने का मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा और वह शीघ्र ही होगा।

वाम्बोरी में एक बहन की दीक्षा

जिन दिनों हमारे चरित-नायक पूज्यचरण श्री रत्नऋषि जी म० के चरणों में शास्त्राभ्यास कर रहे थे, उन दिनों वाम्बोरी में सती शिरोमणि महासती श्री रामकुंवरजी म० की सेवा में वैराग्यवती सुशीला बहन सुन्दरबाई की दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न होने जा रहा था। इस दीक्षा महोत्सव में महामहिम श्रद्धेय श्री रत्नऋषिजी म० भी पधारे हुए थे। इसी महापुरुष का वैरागन बहन को दीक्षापाठ पढ़ाना था। वाम्बोरी के इस दीक्षा महोत्सव में पार्श्ववर्ती प्रदेश के लगभग ५ हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। बाहर के इन यात्रियों में चरितनायक की माता श्रीमती हुलासाबाई भी गुरुमहाराज के दर्शन करने तथा दीक्षा-महोत्सव की शोभा बढ़ाने वाम्बोरी में पधारी हुई थीं। वि० सं० १९६९ माघ शुक्ला त्रयोदशी बुधवार के शुभ दिन निश्चित समय

सुख मुझ से नहीं देखा जाता। देव! मैं तुझ पर अपना सर्वस्व निछा
सकती हूँ। मेरे प्राण! तू माँगे वह प्रस्तुत कर सकती हूँ। जीते जी
हाथों से तुझे अपने से जुदा नहीं कर सकती। तू तो मेरा प्राण है, जो
तेरे बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। एक बात और सुन ले, पर बेटा!
भर कर) तुझे दीक्षा की आज्ञा नहीं दे सकती। मैंने निर्णय कर लिया था
अब तुझे गुरु महाराज के चरणों मे नहीं जाने दिया जायगा, अपने पास, अ
देखरेख मे ही तुझे रखूँगी। परन्तु तेरे उदासीन मुख ने मेरा मन बदल दि
है। इसलिए अब तुझे मैं गुरुमहाराज के चरणों मे रहने की और वहाँ शास्
के अध्ययन करने की आज्ञा देती हूँ। गुरु महाराज की सेवा मे रहो, खूब पढ़ो
ज्ञानालोक से आत्ममन्दिर को आलोकित करो, परन्तु दीक्षा का विचार दिमाग
से निकाल दो। बेटा! मेरी आँख भी इसी मेरी ममता तुझे नहीं छोड़ सकती।

चरित-नायक माताजी से दीक्षा की आज्ञा लेने का दृढ निश्चय लेकर
आये थे, किन्तु माता के भरे हुए दिल के साथ मुख से निकले शब्दों को सुन-
कर मौन हो गये और सोचने लगे। माताजी की मानसिक स्थिति अभी ठीक
नहीं। यदि अधिक आग्रह करने से इनके मन की स्थिति और अधिक न बिग-
जाय। जब पुन अवसर मिलेगा, तब अपनी बात इनकी सेवा मे निवेद
करूँगा। यह सोचकर चरितनायक माताजी के चरणों मे विनीत स्वर मे निवे
दन करने लगे—

जननि! इच्छा तो यही थी कि आप मुझे दीक्षा की आज्ञा दे डालते
परन्तु यदि अभी आपकी मन स्थिति ऐसी नहीं तो न सही। जो आपकी आज्ञा
है, उसके अनुसार मैं गुरुमहाराज के चरणों मे जाकर शास्त्राभ्यास करूँगा।

माताजी के चरणों मे अपनी बात रखकर तथा माताजी के चरणों मे
सादर प्रणाम करके चरितनायक वहां से उठे और सीधे गुरुमहाराज की सेवा
मे आ गये और शास्त्राभ्यास मे लग गये।

आशा की किरणें

हमारे चरितनायक पूज्यपाद श्रद्धेय श्री रत्नऋषिजी म० जी की सेवा
मे धार्मिक शिक्षण प्राप्त कर रहे थे। परन्तु उनके मन मे दीक्षा लेने की जो
उत्कट भावना चल रही थी उसकी पूर्ति न होने के कारण इनको शान्ति नहीं
थी, सदा चिन्तित से रहते थे। उठते बैठते चलते फिरते खाते-पीते, सोते और
जागते इनको सदा दीक्षा का ही ध्यान बना रहता था, इनकी अन्तर्वीणा से
'मैं दीक्षित हो जाऊँ'' "मैं दीक्षित हो जाऊँ'' यही स्वर निकलते रहते थे।

जब कभी ये अपने इष्टदेव का स्मरण करने बैठते, उस समय भी इनके मन में दीक्षा ही घूमती थी। यह अपने कार्यक्रम के अनुसार जब प्रातः उठते, तब गुरु-चरणों में वन्दना करने के अनन्तर गुरु महाराज के चरणों में भी यही प्रार्थना करते—गुरुदेव ! इस सेवक पर ऐसी दया कर कि मेरे माताजी मुझे दीक्षा की आज्ञा प्रदान कर दे। इस तरह दीक्षा लेने की लगन इनकी बड़ी चढ़ी थी कि प्रतिक्षण और प्रतिपल चरित-नायक को दीक्षा के ही स्वप्न आते थे।

जीवन-शास्त्र का परिशीलन करने से पता चलता है कि मनुष्य की भावना यदि सात्विक और सच्ची हो तो वह एक दिन अवश्य पूर्ण होती है। अन्तराय कर्म का प्रकोप यदि शान्त हो, फिर तो कहना ही क्या है ? इच्छा पूर्ण होते जरा विलम्ब नहीं लगता। हमारे चरितनायक की दीक्षित होने की भावना सर्वथा सात्विक थी, उसमें कोई सजावट या बनावट नहीं थी, बिल्कुल सच्ची भावना थी फिर यह पूर्ण क्यों न होती ? धर्म के प्रताप से ऐसा वातावरण बनना आरम्भ हो गया कि चरितनायक को अपनी आशापूर्ति के चिह्न दिखाई देने लगे। एक बार रात को सोये पड़े थे। स्वप्न आया क्या देखते है ? एक दिव्यमूर्ति आकाश से उतरती हुई सामने आकर खड़ी हो जाती है, सिरपर हाथ रखकर कहती है—बेटा ! चिन्ता मत करो, तुम्हारी आशा शीघ्र पूर्ण हो जायगी और दीक्षा कार्य सानन्द सम्पन्न हो जायगा। इतना सुनना था कि चरित-नायक की आंख खुल गई। स्वप्नगत इस आश्वासन से चरितनायक की अन्तरात्मा को बड़ी शान्ति मिली। इन्हें विश्वास हो गया कि दीक्षित होने का मेरा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा और वह शीघ्र ही होगा।

वाम्बोरी में एक बहन को दीक्षा

जिन दिनों हमारे चरित-नायक पूज्यचरण श्री रत्नऋषि जी म० के चरणों में शास्त्राभ्यास कर रहे थे, उन दिनों वाम्बोरी मे सती शिरोमणि महासती श्री रामकुवरजी म० की सेवा में वैराग्यवती सुशीला बहन सुन्दरबाई की दीक्षा का कार्यक्रम सम्पन्न होने जा रहा था। इस दीक्षा महोत्सव में महामहिम श्रद्धेय श्री रत्नऋषिजी म० भी पधारे हुए थे। इसी महापुरुष का वैरागन बहन को दीक्षापाठ पढ़ाना था। वाम्बोरी के इस दीक्षा महोत्सव में पार्श्ववर्ती प्रदेश के लगभग ५ हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए थे। बाहर के इन यात्रियों में चरितनायक की माता श्रीमती हुलासाबाई भी गुरुमहाराज के दर्शन करने तथा दीक्षा-महोत्सव की शोभा बढ़ाने वाम्बोरी में पधारी हुई थी। वि० स० १९६६ माघ शुक्ला त्रयोदशी बुधवार के शुभ दिन निश्चित समय

पर पूज्यपाद महाराज जी के हाथों दीक्षा का मंगलमय कार्य सम्पन्न हो गया, धर्मप्रिय बहन सुन्दरबाई ने आर्हती दीक्षा लेकर अहिंसा सत्य के महापथ पर चलना आरम्भ कर दिया।

पुत्र की याचना

दीक्षा महोत्सव समाप्त हो जाने के अनन्तर चरित्रनायक की माता[जी] वापस अपने गांव जा रही थी जाने से पहले मंगलपाठ सुनने के लिए वे परम श्रद्धेय वन्दनीय श्री रत्नऋषिजी म० के चरणों में उपस्थित हुईं। जिस सम[य] वे गुरुचरणों में उपस्थित हुई थी उस समय महाराज श्री जी की सेवा में सती शिरोमणि महासतीजी श्री रामकुंवरजी महाराज तथा प्रामाणिक महासतीजी श्री सुन्दर कुंवरजी म० विराजमान थे। तथा उग्रतपस्वी सुश्रावक श्री केसरीमलजी कटारिया बैठे हुए थे। इनके अतिरिक्त हमारे चरित्रनायक वहीं बैठे शास्त्राभ्यास कर रहे थे। चरित्रनायक की ज्ञानाराधना तप-साधना तथा वैराग्य भावना से प्रेरित होकर महाराज श्री माताजी से फरमाने लगे—बहन जी! आपके दो पुत्र हैं, एक श्री उत्तमचन्दजी और दूसरे श्री नेमिचन्दजी। बड़े श्री उत्तमचन्दजी व्यापार-धन्धे में लगे हुए हैं, उनका ध्यान घर की सार-सम्भाल में अधिक रहता है। पूर्ण योग्यता के साथ वे अपना दायित्व निभा रहे हैं, परन्तु आपके छोटे पुत्र श्री नेमिचन्दजी की रुचि धर्मध्यान की ओर है। सांसारिक वृत्तियों में इनका कोई लगाव नहीं। सदा शास्त्रश्रवण, शास्त्रस्वाध्याय, और सामायिक-संवर की साधना में ही समय व्यतीत कर रहे हैं। कुछ समय से तो यह मेरे पास ही है। धार्मिक शिक्षण में इनकी बड़ी रुचि है, थोकड़ों का भी इन्हें अच्छा ज्ञान हो रहा है, बहुत दिनों से सन्तों की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अब इनकी भावना दीक्षित होने की है। हमारा विचार है कि एक पुत्र आपके पास है और एक हमारे पास रहना चाहिये। धर्म की साधना एवं आराधना के लिए इनको आप मेरे पास छोड़ दें। हम भिक्षु हैं, भिक्षा लेना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, अतः बहन जी! आज भिक्षा में हम आपके पुत्र को लेना चाहते हैं—

श्रद्धेय महाराजश्री अपनी बात को चालू रखते हुए पुनः फरमाने लगे कि दान के अनेक प्रकार हैं। कोई कुछ दान करता है कोई कुछ, परन्तु आज हम आपसे नेमि का दान मांगते हैं। ज्योतिषी तो हम हैं नहीं परन्तु हमारी अन्तरात्मा की आवाज है, कि "आपका प्रियपुत्र नेमि साधना-क्षेत्र में बड़ी उन्नति करेगा, उच्चकोटि का एक सन्त बनेगा, आचार-विचार की दृष्टि से

अध्यात्म-जगत् में यह दिवाकर की भाँति चमकेगा, अहिंसा और सत्य का दिव्य अमृत घर-घर बाटकर जनकल्याण करने मे अपना मधुर योगदान देगा और अपने आध्यात्मिक चमत्कारो द्वारा आपके कुल को सदा के लिए अमर बना डालेगा। अत. बहनजी ! पुत्रदान देकर यशस्वी बनो अपने भविष्य को समुज्ज्वल बनाकर इस स्वर्णिम अवसर मे लाभ उठाओ तथा देश-जाति के उत्थान एवं कल्याण-यज्ञ में अपने स्वार्थ की आहुति डालकर अपने कर्तव्य की परिपालना करो।

माता हुलासाबाई अपने प्रियपुत्र नेमिचन्द्र से कितना स्नेह भाव रखती है, यह पूर्व निवेदन किया जा चुका है। स्नेहाधिक्य के कारण ही नेमि को दीक्षित होने की आज्ञा नही दी गई थी। चरितनायक ने दीक्षित होने के लिये अनेको युक्तियाँ दी थी, विनयपूर्वक प्रार्थना की थी, किन्तु माताजी ने स्पष्ट कह दिया था कि मैं दीक्षा का नाम भी सुनना पसन्द नही करती। जब वह महाराजजी के चरणो मे मगलपाठ सुनने आई थी। उस समय उन्हे स्वप्न मे भी यह ख्याल नहीं था, कि उनके सामने नेमि की दीक्षा की कोई बात भी चलेगी परन्तु पूज्यपाद वन्दनीय गुरु महाराज की बात सुनकर माताजी बडी दुविधा मे पड गईं। एक ओर अपने प्रियपुत्र की प्रबल ममता थी और दूसरी ओर महामहिम पूज्य गुरु महाराज की याचना थी, उनकी आज्ञा थी। दोनो मे से किसको प्रश्रय दिया जाय ? बडी टेढी समस्या थी। अन्तरात्मा मे गुरुभक्ति और ममता का द्वन्द्व होने लगा।

गुरु-महिमा

अध्यात्म जगत् मे गुरुपद का बडा महत्वपूर्ण स्थान है। गुरु वह प्रकाश-मानस्तम्भ है, जो जन जीवन को अध्यात्मज्ञान का प्रकाश देता है, और उनके आन्तरिक अन्धकार को दूर करता है। गुरुपद की इस ज्ञान-प्रकाश-प्रदात्री शक्ति का विवेचन करते हुए संस्कृत के एक अनुभवी विद्वान् आचार्य कहते है—

> गुशब्दस्त्वन्धकारःस्याद्, रुशब्दस्तन्निरोधक ।
> अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥१॥

गुरुपद मे गु और रु ये दो शब्द हैं। गु शब्द अन्धकार का बोधक है और रु शब्द "अन्धकार का नाशक" इस अर्थ का परिचायक है। दोनों को मिलाकर *अर्थ होता है—जो महापुरुष मनुष्य के हृदयस्थ अज्ञान-अन्ध को समाप्त* करके उसे ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करता है उसे गुरु कहते हैं। दूसरे शब्दों

में मन के अज्ञान, अविवेक, हिंसा, असत्य, स्तेय, मैथुन, और परिग्रह (आसक्ति) आदि दोषों के अन्धकार का विनाश करने वाला और उसमें ज्ञान, विवेक, अहिंसा सत्य अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अनासक्ति सद्गुणों के आलोक से आलोकित करनेवाला महापुरुष गुरु कहलाता है। गुरुदेव परोपकार, परहित तथा जनकल्याण की भावना के सजीव प्रतीक होते हैं। इनके बिना दुनिया की मोह-माया में फंसे प्राणियों को कौन सत्पथ दिखला सकता है? वस्तुतः ज्ञान और विवेक की आंखें गुरुदेव ही प्रदान करते हैं। गुरुदेव इसी विशिष्टता को ध्यान में रखकर एक मनीषी आचार्य कितनी सुन्दर पद्धति से गुरुमहिमा के गीत गाते हैं—

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

विद्वान् आचार्य कहते हैं कि गुरु महाराज ज्ञान नेत्रों के चिकित्सक हैं। ज्ञान नेत्रों पर आये अज्ञान के मोतियाबिन्द का ऑपरेशन करने वाले हैं। अज्ञानरूप तिमिर-अन्धकार के कारण जो व्यक्ति अन्ध हो गये हैं, गुरुदेव ज्ञान-रूप अञ्जन की शलाका (सलाई) से उनके ज्ञान चक्षुओं का उन्मीलन करते हैं। ज्ञान नेत्र खोलते हैं। ऐसे परोपकारी गुरु महाराज के चरणों में मैं नमस्कार करता हूं।

गुरुदेव मनुष्य को ज्ञान देते हैं, उसके अन्तर्जगत् में ज्ञान के दीप जलाकर उसमें जीव-अजीव, पुण्य पाप आदि तत्त्वों के प्रकाश को प्रसारित करते हैं। आत्मा से महात्मा और महात्मा से परमात्मा बनने का रहस्य भी गुरुदेव ही समझाते हैं। गुरु न होते तो परमात्मा भी अज्ञात ही रहता। गुरु की इसी उपकारमयी वृत्ति के कारण अनुभवी विद्वानों ने गुरु को परमात्मा से भी ऊंचा स्थान दिया है। भक्तराज कबीर इस सत्यता को प्रकट करते हुए फरमाते हैं

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काको लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥

एक बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो दीपक स्वयं जलता है, प्रकाशमान हो रहा है, वही जगती को प्रकाश दे सकता है। बुझा हुआ दीपक कभी किसी पदार्थ को प्रकाशित नहीं कर सकता। शास्त्रकारों ने गुरु को दीपक के तुल्य बतलाया है, अतः वही व्यक्ति गुरु का स्थान ले सकता है जो स्वयं ज्ञान तथा चारित्र के प्रकाश से प्रकाशित है, सत्य आदि महाव्रतों का परिपालक है, धन, दौलत, मकान आदि के प्रपंचों से रहित है, तथा किसी लोभ

मानव के लिए केवल स्व कल्याण की भावना से जनता का मार्गदर्शन करता है उसे जीवन के उत्थान एवं कल्याण का उपदेश देता है। भाव यह है कि गुरुदेव आचार विचार की दृष्टि से महान् ज्ञानी चारित्रशील और त्यागी होने चाहिये। इसके विपरीत जिस व्यक्ति में उक्त गुणसम्पन्नता नहीं है उसे गुरुपद के उपयुक्त नहीं गिना जा सकता। ऐसे गुरु जिन गुणसम्पदा के स्वामी होते हैं ? मानव-मात्र उन्हें विनम्र आदर एवं श्रद्धा की भावना से देखता है ? इस सम्बन्ध में कविकुल भूषण पूज्यपाद पण्डित श्री तिलोक ऋषिजी महाराज ने जो छंद लिखे हैं। वे जनश्रुति में बड़े प्रसिद्ध हैं। क्या साधु, क्या साध्वी, क्या श्रावक और क्या श्राविका सभी इनका बड़े आदर से गान करते हैं। गुरु महिमा के प्रसंग में उनको प्रस्तुत करना आवश्यक समझता हूँ। वे ये हैं-

जैसे कपड़े को थान, दरजी वेतन मान,
खण्ड खण्ड करे जान देत सो सुधारी है।
काठ के ज्यों सूत्रधार, हेम जैसे सुनिकार,
माटी के ज्यों कुम्भकार, पात्र करे त्यारी है॥
धरती को किसान जान, लोह को सुहार जान
शिलावट शिला मान, घाट घड़े भारी है।
कहत तिलोक ऋषि, सुधारे ज्यों गुरु सीख,
गुरु उपकारी नित, लीजे बलिहारी है॥१॥
गुरु मित्र, गुरु मात, गुरु सगा गुरु तात,
गुरु भूप गुरु भ्रात, गुरु हितकारी है।
गुरु रवि गुरु चन्द्र, गुरुदेव गुरु इन्द्र
गुरुदेव दे आनन्द, गुरु पद भारी है।
गुरु देत ज्ञान ध्यान, गुरु देत दान मान,
गुरुदेत मोक्षस्थान, सदा उपकारी है।
कहत तिलोक ऋषि, भली भली देवो सीख,
पल पल गुरुजी को वन्दना हमारी है।

अध्यात्म जगत् में गुरु का कितना ऊँचा स्थान है ? इस सम्बन्ध में बहुत कुछ निवेदन किया जा चुका है और बहुत कुछ निवेदन किया जा सकता है, किन्तु यदि संक्षेप में कहें तो गुरु की महिमा अपरम्पार है इसका पार नहीं पाया जा सकता। जो डॉक्टर आँखों का आपरेशन करके मनुष्य को आँखें देता है, उसे दिव्य ज्योति प्रदान करता है, उसे महान् उपकारी समझा जाता है।

उपकार चारित उसके गुण गाया नहीं सकता, फिर जिस महापुरुष ने आन्तरिक नेत्रों का उन्मीलन करके ज्ञान नेत्र देने की कृपालुता की हो, जीव-अजीव आदि तत्त्वों का बोध कराया हो, अहिंसा-सत्य का महामत्व समझाकर साधक को धर्म और अधर्म का अन्तर बताया हो तथा आधि-व्याधि और उपाधि-जन्य दुःखों से छुटकारा दिलाकर उन्नत किया हो, उस महापुरुष के उपकार का तो कहना ही क्या है? श्री स्थानांग सूत्र के मतानुसार १ माता-पिता २ स्वामी (दुःखी व्यक्ति को आर्थिक सहायता देकर ऊपर उठाने वाला) तथा ३ धर्माचार्य (धर्म का उपदेश देकर जीवन का कल्याण करने वाला महापुरुष) इन तीनों के उपकार का बदला चुकाना बड़ा कठिन है। भाव यह है कि गुरु महाराज महान् उपकारी होते हैं, उनका शिष्य पर जो ऋण है, उससे उसका उऋण (ऋणमुक्त) होना बड़ा मुश्किल है।

चरित-नायक को दीक्षा की आज्ञा

गुरु महाराज का जीवन पर महान् उपकार होता है, और इस उपकार का बदला नहीं चुकाया जा सकता, इस सत्य में किसको मत-भेद हो सकता है? हमारे चरितनायक की पूज्य माता श्रीमती हुलासाबाई भी इस सत्य को पूर्णतया स्वीकार करती थी। और गुरु महाराज की आज्ञा को भगवान् की आज्ञा मानकर चलती थी। उनका अपना मन किसी कार्य के लिए तैयार है या नहीं है इस बात की इन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। यह तो गुरुदेव की ही सदा सर्वोपरि मानती थी। परन्तु जब परम श्रद्धेय वन्दनीय गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी महाराज ने इनके प्रियपुत्र नेमिचन्द्र की याचना की, तब इनके सामने बड़ी जटिल समस्या खड़ी हो गई।

मनोविज्ञान का एक नियम है कि आदर्श जब यथार्थ का स्थान लेने लगता है तो उस समय व्यक्ति को बड़ी भीषण कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आदर्श की दुहाई देनेवाले समाज में बहुत मिलेंगे, किन्तु जब उसे व्यावहारिक रूप देने का समय आता है, तो बहुत लोग मैदान छोड़ जाते हैं। कोई विरला व्यक्ति ही आदर्श के अनुसार जीवन को गतिशील बना पाता है। गुरु महाराज की आज्ञा का प्रश्न चल रहा है अतः प्रस्तुत में "गुरु की आज्ञा सर्वोपरि है" यह आदर्श है और उसे जीवन में उतार के दिखलाना आदर्श का व्यवहार रूप है। चरितनायक की पूज्य माता इस आदर्श को मानकर चल रही थी कि गुरु की आज्ञा भगवान् की आज्ञा है। पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी

...भूति हो रही है, उसे मैं अभिव्यक्त नहीं कर सकता। आपकी इस दया तथा कृपा के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि आप ने जो कुछ ज्ञान शिक्षा दी है, उसके अनुसार ही जीवन-यात्रा चलेगी। गुरु महाराज का आशीर्वाद चाहिये। मेरे सम्बन्ध में आपको कभी शिकायत सुनने का अवसर नहीं मिलेगा।

दीक्षा के महापथ पर

ऊपर कहा जा चुका है कि हमारे चरितनायक की यह उत्कट भावना थी, कि मैं शीघ्रातिशीघ्र पूज्य पाद श्री रत्न ऋषिजी म० के चरणों में दीक्षित हो जाऊँ। इसके लिए गुरुदेव की ओर से तो स्वीकृति मिल चुकी थी, किन्तु माताजी की ओर से आज्ञा नहीं मिल रही थी। शुभ कर्मों का उदय समझिये कि यह समस्या भी समाहित हो गई। पूज्य चरण श्री रत्न ऋषिजी म० ने माता हुलासा बाई से चरितनायक को माग लिया। माताजी गुरुदेव की आज्ञा को टाल न सकी और उन्होंने चरितनायक को दीक्षित होने की आज्ञा प्रदान कर दी। इस तरह दीक्षार्थी के लि' जो पूर्व भूमिका तैयार होनी चाहिये थी, वह सब तैयार हो गई। केवल दीक्षा देने का मुहूर्त निकालना शेष रह गया था। चरित नायक शीघ्रातिशीघ्र दीक्षित होना चाहते थे, फलत. दीक्षा का मुहूर्त पहले मार्ग शीर्ष शुक्ल २ का एक पंडित ने निकाला था, परन्तु उस मुहूर्त से समाज में विचारों की अनुकूलता नहीं होने से सकल्प-विकल्प चल रहे थे। ऐसे प्रसग पर पीपला वाले प्रियभक्त श्रीमान् कोडी-रामजी बोरा तथा उनके भतीजे श्री मुकनदासजी बोरा गुरु महाराज के दर्शनार्थ मिरी में आये थे। उन्होंने गुरुदेव की सेवा में अर्ज की कि हम अहमद-नगर जाकर ज्योतिष-शास्त्रज्ञ सुश्रावक श्री किसनदासजी मुथा, प० घोंडोपनजी और मैं ऐसे तीनों जने मिलकर मुहूर्त का निश्चय करेंगे ऐसा कहकर शीघ्र ही अहमद नगर जाकर तीनों ज्योतिषियों ने अपने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार एक मत होकर वि० स० १९७० मार्ग शीर्ष शुक्ला ६ रविवार का शुभ दिन दीक्षा का मुहूर्त निश्चित करके गुरुदेव की सेवा में बोराजी उपस्थित हुए और गुरु महाराज की आज्ञा मिलने पर सर्व सम्मति से यह दिन निश्चित कर दिया गया। यह मुहूर्त आने पर सभी कार्य शान्तिपूर्वक चलने लगे और निश्चित समय पर दीक्षा का कार्य प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे "अमुक दिन वैरागी नेमि-चन्द्रजी की दीक्षा सम्पन्न होगी" यह समाचार सर्वत्र फैल गया, और यः जनता शुक्लपक्षीय द्वितीया के चन्द्र के भांति इस मगलमय दिन की प्रत करने लगी।

प्रसगों में सम्मिलित होना भी छोड देते हैं। पूज्यपाद महाराज श्री की इस दूरदर्शिता पूर्ण नीति का यदि आज के साधु मुनिराज भी अनुकरण कर लें, तो समाज का अन्त. स्वास्थ्य दूषित होने से बच सकता है।

चिचोंडी का श्रावक सघ जिस समय ऋषिराज के चरणो मे अपनी विनती कर रहा था। उस समय मिरी गाँव का श्रावक सघ भी श्रद्धेय महाराज श्री की सेवा मे उपस्थित था। वह भी चरितनायक का दीक्षा महोत्सव अपने गाँव मे मनाना चाहता था, इसी उद्देश्य को लेकर महाराज श्री के चरणो मे वह आया था। अवसर देखकर इन्होने महाराज श्री की सेवा मे अपनी विनती रखते हुए निवेदन किया। गुरुदेव ! नेमिचन्द्रजी चिचोंडी गाँव के निवासी हैं, अतः यदि इनका दीक्षा महोत्सव चिचोंडी मे हो तो हम इसमे बाधक नही बनते, किन्तु हमारी सम्मति है कि दीक्षा महोत्सव जैसे विशाल आयोजनों के लिए चिचोंडी गाँव उपयुक्त नहीं है। वहाँ की जनसख्या इतनी पर्याप्त नही है, कि वह इस बोझ को सभाल सके। अत आप श्री के चरणो मे हमारी सानुरोध अभ्यर्थना है कि यह सेवा हमारे सघ को देने का अनुग्रह किया जाय। आप श्री तो स्वयं जानते है कि मिरी का श्रावक सघ चिचोंडी के श्रावक सघ से बहुत बडा है, और आप श्री की दया दृष्टि से यहाँ की आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक है। यह सघ प्रत्येक दृष्टि से दीक्षा महोत्सव के भार को सुविधापूर्वक सभाल सकता है। गुरुदेव ! कृपा करें, सेवा का यह अवसर हमे देने की दया करें।

मिरी का श्रावक सघ चिचोंडी के श्रावक सघ से भी विनती करने लगा कि जहाँ हम महाराज श्री से प्रार्थना करते है, वहाँ आपसे भी प्रार्थना करते है, कि दीक्षार्थी के दीक्षा महोत्सव की सेवा हमे देने की कृपा करें।

चिचोंडी का श्रावक सघ बडा दूरदर्शी एव विचारक था, अत उसे श्रद्धेय महाराज श्री की दूरदर्शिता पूर्ण बात उपयुक्त लगी। साथ मे वह मिरी श्रावक सघ का हृदय से सम्मान रखता था। अत उसे निराश करना भी उसे उचित प्रतीत नही हुआ। अन्तमे उसने महाराज श्री के चरणो मे प्रार्थना की कि गुरुदेव ! नेमिचन्द्रजी की दीक्षा यदि मिरी गाँव मे हो, तो इससे हम पूर्णरूपेण सहमत है। चिचोंडी के श्रावक सघ की सम्मति प्राप्त होने पर मिरी गाँव का श्रावक-सघ आनन्द विभोर हो उठा। फिर क्या था ? उसने जोरदार शब्दो से अपनी विनती को श्रद्धेय महाराजश्री के चरणो मे फिर दोहराया और निवेदन किया कि महाराज श्री ! अब तो आप हमे जल्दी स्वीकृति प्रदान करें

ऋषिजी महाराज श्री सुशोभित हो रहे थे। महिलाओ के बैठने की अलग व्यवस्था थी, और आदमियो के लिए अलग प्रबन्ध कर रखा था। दीक्षा स्थान इतना विशाल था कि हजारो की जनसख्या उसमे सुविधापूर्वक बैठ सकती थी। चरितनायक का जुलूस निकट आने पर दीक्षा स्थान खचाखच भर गया। जनता की इतनी अधिक सख्या थी कि वहाँ पैर रखने को भी स्थान नही रहा। चरितनायक घोडे से नीचे उतरे, उच्चतर स्थान मे विराजमान प्रात स्मरणीय श्रद्धेय महाराज की सेवा मे उपस्थित होकर इन्होने उनके पवित्र चरणो मे अपना मस्तक रखा। मगल पाठ सुना, आशीर्वाद प्राप्त किया। यह सब आवश्यक कार्य हो जाने के अनन्तर चरित नायक एकान्त स्थान मे चले गये। वस्त्राभूषण सब उतार दिए। केश मुण्डन आदि कार्यो से निवृत्त होकर इन्होने सोत्साह साधु वेष धारण किया। शरीर पर केसर रञ्जित श्वेत चादर, कांख (बगल) मे रजोहरण, हाथ मे झोली और मुख पर मुखवस्त्रिका, इस तरह साधु जीवन के सभी उपकरण यथा स्थान पहन लेने के अनन्तर चरितनायक ने दीक्षा स्थान मे प्रवेश किया। उस समय उपस्थित जन-समूह ने—

> अहिसा के देवता भगवान् महावीर स्वामी की जय हो।
> कविकुल भूषण श्री तिलोक ऋषिजी म० की जय हो।
> गुरुदेव पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी म० की जय हो।

आदि जयकारो से आकाश को गुजाते हुए चरितनायक का स्वागत किया। बडा सुहाना समय था वह। हजारो नेत्र चरितनायक की वैराग्यमयी रूप छटा को बडी उत्सुकता मे दर्शन कर रहे थे। चरितनायक भी उस समय साधु वेष मे कुछ निराले ही दिखाई दे रहे थे। शरीर पर केसरिया बाना था, केसर के रग से रगी मुखवस्त्रिका भगवती अहिसा की आराधना का पवित्र सदेश दे रही थी। अधिक क्या? चरितनायक के शरीर का कण-कण त्याग वैराग्य की वर्षा कर रहा था। नत हुए हजारो मस्तक इनके इस वैराग्य के प्रति अपना हार्दिक अभिवन्दन एव अभिनन्दन प्रस्तुत कर रहे थे।

लहलहाती हुई अपनी खेती को देखकर जैसे किसान का रोम-रोम पुलकित हो उठता है। वैसे ही अपने को साधु वेष मे पाकर चरितनायक का मन बल्लियो उछल रहा था, उस समय इनको जो आनन्दानुभूति हो रही थी, उसे शब्दो की सीमित रेखाओ से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। इनके मुख की अपार प्रसन्नता, इनके आन्तरिक हर्षातिरेक को समूचित कर रही

थी। वास्तव में चरितनायक का दीक्षित होने का यह स्वर्णिम अवसर बड़े परिश्रम और अपार साधना के अनन्तर सम्प्राप्त हुआ था, अतः उत्तीर्ण हुए परिश्रमी छात्र की तरह इनका प्रमुदित होना स्वाभाविक ही था।

मानव समुदाय को चीरते हुए चरितनायक अपने परम आराध्य प्रातःस्मरणीय गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी म० के चरणों में जा पहुंचे। गुरु चरणों में वन्दन किया। दीक्षार्थी द्वारा वन्दन सम्यक्त्व सूत्र, आलोचना सूत्र आदि सूत्रों का पाठ, कायोत्सर्ग आदि समस्त विधि-विधान सम्पन्न हो जाने के पश्चात् गुरुदेव ने चरितनायक की पूज्य माता श्रीमती हुलासाबाई से तथा ज्येष्ठ बंधु श्री उत्तमचन्दजी आदि परिवार तथा श्री संघ से वैरागी नेमिचन्द्र को दीक्षित करने की आज्ञा प्राप्त की तदनन्तर उन्होंने उच्च स्वर से दीक्षा पाठ पढ़ाकर चरितनायक को दीक्षित किया, जैन साधु बना लिया।

चरितनायक के दीक्षा महोत्सव में जहाँ बाहर से हजारों की संख्या में जन समुदाय एकत्रित हुआ था वहाँ श्रद्धेय मुनिवर श्री राजमलजी महाराज तथा महाराष्ट्र की विख्यात महासती श्री रामकुंवरजी महाराज आदि १६ साध्वियाँ भी दीक्षा महोत्सव में पधार कर उत्सव की शोभा को बढ़ा रही थीं। यह सत्य है कि महासतियों की संख्या क्षेत्र की दृष्टि से अधिक थी, किन्तु महासतीजी म० बड़े दीर्घदर्शी थे, इन्होंने आयंबिल-तप-साधना द्वारा गोचरी आदि में दोष न लगने पाये, तदर्थ पूर्ण सावधानी रखी। चरितनायक को जिस समय दीक्षित किया गया था उस समय इनकी आयु १३ वर्षों की थी, और दीक्षा के समस्त कार्य में श्रीमान् सेठ पन्नालालजी धनराजजी मेहर अग्रणी थे। इनके नेतृत्व में ही दीक्षा संस्कार की सब व्यवस्था सम्पन्न हुई थी। दीक्षा महोत्सव में सम्मिलित होनेवाले भाई और बहनों ने यथाशक्ति धर्म की प्रभावना की। किसी ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया और किसी ने परिग्रह मर्यादा की। इस प्रकार जिसकी जैसी शक्ति थी, उसके अनुसार उसने धर्म मर्यादाओं को अंगीकार करके समुज्ज्वल भविष्य के लिए अपनी सद्भावनाएँ अभिव्यक्त की।

नेमि से आनन्द

हमारे चरितनायक के बचपन में श्री नेमिचन्द्रजी और श्री गोटीरामजी यह दो नाम थे, किन्तु जब यह दीक्षित हुए तो इनका नाम श्री आनन्द ऋषिजी म० रखा गया। नाम तो दूसरा भी रखा जा सकता था, किन्तु यह नाम रखने के पीछे कुछ कारण थे। प्रथम तो इनकी आकृति इतनी सौम्य थी—शान्त थी

कि इनको देखनेवाले के हृदय में सहसा प्रेम उत्पन्न हो जाता था। इन्हें देखकर वह अपूर्व आनन्दानुभूति करता था। दूसरे इनकी वाणी में इतनी मधुरता एवं सरलता थी कि लोग बरबस इनकी ओर आकर्षित हो जाते थे। इनके संगीत सर्वजनप्रिय थे, जब ये गाते थे तो श्रोता आनन्द विभोर होकर झूम उठते थे। तीसरे इनका रहन-सहन आचार-विचार इतना सात्त्विक एवं महान् था, कि वह सब के लिए आनन्दप्रद रहा था। इस तरह इनका दर्शन, वाणी विलास, रहन-सहन, तथा आचार-विचार, सब कुछ आनन्ददाता था। आनन्दमय था, इसी दृष्टि से दीर्घदर्शी गुरुदेव पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी महाराज ने इनको 'आनन्दऋषि' इस नाम से बुलाना आरम्भ कर दिया जो कि सर्वथा उपयुक्त एवं औचित्यपूर्ण था, तथा गुरुदेव की सूक्ष्मदर्शिता का सुन्दर प्रतीक था। दीक्षा के अनन्तर यह इसी नाम से पुकारे जाने लगे थे। आज भी इसी नाम से सर्वत्र प्रसिद्धि पा रहे हैं। अग्रिम प्रकरणों में हम भी अब इनका इसी नाम से स्मरण करेंगे। आनन्द शब्द तो वैसे ही मधुर है और इसकी प्राप्ति के लिए समस्त संसार अपने-अपने ढंग से प्रयत्नशील है। विशेषरूप से भारत के स्थानक वासी जैन समाज के लिए तो यह शब्द ही आदरास्पद बन गया है।

जैन साधना की कठोरता

कहा जा चुका है कि वि० सं० १९७० मार्गशीर्ष शुक्ला नवमी रविवार के शुभ दिन चारित्रनायक श्री नेमिचन्द्रजी का दीक्षामहोत्सव बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हो गया और इनका नाम श्री आनन्दऋषिजी म० रखा गया। मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० ने दीक्षित होकर संयम साधना के कठोरतम महापथ पर चलना आरम्भ कर दिया। भारत के जैनेतर साधुओं की अपेक्षा जैन साधु का जीवन त्याग और तपस्या की दृष्टि से बड़ा कठोर जीवन होता है, सर्वप्रथम ये भगवती अहिंसा का मनसा, वाचा और कर्मणा आराधना करते हैं नंगे सर नंगे पाँव रहते है, सर पर पगड़ी टोपी आदि कुछ नहीं पहनते। पैरों में जूते नहीं रखते, बुढ़ापा हो, या रुग्णावस्था हो। किसी भी दशा में रेल, मोटर, गाड़ी आदि किसी भी सवारी का प्रयोग नहीं करते सदा पैदल ही चलते हैं कड़ी से कड़ी सरदी पड़ने पर भी यह आग से नहीं सेकते। प्यास के मारे प्राण भी चला जाय, परन्तु सचित्त कच्चा पानी नहीं पीते। चाहे जितनी भूख सता रही हो, पर फल आदि कच्ची सब्जी नहीं खाते, आग और हरी सब्जी का स्पर्श तक नहीं करते। शराब, अफीम आदि किसी नशीली वस्तु को काम में नहीं लाते। सदा सत्य

बोलते हैं। स्वामी की आज्ञा के बिना किसी वस्तु का ग्रहण नहीं करते, मन वचन और शरीर से ब्रह्मचर्य पालते हैं। स्त्री का छूते तक नहीं। इनका डेरा, मठ आदि कोई स्थान नहीं होता। कौड़ी, पैसा, रुपया, सोना, चान्दी कुछ भी धन पास नहीं रखते। रजाई, तलाई, पलंग, खाट, आदि का उपयोग न करके खादी तथा ऊनी वस्त्रों से जीवन का निर्वाह करते हैं, नाई से हजामत नहीं बनवाते। हाथों से ही केश लुञ्चन करके अपनी आदर्श सहनशीलता का परिचय देते हैं। दरजी से अपने कपड़े नहीं सिलाते, धोबी से वस्त्र प्रक्षालन नहीं करवाते। कुली से अपना बोझ नहीं उठवाते। रात्रि को खाने-पीने की किसी चीज का प्रयोग नहीं करते। इस प्रकार के अन्य भी अनेकों नियमोपनियम हैं। जिनका जैन साधु को बड़ी सतर्कता के साथ पालन करना पड़ता है। जैन साधु की साधनागत कठोरता जगत प्रसिद्ध है। इसी कठोरता के मार्ग पर हमारे चरित्रनायक श्री आनन्द ऋषिजी महाराज ने अग्रसर हो आरंभ कर दिया।

पाँच महाव्रत

जैन साधुओं के लिए पाँच महाव्रतों का विधान किया गया है। साधु-बड़ा हो या छोटा, प्रत्येक को इनका परिपालन करना होता है। प्रसंगानुसार पांच महाव्रतों का संक्षिप्त परिचय करना भी आवश्यक समझता हूँ वह पांच महाव्रत इस प्रकार हैं—

१ अहिंसा—हिंसा का परित्याग करना अहिंसा है। मन से वचन से और शरीर से किसी भी प्राणी की न स्वयं हिंसा करना, न दूसरों से करवाना, तथा न करने वालों का अनुमोदन-समर्थन करना अहिंसा महाव्रत है।

२. सत्य—मृषाभाषा को छोड़कर यथार्थ कथन करना सत्य है। मन-वचन और शरीर से न स्वयं झूठ बोलना, न दूसरों से बुलवाना तथा न झूठ बोलनेवालों का अनुमोदन करना सत्य महाव्रत है।

अचौर्य—मालिक की आज्ञा के बिना किसी वस्तु का ग्रहण करना चोरी है, चोरी का त्याग अचौर्य है। मन वचन और शरीर से न चोरी स्वयं करना, न दूसरों से करवाना, और न चोरी करने वालों का समर्थन करना, अचौर्य महाव्रत है।

४. ब्रह्मचर्य—मैथुन-वासना से दूर रहना ब्रह्मचर्य है। मन वचन और शरीर से मैथुन-व्यभिचार न स्वयं सेवन करना, न दूसरों से करवाना और न मैथुन सेवन करने वालों का अनुमोदन करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

५. अपरिग्रह — आसक्ति का त्याग करना अपरिग्रह कहलाता है। मन, वचन और शरीर से परिग्रह-आसक्ति का मन में स्वयं रखना न दूसरों से रखवाना और न परिग्रह रखने वालों का अनुमोदन करना अपरिग्रह महाव्रत है।

जैन साधु का आध्यात्मिक जीवन त्याग और वैराग्य का इतना कठोर एवं व्यवस्थित जीवन है कि आज उसकी समानता करनेवाला कोई दूसरा साधु उपलब्ध नहीं होता। जैन साधु जो थोड़ी संख्या में पाये जाते हैं इसका कारण भी जैन साधु की आचारगत कठोरता ही है। यदि अन्य साधु भी जैन साधु की भांति त्याग-वैराग्य के आधार से अपने अनुयायियों को आकर्षित करके जन कल्याण में अपनी शक्तियों का उपयोग करना आरम्भ कर दें तो आज साधु समाज के प्रति जो अनादर भाव बढ़ रहा है, वह सदा के लिए समाप्त हो जायगा और अतीत की भांति साधु का वर्तमान भी समुज्ज्वल एवं प्रकाशमय दिखाई देने लगेगा।

चरित्रनायक श्री आनन्द ऋषिजी म० जैन साधु की उक्त साधना-पथ कठोरता से सुपरिचित थे और इन्होंने बिना किसी दबाव या प्रलोभन के, केवल आत्मकल्याण की भावना से सहर्ष इस महामार्ग पर चलना प्रारम्भ किया था। परिणाम स्वरूप इस महामार्ग का राही बनकर इनका मानस बड़ा प्रसन्न था, इन्हें एक अलौकिक आनन्दानुभूति हो रही थी। जीवन दर्शन का अध्ययन करने से पता चलता है कि संयम साधना व आनन्दानुभूति प्रत्येक व्यक्ति को नहीं हो पाती। जन्म जन्मान्तर के किसी शुभ कर्म के कारण ही धार्मिक वृत्तियों में मनुष्य को सुखानुभूति हो सकती है। भाग्यहीन जीव तो इससे वंचित ही रहते हैं। हमारे आदरणीय चरित्रनायक श्री आनन्द ऋषिजी महाराज इस दृष्टि से एक बहुत बड़े भाग्यशाली महापुरुष हुए हैं व इसलिए धर्माराधन से इनको जो आनन्दानुभव हो रहा था, उसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। संयम-भावना के रंग में ही वह सदा रंगे रहते थे।

विनय की महिमा

चरित्रनायक का जीवन त्याग-वैराग्य जप-तप आदि सद्गुणों का एक सजीव भण्डार था। साधु समाज में ये शान्त मुद्रा, सरल हृदय, प्रसन्न मुख, संयमशील तथा मिलनसार मुनिराज समझे जाते थे। इनसे वार्तालाप करके क्या साधु क्या श्रावक? सभी को प्रमोदानुभूति होती थी। चरित्रनायक के गुरुदेव पूज्यपाद श्रद्धेय श्री रत्न ऋषिजी म० को ऐसे शिष्यरत्न की प्राप्ति के

ती है। श्रद्धेय महाराज श्री की बात सुन कर श्रावक संघ ने गुरु महाराज से विनम्र निवेदन करते हुए अर्ज की — महाराज ! आप श्री सर्वथा निश्चिन्त रहें। किसी सुयोग्य विद्वान को लाने का प्रयत्न किया जाएगा। श्रावक संघ ने अपने कथनानुसार सुयोग्य विद्वान का अन्वेषण आरम्भ किया। अन्त में विद्या के केन्द्र काशी से एक शास्त्री को बुला लिया गया। शास्त्रीजी ने चरित्रनायक का शिक्षण आरम्भ कर दिया। किन्तु कुछ ही दिनों में चरित्रनायक के बुद्धि वैभव को देखकर वे भी चकरा गए और अपनी असमर्थता प्रकट करके वहाँ से प्रस्थान कर गए।

आदर्श श्रावक श्री नानचन्दजी दुगड़

धर्म प्रिय सेठ नानचन्दजी दुगड़ घोड़नदी (महाराष्ट्र) जैन समाज के एक जन-गण मान्य प्रतिष्ठित श्रावक थे। आहार, विचार, आचार तथा व्यापार की दृष्टि से इन्हें सर्वत्र सत्कार एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। प्रतिदिन सामायिक तथा शास्त्रश्रवण करना, साधु मुनिराजों की सेवा का लाभ लेना आदि सत्प्रवृत्तियाँ ही इनके जीवन की मुख्य साधना थी। श्रावक जीवन में जिन गुणों का अस्तित्व होना आवश्यक है, उन सबके प्रायः सेठजी में दर्शन हो रहे थे।

श्रावक पद का अर्थ विश्लेषण करते हुए मनीषी विद्वानों ने उसे तीन विभागों में विभक्त किया है। जैसे कि श्रा, व, क। श्रा का अर्थ है— सम्यग्दर्शन को धारण करने वाला। व से — गुणवान्, धर्म क्षेत्र में धन रूपी बीज बोने वाला, दान देने वाला और, क से —"कर्मरज का परिहार करने वाला, इस अर्थ का ग्रहण किया जाता है। तीनों अंशों को मिलाने पर श्रावक शब्द उपरोक्त अर्थों का बोध कराता है।

सेठ जी का वात्सल्य भाव

सुश्रावक सेठ नानचन्द जी दुगड़ में श्रावक पद से अभिव्यञ्जित भावना पूर्णरूप से व्यवहार का रूप ले रही थी। सेठजी पूर्ण रूपेण आस्तिक थे। जैन शास्त्रों की भाषा में कहूँ तो वे पूर्ण सम्यक्त्वी थे। शांतिप्रिय, हँसमुख, मिलनसार, दानी और धर्म-संघ की वृद्धि का सदा ध्यान रखने वाले व्यक्ति थे। साधु मुनिराजों के चरणों में इनकी विशेष निष्ठा थी। साधु जीवन के प्रति इनके हृदय में जो श्रद्धा थी, वह इतना बढ़ा चढ़ा था कि उसे शब्दों की सीमित रेखाओं से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। वह साधु छोटा है, वह दीक्षित है, साधारण व्यक्तित्व वाला है, इसकी साधना अपक्व है। कहाँ का

का यह साधु, कहाँ मैं अनुभवी पुराना श्रावक ? ऐसा इन्होंने कभी सोचा नहीं था। बड़े मुनिराजों की तरह से छोटे मुनियों का भी यथोचित सम्मान किया करते थे। और कभी-कभी तो ये छोटे संतों के प्रति इतना वात्सल्यभाव प्रदर्शित किया करते थे कि शास्त्र सम्मत "श्रावक माता-पिता के समान होता है," इस तथ्य को अपने जीवन में पूर्णतया व्यवहार का रूप दे डालते थे। चरितनायक के जीवन में भी एक बार इस तरह का प्रसंग आया था, जब इन्होंने (सेठ नानचन्द्र जी दुगड़ ने) इनके प्रति वात्सल्यभाव दिखलाकर श्रावक की आदर्शता का एक समादरणीय प्रमाण उपस्थित किया था। पाठकों की जानकारी के लिए अग्रिम पंक्तियों में उस प्रसंग का निर्देश किए देता हूँ।

विक्रम सम्वत् १९७४ में चरितनायक का चातुर्मास अपने परम आराध्य गुरुदेव, शान्तिमूर्ति श्री रत्नऋषिजी महाराज के साथ म्हसा नामक गाँव (महाराष्ट्र) में था। चातुर्मास काल में चरितनायक के शिक्षण के लिए स्थानीय सेठ रत्नचन्द्रजी जसराजजी छाजेड़ ने उस समय के सुप्रसिद्ध समाचार पत्र 'केसरी' में विज्ञापन देकर पूना से श्री सिद्धेश्वरजी शास्त्री विश्वास को बुलाया था। शास्त्रीजी व्याकरण शास्त्र के मार्मिक विद्वान् थे। विशेष रूप से सिद्धान्त कौमुदी में इनकी बड़ी अच्छी गति थी और संस्कृत-पाठशालाओं में अनेकों बार सिद्धांत-कौमुदी पढ़ाने का इनको अवसर मिला था। फलतः चरितनायक ने इनसे सिद्धान्तकौमुदी पढ़नी आरम्भ करदी। शास्त्रीजी के अध्यापन से चरितनायक को पूर्णसंतोष था। ये बड़ी लग्न तथा तन्मयता से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करते जा रहे थे।

चातुर्मास के अनन्तर जैन परम्परा के अनुसार रोग आदि किसी कारण के बिना जैन साधुओं को विहार करना होता है। इसी परम्परा के के कारण चरितनायक अपने गुरुदेव के साथ वहां से विहार करके पीपरी, रायगव्हाण, येलपणा, वैलवडी, ढवलगाँव, येवती, देवदैठण आदि क्षेत्रों की जनता को कृतार्थ बनाते हुए-घोडनदी पधारे। घोडनदी महाराष्ट्र प्रान्त का एक विख्यात क्षेत्र है। यहाँ जैन लोगों की अच्छी खासी बस्ती है। सामायिक, सन्ध्या, पौषध, उपवास, नित्यनियम आदि अध्यात्म अनुष्ठानों की ओर जन-मन में पर्याप्त रुचि पाई जाती है। ऋषि सम्प्रदाय की एक महान विभूति, परम विदुषी महासती श्री सुमतिकुंवर जी महाराज की जन्मभूमि होने का सौभाग्य भी इसी गाँव को सम्प्राप्त है। इसी धर्मप्रिय गाँव में हमारे मान्य चरितनायक अपने श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी रत्नऋषिजी महाराज के साथ

और उनके चरणों में इन्होंने विनीतता पूर्वक अपनी बात कहते हुए निवेदन किया—

गुरुदेव ! सिद्धान्तकौमुदी बड़ा दुरूह ग्रंथ है, फक्किकाओं के जाल में उलझ कर निकलना ही कठिन हो जाता है। परिश्रम करने पर भी काम नहीं चलता। गुरुमहाराज ! आज तो मेरा मन इतना निराश हो गया है कि क्या निवेदन करूँ ? इसी निराशा के कारण मैंने विचार कर लिया कि मैं सिद्धांतकौमुदी नहीं पढ़ूँगा। इस विचार के पीछे जहाँ सिद्धान्तकौमुदी की दुरूहता है, वहाँ अन्य भी कई एक कारण हैं। इस कौमुदी के शिक्षण में मुझे कोई विशेष लाभ भी नहीं दिखाई देता। पहले तो इसका समझना कठिन, फिर याद करना मुश्किल, यदि किसी भी तरह इसको याद भी कर लिया जाए, फिर इसका याद रखना भी दुष्कर है। कुछ दिन इसे न देखो, इसकी आवृत्ति न करो तो यह भूल जाती है। किया कराया सब चौपट हो जाता है। जिससे आखिर एक दिन विस्मृत ही हो जाता है। उस पर माथापच्ची करने का क्या मतलब ? मेरी समझ में व्याकरण पढ़ना समय व्यर्थ खोना है। व्याकरण तो वहीं स्मृति में रह सकता है, जहाँ निरन्तर इसका पठन पाठन होता रहता है, संस्कृत पाठशालाओं में ही संस्कृत व्याकरण को उपस्थित रखा जा सकता है और वहीं इस की उपयोगिता है। अन्यत्र तो इसका उपयोग हो ही नहीं पाता। दूसरा सबक दिन लगा रहूँ तब कहीं जाकर इस पंक्ति की समझ में आती है। अभी तो इतना बड़ा विशाल ग्रंथ पड़ा है। कभी कोई शारीरिक कारण बाधा डाल देता है। तो अनध्याय हो जाता है, यदि विघ्नों का भी विचार छोड़ दें तो भी इस पंक्तियों के हिसाब से बहुत समय लगाना पड़ेगा। आगे याद करो पीछे भूल जाता है। मैं सोचता हूँ जितना समय व्याकरण में माथा-पच्ची करूँगा, उतना समय यदि आप श्री के चरणों में बैठ कर जैनागमों का अभ्यास करूँ तो कर्म-निर्जरा के अतिरिक्त जनकल्याण में उनका अधिकाधिक उपयोग हो सकता है। इसके अतिरिक्त श्रावकों के धन का जो अपव्यय हो रहा है, वह नहीं हो पायेगा।

चरितनायक की बात सुनकर श्रद्धेय महाराजश्री मौन रहे, इन्होंने विचार किया कि आज आनन्द का हृदय निराश हो रहा है। सिद्धान्त कौमुदी की फक्किकाओं से यह ऊब गया है। अभी निराशा अपने यौवन पर है, अतः इस समय कुछ कहना, समझाना लाभप्रद दिखाई नहीं देता। समय पर कुछ

तब कोई चिन्ता करने की बात ही नहीं [illegible] होता है। कौमुदी पढ़ [illegible] व्याकरण पढ़ने के लिए [illegible] आता रहता है। यदि व्याकरण सर्वांग सुन्दर और सुगम होगा, तो [illegible] ? कौमुदी पढ़, परिश्रम करके सर्वोपयोगी [illegible] व्याकरण पढ़ा जा सकता है। [illegible] विद्यार्थी [illegible] नहीं हो पाते, सिद्धान्त कौमुदी तो बहुत कठिन [illegible] दुरूह ग्रन्थ माना जाता है। टीकाकारों ने इसे [illegible] बना दिया है। उसका अध्ययन तो अत्यधिक परिश्रम चाहता है। मालूम होता है आज किसी कठिनता ने [illegible] आनन्द को हैरान कर दिया है। समाधान की [illegible] करती हुई गुरुदेव की अन्तरात्मा बोली — आनन्द अभी बच्चा है, पढ़ाई में [illegible] पढ़े २ पकता जाता है। अतः चिन्ता वाली कोई बात नहीं। चिन्ता का यह उबाल धीरे-धीरे शान्त हो जाएगा। अभी कुछ कहना [illegible] आनन्द की बात शांति से सुननी चाहिए। ये सब विचार करके गुरु महाराज बिल्कुल खामोश रहे और ध्यानपूर्वक चरित्रनायक की बात सुनते रहे।

धर्मप्रेम गुरुदेव श्री की गंभीर मौन और खामोश देखकर चरित्रनायक ने अपनी बात जल्दी समाप्त कर दी और वन्दना, नमस्कार करने के अनन्तर शिष्टतापूर्वक वहाँ से उठे तथा अपने दूसरे कार्य में लग गये।

चरित्रनायक के चले जाने पर इनके पूज्य गुरुदेव श्री रत्न ऋषिजी महाराज अपने प्रिय शिष्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की निराशापूर्ण विनती पर विचार करने लगे ही थे कि इतने में मान्य श्रावक, धर्मप्रेमी, गुरुभक्त श्री नानचन्द्रजी दूगड़ दर्शनार्थ आ गए। सेठजी के सम्बन्ध में कुछ पहले कहा जा चुका है। सेठजी एक सुलझे हुए प्रतिष्ठित एवं प्रामाणिक व्यक्ति थे। गम्भीर विचारक, दूरदर्शी होने के साथ-साथ वे परमभक्त भी थे। चरित्रनायक की शिक्षण-व्यवस्था का आर्थिक प्रबन्ध दूगड़जी ही कर रहे थे। श्री प० सिद्धेश्वर शास्त्रीजी का मासिक वेतन यही दिया करते थे। सेठजी को अपने पास देखकर चरित्रनायक के गुरुदेव इतने फरमाने लगे —

सेठजी ! श्री सिद्धेश्वर शास्त्रीजी की अब आवश्यकता नहीं रही। अतः अब इनको छुट्टी दे दो।

सम्मानास्पद गुरुदेव की अचानक यह बात सुनकर सेठ नानचन्द्रजी दूगड़ आश्चर्य चकित रह गए। उन्होंने विनयपूर्वक गुरुचरणों में विनती करते हुए निवेदन किया।

गुरुदेव ! आज अचानक पण्डितजी को छुट्टी देने का प्रसंग कैसे आ गया। बड़ी मुश्किल से तो शास्त्रीजी सम्प्राप्त हुए हैं। महाराज श्री संस्कृत व्याकरण के इतने ऊँचे विद्वान् का पाना साधारण बात नहीं है। ऐसी क्या बात हो गई ? क्या शास्त्रीजी से कोई भूल हो गई ? या अन्य कोई बात है ? कृपया जरा कारण तो बतलाने का अनुग्रह करें। हुंगा तो वही जो आप श्री फरमा रहे हैं। आप श्री के आदेश से इधर-उधर जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता, किन्तु यदि सारी परिस्थिति सामने आ जाए, तो मन को जरा सन्तोष रहेगा।

अपने विनीत श्रावक टूगडजी की युक्ति संगत बात सुनकर चरित-नायक के गुरुदेव कहने लगे। सेठजी ! इस प्रश्न का समाधान आनन्द ऋषि स्वयं करेगा, पण्डितजी को छुट्टी देने का कारण आप आनन्द से पूछिये। वह आप को सब कुछ बतला देगा।

महाराज श्री का उत्तर सुनकर सेठजी तत्काल वहाँ से उठे और जहाँ चरितनायक शास्त्र स्वाध्याय कर रहे थे सीधे वहाँ आ गए। वंदन, नमस्कार के पश्चात् इन्होंने चरितनायक से पूछा। महाराज ! क्या बात हो गई ? गुरुदेव शास्त्रीजी को छुट्टी देने का आदेश दे रहे हैं। कारण क्या है ? आपने पढ़ने से इन्कार कर दिया है या पंडितजी रहना नहीं चाहते ? या कोई दूसरी बात हो गई ? वस्तुतः स्थिति क्या है ? यह बतलाने की कृपा करें।

सेठजी के तर्क संगत प्रश्न का समाधान करते हुए चरितनायक कहने लगे—श्रावकजी ! आप तो हमारे माता-पिता के समान हैं। आप जैसे हितैषी और सरल हृदय श्रावक से छिपाव रखने जैसी क्या बात है ? गुरु महाराज ने आप को जो आदेश दिया है, इसका मूल कारण कोई दूसरा नहीं है, मैं स्वयं ही हूँ। मैंने गुरुदेव से पण्डितजी को छुट्टी देने की बात कही है। सत्यता यह है कि शास्त्रीजी की ओर से कोई बात नहीं हुई न उन्होंने अध्यापन कार्य से इन्कार किया है और न मुझे उनके व्यवहार बारे में कोई शिकायत है। उनका शिक्षण काल तो सर्वथा मनोरंजक है, वे पूर्ण रूप से परिश्रम करते हैं और दिल लगाकर मुझे पढ़ाते हैं, किन्तु मेरा मन ही पढ़ने से ऊब गया है, अब पढ़ने को मन नहीं करता। सिद्धान्तकौमुदी बड़ा कठिन ग्रंथ है, परिश्रम करने पर भी यह काबू में नहीं आ रहा। सोचता हूँ, प्रतिदिन १० पंक्तियाँ मुश्किल से समझ में आती हैं। समस्त ग्रन्थ पर तो न जाने कितना समय लगेगा ? मैं नहीं चाहता, श्रावकों की खून पसीने की कमाई का इस तरह

प्रारम्भ किया है। मैंने संस्कृत व्याकरण पढ़ने का विचार [illegible] किया है। अब तो मैं जैनागमों का अध्ययन करूँगा। यही बात मैंने गुरु महाराज के चरणों में निवेदन की है।

चरितनायक की बात सुनकर श्री [illegible] हमारी [illegible] समझ गये। [illegible] कोई गम्भीर समस्या नहीं है। महाराज श्री व्याकरण की कठिनाई से घबरा गए हैं। साधारण सी बात है। अभी विचार कर रहा हूँ। अपना मौन भंग करते हुए उन्होंने चरितनायक से शान्तिपूर्ण भाषा में निवेदन करते हुए कहा

महाराज! आप स्वयं समझदार हैं, प्रतिभा सम्पन्न मुनिराज हैं। आप को मैं क्या कहूँ? आप को स्वयं ही विचार करना चाहिए। यद्यपि इतनी विनीत अवश्य करूँगा कि अभी आप की पढ़ने की अवस्था है, प्रौढ़ अवस्था आ जाने पर कितने पढ़ते हैं? और कितना पढ़ पाते हैं? मेरे विचार में यदि आप दो चार वर्ष परिश्रम कर के संस्कृत भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लें तो जीवन भर आनन्द ही आनन्द है। सिद्धान्त कौमुदी कठिन है, यह मैं स्वीकार करता हूँ, किन्तु कठिनाई से भयभीत होकर भाग जाना यह कहाँ की दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता है? संस्कृत पाठशालाओं में छोटे छोटे बच्चे पढ़ते हैं और प्रति वर्ष परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते हैं। उनको खाने, पीने, पुस्तकों तथा अध्यापकों की पूरी सुविधा भी नहीं होती, फिर भी वे पढ़ जाते हैं। आप को तो गुरु की कृपा से सभी सुविधायें उपलब्ध हैं। किसी वस्तु की न्यूनता नहीं है, पढ़ने के लिए समय भी पर्याप्त है फिर क्या कारण है? आप परिश्रम करने से जी चुराते हैं? यदि सच पूछें तो यह स्वर्णिम अवसर है जो आप को प्राप्त हो रहा है। इसे व्यर्थ मत जाने दीजिए, जितना अधिक लाभ उठाया जा सकता है, उठाने का प्रयत्न कीजिए।

व्याकरण तो कठिन होता ही है। संस्कृत व्याकरण ही कठिन है, ऐसी बात नहीं है। किसी भी भाषा का व्याकरण पढ़ना चाहेंगे तो सभी में कठिनाई का सामना करना ही पड़ेगा। व्याकरण वह विद्या है, जिससे भाषा के शब्दों उनके रूपों और प्रयोगों आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। व्याकरण जाने बिना भाषा पर अधिकार नहीं हो सकता। आप जैनागम पढ़ सकते हैं, किन्तु व्याकरण के बिना भाषा बोध से वंचित ही रह जायेंगे। यदि व्याकरण पर आप का अधिकार हो जाता है, तो प्राकृत भाषा पढ़नी भी आप के लिए सर्वथा सुगम हो जायेगी। अतः फिर निवेदन करता हूँ कि आप व्याकरण को

दुरूहता एवं कठिनता से मत घबराइए। व्याकरण मन लगाकर पढ़िए, और इसके लिए दिन रात एक कर दीजिए। भाषा सम्बन्धी दोष एवं परिष्कृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्याकरण से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है।

आप श्री तो स्वयं हमारे मार्गदर्शक हैं, हमने आप से कुछ सीखना है, आप को कुछ सिखला सकें ऐसी हमारी क्षमता कहाँ ? तथापि जैसे पुत्र को पिता से कुछ कहने सुनने का अधिकार होता है, उसी नाते से आज मैं कुछ निवेदन कर रहा हूँ। महाराज ! आप बहुत बड़े भाग्यशाली सन्त हैं। आप को बहुत सुन्दर अवसर मिला है। मेरी विनीत प्रार्थना है कि इससे लाभ उठाएं, इसे व्यर्थ मत जाने दीजिए। शास्त्रों के मार्मिक विद्वान् बनकर अध्यात्म जगत् की सेवा करें और अपने पूज्य गुरुदेव के नाम को उज्ज्वल करें। यदि आप जैसे प्रतिभा सम्पन्न मुनिवर भी उदासीन हो जावें तो मोह माया के जाल में फंसे हम जैसे गृहस्थों की क्या दशा होगी ? जहाँ तक पैसे का सम्बन्ध है, इसके वास्ते आप को चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं। हम लोग व्यापारी हैं व्यापार में हजारों आते हैं और हजारों जाते हैं। आप कहाँ तक हमारी चिन्ता करते रहेंगे। आप जैसे मुनिराजों के शिक्षण में हमारे धन का सदुपयोग हो, तो इससे बढ़कर सौभाग्य की क्या बात हो सकती है ? यदि आप मेरे हृदय से पूछते हैं तो महाराज ! मैं सत्य कहता हूँ, कि जो पैसा अध्यापन आदि सत्कार्यों में व्यय होता है, मैं उसी को सार्थक एवं सफल मानता हूँ। शेष तो सब यहीं रह जावेगा, कानी कौड़ी भी साथ नहीं जा सकेगी। साथ यदि जावेगा तो धर्म-कार्यों में लगाया धन ही साथ जावेगा। इसके अतिरिक्त आप दस पंक्तियों की बात करते हैं, इस सम्बन्ध में आप श्री के चरणों में मेरी यह हार्दिक अभ्यर्थना है कि भले ही आप प्रतिदिन एक पंक्ति याद करें, तथापि चिन्ता वाली कोई बात नहीं है। आप श्री पंक्तियों की अधिकता या न्यूनता का मन पर जरा भी बोझ मत रखें। यदि आप ने एक पंक्ति भी अच्छी तरह समझ ली, तो मेरा पैसा सफल हो गया, उसका मुझे हक मिल गया। आप के विद्याभ्यास में हमारा द्रव्य कभी निष्फल नहीं जा सकता। आप विश्वस्त रहें, जीवन भर भी यदि आप पढ़ते रहें, तो भी अर्थ संकट कभी नहीं आएगा। महामहिम गुरु महाराज की पूर्ण कृपा है, आप का यह सेवक सदा सेवा करता रहेगा, किंतु सानुरोध प्रार्थना है कि संस्कृत शिक्षण से अपने मन को कभी उदासीन न होने दें। पूर्ण उत्साह उल्लास के साथ इसे चालू रखते हुए अध्ययन करते रहें।

सुयोग्य विद्वान के लिए विज्ञापन दे दिया। फलत अनेक विद्वानों के निवेदन पत्र आये। वाराणसी विश्वविद्यालय में पंडित राजधारीजी त्रिपाठी को बुला लिया गया। इन्ही दिनों गुरुभक्त, श्री रामजी भाई ने दरभंगा मे प०परमेश्वरदत्त जी झा को बुलाया था, परन्तु झा जी अपने अध्यापन कार्य मे चरितनायक को सतुष्ट न कर सके। अत इनको वापिस लौटा दिया गया। तदनन्तर चरितनायक का शिक्षणकार्य पंडित त्रिपाठीजी को सौप दिया गया। त्रिपाठी जी ने चरितनायक को "अनुगुत्तर-पदं" सूत्र से अध्यापन कराना आरंभ कर दिया। इसके अलावा उन्होंने साहित्यिक ग्रंथो का शिक्षण भी चालू कर दिया। त्रिपाठीजी बड़े सुयोग्य, शास्त्रो के मर्मज्ञ एवं अनुभवी विद्वान थे। चरितनायक के प्रश्न करते ही झट उसका समाधान शान्ति से कर देते। फलत इनके अध्यापन से चरितनायक को पूर्णरूपेण सन्तोष था। अध्यापकजी छात्र से प्रसन्न थे।

अध्यापक अपने विषय का मार्मिक विद्वान् हो अध्यापन कला मे निष्णात हो, हाजिरजवाब हो, तथा विद्यार्थी मेधावी, परिश्रमी और विनीत हो तो सोने में सुहागे वाली बात बन जाती है। इस प्रकार के सगम से अध्यापक और छात्र दोनो को सतोष रहता है। शुभ कर्मों का उदय समझिए कि चरितनायक के जीवन मे यह सतोष साकार-रूप ले रहा था। पण्डित राजधारीजी त्रिपाठी जहाँ परिश्रमी और शास्त्रों के पारगामी विद्वान् थे, वहाँ चरितनायक भी एक प्रतिभाशाली एव मेहनती छात्र थे। परिणाम स्वरूप विद्याका आदान-प्रदान खूब जी भर कर हो रहा था।

चरितनायक ने त्रिपाठीजी से व्याकरण शास्त्र मे १—सिद्धान्त कौमुदी, २—जैनेन्द्र व्याकरण, ३—शाकटायन व्याकरण, ४—प्राकृत व्याकरण ये व्याकरण पढे। साहित्य शास्त्र मे—१ साहित्य दर्पण, २—काव्यानुशासन, ३—नैषधीयचरित्र आदि साहित्य ग्रन्थों का शिक्षण प्राप्त किया। स्मृतियो मे अठारह स्मृतियाँ। न्यायशास्त्र मे—न्याय-सिद्धान्त मुक्तावली का परिशीलन किया। चरितनायक ने जहाँ व्याकरण, साहित्य, स्मृति तथा न्याय ग्रन्थो का बोध प्राप्त किया वहाँ इन्होंने छदशास्त्रो मे पिंगल छद शास्त्र का भी अध्ययन किया। इस तरह जैन—जैनेतर सिद्धान्तों का परिज्ञान प्राप्त करके चरितनायक एक अच्छे खासे विद्वान् हो गये। जैनागमो का ज्ञान तो इन्होंने परम श्रद्धेय स्वनामधन्य गुरुदेव श्री रत्नऋषिजी महाराज से तथा अहमदनगर के शास्त्रज्ञ श्रावक श्री किसनदासजी मुथा से औपपातिक सूत्र तथा प्रश्न

व्याकरण सूत्र महामान्य वन्दनीय पण्डित रत्न अमीऋषिजी महाराज से निशीथ सूत्र सटीक पढ़ लिया है। इस तरह शास्त्रों का अध्ययन संस्कृत साहित्य तथा जैनेतर साहित्य के परिज्ञान की न्यूनता इन्होंने त्रिपाठीजी से विशेष अंश में पूर्ण कर ली। इसके अतिरिक्त चरितनायक ने संस्कृत, प्राकृत, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, हिंदी, उर्दू, फारसी, और अंग्रेजी आदि नौ नित भाषाओं का अध्ययन किया।

प्रायः देखा गया है कि एक भाषा पर भी अधिकार प्राप्त करना बहुत कठिन कार्य होता है। हिन्दी की एम० ए० करनेवालों को कई बार एक पत्र लिखना भी मुश्किल हो जाती हैं। किन्तु हमारे चरितनायक का बुद्धि-वैभव इतना विलक्षण था, कि कुछ कहते नहीं बनता। एक, दो या तीन नहीं प्रत्युत लगातार ९ भाषाओं पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। गत वर्ष वि० स० २०२१ जम्मू के चातुर्मास में इनके भाषा सम्बन्धी परिज्ञान मैंने स्वयं अनुभव किया था। अब आप वृद्ध हैं, दुर्बलता का होना स्वाभाविक है, तथापि जिस भाषा में बोलना आरम्भ कर देते हैं, ऐसा लगता है मानो वह भाषा आपकी मातृभाषा हो और भाषा शास्त्र की दृष्टि से इतना शुद्ध बोलते हैं कि ढूंढने पर भी उसमें कोई त्रुटि नहीं मिलती। क्या जैन क्या अजैन सभी आपकी भाषा सम्बन्धी विद्वत्ता को देखकर आश्चर्य चकित रह जाते हैं।

मधुर गायक के रूप में

[illegible] स्त्रियों की ६४ और पुरुषों की ७२ कलाएं वर्णित की है। [illegible] गायन [illegible] है। इसका [illegible] है [illegible] किस समय कौनसा स्वर [illegible] ? अमुक समय अमुक स्वर के आलापने से क्या प्रभाव पड़ता है ? [illegible] उसे गायन कला कहते हैं। [illegible] मनुष्य का [illegible] नहीं हो पाता और यदि किसी का यह [illegible] निर्माण होना बड़ा मुश्किल होता है। [illegible] हो और गुणवान [illegible] उदार हो, तब कहीं [illegible] हो सकती है। गायन कला को [illegible] हो जाता है, उस समय तो यह [illegible] है।

[illegible] चरितनायक पण्डित रत्न श्री आनन्द ऋषि जी [illegible] था। [illegible] यहाँ [illegible] दिखाई देते हैं। यहाँ [illegible]

एक मधुर गायक के रूप में भी दृष्टिगोचर होते हैं। जन्म-जन्मान्तर के शुभ-कर्म के उदय से इनको आवाज की बुलन्दी और स्वर का माधुर्य मिला हुआ था, किन्तु छन्दशास्त्र के अध्ययन से तो इनकी यह गायन कला बहुत ही निखर उठी थी। उसमें अद्भुत चमत्कार पैदा हो गया था। चरितनायक जब तन्मयता के साथ मस्ती में जैनागमों तथा अन्य शास्त्रों की गाथाएँ एवं श्लोक उच्चारण किया करते या कोई मधुर गीत बोलते तो श्रोतागण चित्रलिखित से रह जाते। इनकी स्वर लहरियों में खो जाते।

आज चरितनायक की आयु लगभग ६६ वर्ष की है। रोगों तथा वार्धक्य ने शरीर को काफी दुर्बल बना दिया है। शारीरिक दुर्बलता की छाया में आवाज का दुर्बल हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। तथापि जिन लोगों ने चरितनायक जैन धर्म दिवाकर, आचार्य सम्राट, पूज्यश्री आनन्द ऋषिजी म० के मंगलमय प्रवचन सुने हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं, कि आज वृद्धावस्था से आक्रान्त होने पर भी चरितनायक श्री की आवाज कितनी बुलन्द है और स्वर कितना मधुर है? आज भी इनके गायन में वह निराला आकर्षण है, कि बरबस श्रोताजनों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। जब वृद्धावस्था में भी स्वर में इतना विलक्षण आकर्षण है, तो युवावस्था में यह कितना बढ़ा चढ़ा होगा? यह सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है।

चरितनायक के सामने कोई भी संगीत आ जाए, वे उसकी ध्वनि तत्काल निकाल देते हैं। गतवर्ष वि० सं० २०२५ के जम्मू चातुर्मास का मुझे अच्छी तरह से अनुभव है कि मैं यदि किसी भजन सवैये आदि की ध्वनि पूछता, तो चरितनायकजी झट उसे गुनगुनाने लगते और उसे अपने कण्ठ में बसा लेते। किसी भजन का स्वर निकालना, इनके बाएँ हाथ का खेल है। जिस भजन को कभी देखा नहीं, सुना नहीं, उसका स्वर निकालना कोई साधारण बात नहीं है। ऐसा कार्य गायन कला का मार्मिक विद्वान् व्यक्ति ही कर सकता है। अन्य व्यक्ति के वश की बात नहीं हो सकती।

प्रवचन क्षेत्र में प्रथम चरण

चरितनायक का वि० सं० १९७६ का चातुर्मास अपने परम पूज्य गुरुदेव श्रद्धेय श्री रत्नऋषि जी म० के साथ आलकुटी (महाराष्ट्र) नामक गाँव में था। चातुर्मास काल में चरितनायक के पूज्य गुरुदेवजी ने अपने सारगर्भित शास्त्रीय प्रवचनों द्वारा वह आध्यात्मिक चहल-पहल पैदा कर दी, कि कुछ कहते नहीं बनता। क्या पुरुष क्या नारी? क्या बाल क्या युवक?

सभी अपने को धन्य मान रहे थे। महाराज श्री के उपदेशों से प्रभावित होकर वहाँ के स्थानीय श्री संघ ने एक पुस्तकालय की स्थापना की थी। दान, शील, तप और भावना रूप चतुर्विध धर्म की जो आराधना हुई, उसका तो कहना ही क्या है! इस तरह आनन्दमंगल के साथ चातुर्मास व्यतीत करने के अनंतर चरितनायक ने अपने पूज्य गुरुदेव के साथ आलकुटी से विहार कर दिया। वडनेरा, दरियाबाई पाडली, वडगांव, वाल्हूर, जामगांव और हिंगणगांव होते हुए आप अहमदनगर पधारे। महाराज श्री के आने से पूर्व अहमदनगर में धर्मप्राण महासती श्री रामकुंवरजी महाराज अपनी शिष्य मंडली सहित विराजमान थीं। सम्माननीय महासती मण्डल तथा स्थानीय श्रावक संघ ने महाराज श्री का भव्य स्वागत किया। वहाँ पधारने पर महाराजश्री श्रीमती रम्भाबाई पितलिया के स्थानक में विराजमान हो गए।

अहमदनगर महाराष्ट्र प्रान्त का केन्द्र स्थान माना जाता है। जनसंख्या तथा व्यापार आदि की दृष्टि से अपने प्रान्त में इसका प्रमुख स्थान है। यहाँ जैनों की अच्छी खासी आबादी है। शास्त्रज्ञ श्री किसनदासजी मुथा, चन्दनमलजी पीतलिया, श्री हणोतमलजी कोठारी आदि मुख्य श्रावक थे, उनकी जैनागमों के पठन-पाठन में बड़ी अच्छी गति थी। अपने प्रान्त में ये शास्त्रज्ञ श्रावक माने जाते थे। इनके सामने प्रत्येक साधु प्रवचन नहीं कर सकता था। कोई शास्त्री या मार्मिक विद्वान् मुनिवर ही इनके समक्ष प्रवचन दे पाता था। प्रान्तीय साधु-साध्वियों में इन श्रावकों की विशेष प्रतिष्ठा थी इनकी सब धाक मानते थे।

चरितनायक के पूज्य गुरुदेव श्री रत्न ऋषिजी म० ने अहमदनगर पधारने पर विचार किया कि आनन्द ऋषि संस्कृत ग्रन्थों तथा जैनागमों के अच्छे ज्ञाता हो गए हैं, इसलिए उनसे अब व्याख्यान देने का प्रारम्भ करवाना चाहिए। अभ्यास से ही व्याख्यान देने की कला सम्प्राप्त हो सकती है। मनुष्य कितना ही योग्य क्यों न हो यदि वह अपनी योग्यता का उपयोग नहीं करता, तो उसका विकास नहीं हो पाता। फिर व्याख्यान तो ऐसी कला है, इसे ज्यों ज्यों करते जाते हैं, त्यों त्यों वह निखरती और चमकती है, वह रसीली बनती है। इसके अलावा व्याख्यान में यदि कोई न्यूनता होगी, वह भी धीरे धीरे अभ्यास से दूर हो जाएगी। अतः मुनिश्री का प्रवचन करवाना ही समुचित है। यह विचारणा करने के पश्चात् महाराज श्री ने अपने प्रिय विद्वान् शिष्य चरितनायक मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० को फरमाया कि

आनन्द ! अहमदनगर में व्याख्यान का दायित्व तुम्हारे ऊपर रहेगा । अत तुमने
इसके लिए तैयार रहना है ।

चरितनायक का समय अधिकतर जैन शास्त्रो जैनेतर ग्रन्थो के अध्ययन
में ही व्यतीत होता था, इस कारण व्याख्यान की ओर इनका कोई लगाव नही
था । व्याख्यान करना भी एक कला है, प्रत्येक व्यक्ति इसमें पूर्णता प्राप्त नहीं
कर सकता । विद्वान् तो बहुत मिल जायेगे । परन्तु सफल व्याख्याता बहुत कम
मिलते हैं । विद्वान् होना कुछ और बात है कि किन्तु वक्ता बनना बडा मुश्कि-
कल कार्य होता है । देखा गया है, कुछ लोग विद्वान् तो होते है, किन्तु व्या-
ख्याता नहीं बन पाते । कुछ वक्तृत्व शक्ति के धनी दिखाई देते है, किन्तु
उन्हें वैदुष्य सम्प्राप्त नही होता । कुछ विद्वान् भी होते हैं और व्याख्याता
भी । एव कतिपय मनुष्य न विद्वान् बन पाते है न उनको वक्तृत्व
कला भी मिलती है । वैदुष्य और वक्तृत्व शक्ति दोनो का सगम होना
साधारण बात नही है । ऐसा अवसर किसी सौभाग्यशाली व्यक्ति को ही
प्राप्त होता है । हमारे चरितनायक शास्त्रो के मार्मिक विद्वान् तो थे, किन्तु
व्याख्याता हैं या नही, यह अभी किसी को पता नही था । चरितनायक के गुरु-
देव इनकी वक्तृत्व शक्ति कितनी है ? यह जानना चाहते थे । इसी उद्देश्य से
उन्होने चरितनायक को प्रवचन देने का आदेश दिया था । प्रवचन भी किसी
जन साधारण की सभा मे नही होना था । शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् श्रावक
वहीं बैठे थे जिन्होने बडे-बडे प्रसिद्ध प्रवचनकारो के प्रवचन सुन रखे थे ऐसी
पढी लिखी सभा में प्रवचन देना था । चरितनायक के परिश्रम और विद्वत्ता की
परीक्षा की घडी थी ।

मनोविज्ञान का नियम है कि यदि मन मे साहस हो, निर्भीकता हो,
तथा साथ मे सर्वतोमुखी प्रतिभा का सुयोग हो, तो साधारण पढा लिखा व्यक्ति
भी मैदान जीत लेता है । उसके पास जो स्वल्प वक्तृत्व शक्ति होती है, उसे भी
वह ऐसी पद्धति से प्रस्तुत करता है कि श्रोतागणो को वह व्याख्यान वाचस्पति
के रूप मे दिखाई देता है । इसके विपरीत यदि व्यक्ति अपने और दूसरा के
सिद्धान्तो से परिचित हो, उसका प्रकाण्ड विद्वान् हो, बहुत गहराई मे उतरने
वाला हो, किन्तु यदि उसमे साहस नही है, आत्मबल से वह शून्य है, साधुरात्म-
शक्ति नही है, तो वह प्रवचन-क्षेत्र मे पिछड जाता है । विशाल जन-समूह के सामने
अपनी बात भी अच्छी तरह प्रस्तुत नही कर सकता । जहां आत्मबल साहस
और शास्त्रो का पाण्डित्य, दोनो का सगम हो ...

[illegible]

[illegible]

[illegible] ऋषिजी म० का [illegible]

की।

गुरुदेव ! [illegible] ऋषिजी महाराज जहाँ एक विद्वान् एवं मधुर गायक मुनिवर हैं, वहीं वे बहुत सुलझे हुए महान् प्रामाणिक व्याख्याता भी हैं। आज [illegible] आगम सुना है। [illegible] पद्धति [illegible] कह गये हैं। [illegible] किया है और [illegible] यह स्वीकार उसमें पूर्ण [illegible] सफलता भी प्राप्त की है। [illegible] अन्तरात्मा यह स्वीकार करती है, कि मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० यदि इसी भाँति परिश्रम करते रहे तो ये बहुत उन्नति करेंगे। दिवाकर की तरह अध्यात्म जगत् को प्रकाशमान बनाकर आपके नाम को चमकायेंगे। हम सब इस योग्य और होनहार शिष्य के लिए आपको हृदय से एक बार फिर बधाई देते हैं।

चरितनायक श्री को जिस श्रावक ने श्री औपपातिक सूत्र का अध्ययन कराया था, वे श्री चिमनदासजी मुथा अपनी हार्दिक प्रसन्नता अभिव्यक्त करते हुए गुरुचरणों में निवेदन करने लगे—

वन्दनीय गुरुमहाराज ! यह मैं मानता हूँ कि मुनि श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को औपपातिक सूत्र का वाचन मैंने ही कराया है, किन्तु जितनी विशद, सरल और प्रामाणिक व्याख्या आज इन्होंने की है उसका मुझे स्वप्न में भी आभास नहीं था। श्री ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र में वर्णित एक सेठजी की पुत्रवधू ने पाँच धान्यों का विकास करके उनके जैसे अनेक कोठे भर दिये थे, वैसे ही इन्होंने जो कुछ मुझसे पढ़ा था, मेरी स्वल्प सी सेवा स्वीकार की थी, उसका इतना अधिक विकास कर लिया कि उसे मेरी रसना अभिव्यक्त नहीं कर सकती। गुरुदेव ! जहाँ इनका शास्त्रीय ज्ञान विलक्षण है। वहीं उसका

विश्लेषण करने की पद्धति भी बड़ी अनूठी है। अधिक क्या निवेदन करूँ? बड़े-बड़े प्रसिद्ध व्याख्याता मुनिराजों के व्याख्यान सुनने का मुझे अवसर मिला है। परन्तु जितना आनन्द आज अनुभव हुआ, इतना पहले कभी नहीं हुआ। आपने इनका नाम जो आनन्द रखा है, यह ठीक ही है। सचमुच ही ये आनन्द स्वरूप हैं, मैं भी हृदय से मुबारिकबाद (धन्यवाद) देता हूँ।

अहमदनगर के जाग्रत श्रावकों की बातें सुनकर चरितनायक के गुरुदेव को हार्दिक सन्तोष हुआ और इन्होंने प्रसन्नतापूर्वक हृदय से श्रावकों को सम्बोधित करते हुए फरमाया—यह सब कुछ पूज्य गुरुदेव श्री प्रातः स्मरणीय, कवि कुल-भूषण, शास्त्रविशारद, पूज्यपाद श्री तिलोक ऋषिजी महाराज का ही कृपा-फल है। उन्हीं की कृपा दृष्टि से इस शरीर का जीवन उन्नत हो रहा है। आप लोग मेरे तथा मुनि श्री आनन्द ऋषिजी के लिए इतनी भक्ति-प्रदर्शित कर रहे हैं। यह आपकी गुणग्राहकता है और साधु समाज के भविष्य को समुज्ज्वल देखने की बुद्धि युक्त सद्भावना है। मुनि श्री जी के प्रति जो आपने सद्भावना अभिव्यक्त की है। वह एक दिन सफल हो, यही हमारी हार्दिक कामना है।

माली जैसे अपने पल्लवित, पुष्पित, उद्यान को देखकर पुलकित हो उठता है, उसी भाँति चरितनायक के पूज्य गुरुदेव प्रातः स्मरणीय, शास्त्र-विशारद श्री रत्न ऋषिजी म० अपने प्रिय शिष्य मुनिश्री आनन्द ऋषिजी म० के प्रवचन-गत समुत्कर्ष, विद्या-वैभव, शास्त्रीय, पाण्डित्य को देखकर आनन्द विभोर हो उठे। चरितनायक जब व्याख्यान करने के अनन्तर गुरुचरणों में आये और इन्होंने अपना मस्तक चरण-कमलों में रखा तो गुरुदेव ने स्नेह पूर्ण भाषा में चरितनायक को व्याख्यान सम्बन्धी साफल्य के लिए धन्यवाद दिया और पीठ थपथपाकर इनके समुज्ज्वल भविष्य की हार्दिक भावना अभिव्यक्त की। चरितनायक गुरुदेव का वरद हस्त को अपने ऊपर पाकर रोमाञ्चित हो गए और इन्होंने कहा गुरुदेव! यह सब आप गुरुदेव का पुण्य प्रताप है। पतंग जैसे बिना डोरी दिये आकाश में उड़ान नहीं लेती, वही स्थिति मेरी है। आपश्री की कृपा की डोरी से ही यह जीवन-पतंग उन्नति के आकाश में विचरण कर सका है और भविष्य में कर सकेगा।

स्वाध्याय के पथ पर

जैन साहित्य का परिशीलन करने से पता चलता है, कि अध्यात्म जगत् में स्वाध्याय का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वाध्याय का अर्थ है १. स्वयं

किया गया है। बाह्य तप की तरह अभ्यन्तर तप के भी ६ भेद होते हैं। उनका विवरण संक्षिप्त में इस प्रकार है -

१ प्रायश्चित्त*— प्राय पाप और चित्त शुद्धि का नाम है। किसी भूल के हो जाने पर आत्मशुद्धि के लिए किया गया अनुष्ठान पापों की शुद्धि, आलोचना, प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त के अवान्तर भेद माने जाते हैं।

२ विनय—अभिमान का परित्याग करना। गुरुजनो वृद्धजनो तथा गुणवृद्धो का सम्मान करना, इनके आने पर खड़ा होना, हाथ जोडना, उन्हे आसन देना, उनकी सेवा शुश्रूषा करना उनके आदेश को आचरण मे लाना, जैनधर्म मे विनय का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैनाचार्यों ने 'धम्मस्स विणओ मूलं" यह कहकर विनय को धर्म का मूल स्वीकार किया है।

३. वैयावृत्य—निष्काम भावना से गुरुजनो, वृद्धजनो तथा नवदीक्षित तपस्वी आदि साधको की सेवा करना, इनको भोजन देना, वस्त्र पात्र, तथा पाट देना और इनके पॉव आदि दबाना, संयम की आराधना मे यथाशक्ति सहयोगी बनना वैयावृत्य कहा जाता है।

४—स्वाध्याय—शास्त्रो का पठन-पाठन करना। १ —वाचना शिष्य आदि को पढ़ाना, २ —पृच्छना—शका या जिज्ञासा होने पर तन्निवृत्यर्थ प्रश्न पूछना। ३. परिवर्त्तना —पढ़े हुए को दुहराना, पुनरावृत्ति करना। ४ अनुप्रेक्षा चिन्तन मनन करना। और धर्मकथा —धर्म का उपदेश देना, ये पाच स्वाध्याय के अवान्तर भेद माने गये हैं।

५—ध्यान एक लक्ष्य पर चित्त का एकाग्र बनाना, एक ही प्रकार के विचारों का निरंतर चिन्तन करते रहना। इसके आर्त, रौद्र, धर्म शुक्ल ये चार भेद होते हैं। दु ख प्रधान एकाग्रता आर्तध्यान, हिंसा प्रधान एकाग्रता रौद्रध्यान, धर्मचिन्तन-प्रधान एकाग्रता धर्मध्यान और आत्मचिन्तन प्रधान एकाग्रता को शुक्लध्यान कहा गया है।

६ व्युत्सर्ग ममता का त्याग करना। इसके द्रव्य और भाव दो भेद होते हैं। आहार, शरीर और उपकरण आदि के ममत्व के परित्याग को द्रव्य व्युत्सर्ग और क्रोध, अहभाव, कपट तथा लोभ को छोड़ना भाव व्युत्सर्ग कहा जाता है।

इच्छाका निरोध ही तप है-यदि संक्षेपमे तप का अर्थ करें तो इच्छाओं, कामनाओं, और वासनाओं का निरोध करना ही तप है। जीवनशास्त्र का

* प्राय पाप विजानीयात्, चित्त तस्य विशोधनम्—

दों की नाम निर्देशक अर्थ विचारणा आगे की जा रही है बाह्य तप के ६
भेद इस प्रकार है

१. अनशन –आहार परित्याग कर देना। इसे उपवास भी कहते हैं। उप-समीप, वास-निवास करना, क्षमा-निर्लोभता, सरलता आदि आत्मिक गुणों के समीप निवास करने का नाम उपवास है।

अनशन दो प्रकार का होता है १ इत्वर २ यावत्कथित। वर्तमान शासन में एक उपवास से लेकर ६ मास का तप इत्वर अनशन और भक्त-परिज्ञा, इगित मरण और पादपोपगमन मरण रूप अनशन यावत्कथित अनशन कहलाता है।

२ ऊनोदरी –भूख से कम खाना, अपने पेट को हल्का रखना। पुरुष के ३२, नारी के २८ और नपुंसक के २४ ग्रास बतलाये गये हैं। इनमें से यथा-शक्ति कम ग्रास सेवन करना ऊनोदरी तप कहा गया है। इसके द्रव्य और भाव ये दो भेद होते हैं। आहार, उपकरण, आदि में कमी करना, द्रव्य ऊनो-दरी और क्रोध, मान, माया आदि जीवन दोषों को कम करते जाना भाव ऊनोदरी तप माना गया है।

३ भिक्षाचरी—भिक्षा द्वारा भोजन ग्रहण करना। इसका सम्बन्ध विशेषरूपेण साधु से होता है। यह अहभाव पर विजय प्राप्त करने का एक आध्यात्मिक अभ्यास है, अनुष्ठान है।

४ रस परित्याग—रसनेन्द्रिय का निग्रह करना, घी, दूध और दही आदि पदार्थों का यथाशक्ति परित्याग करना। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस तप को आस्वाद नामक एक महाव्रत के रूप में स्वीकार किया था।

५. कायक्लेश—शरीर को साधना—गरमी, सरदी आदि को अपने शरीर पर सहन करना। इसमें पद्मासन, वीरासन, आदि आसनों का अभ्यास करना। शरीर के शृंगार का परित्याग करना, केशलुञ्चन करना, धूप और शीत की आतापना लेना, ये सभी बातें अन्तर्गत हो जाती हैं।

६. प्रतिसंलीनता—इन्द्रियों को विषयों से मोड़ना, शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श में आसक्त न होना, इनका निग्रह करना, क्रोध, मान, माया, लोभ के विकारों को उभरने न देना। मन-वाणी तथा शरीर के अप्रशस्त व्यापार को रोकना, एवं निर्विकार और एकान्त स्थान में निवास करना।

ऊपर की पंक्तियों में बाह्यतप के ६ भेदों का संक्षेप में अर्थ निर्देश

किया गया है। बाह्य तप की तरह अभ्यन्तर तप के भी ६ भेद होते हैं। उनका विवरण संक्षिप्त में इस प्रकार है -

१ प्रायश्चित्त*— प्राय पाप और चित्त शुद्धि का नाम है। किसी भूल के हो जाने पर आत्मशुद्धि के लिए किया गया अनुष्ठान पापों की शुद्धि, आलोचना, प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त के अवान्तर भेद माने जाते हैं।

२ विनय—अभिमान का परित्याग करना। गुरुजनों वृद्धजनो तथा गुणवृद्धों का सम्मान करना, इनके आने पर खड़ा होना, हाथ जोडना, उन्हें आसन देना, उनकी सेवा शुश्रूषा करना उनके आदेश को आचरण मे लाना, जैनधर्म मे विनय का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैनाचार्यों ने 'धम्मस्स विणओ मूलं" यह कहकर विनय को धर्म का मूल स्वीकार किया है।

३. वैयावृत्य—निष्काम भावना से गुरुजनों, वृद्धजनों तथा नवदीक्षित तपस्वी आदि साधकों की सेवा करना, इनको भोजन देना, वस्त्र पात्र, तथा पाट देना और इनके पाँव आदि दबाना, संयम की आराधना में यथाशक्ति सहयोगी बनना वैयावृत्य कहा जाता है।

४—स्वाध्याय—शास्त्रों का पठन-पाठन करना। १—वाचना शिष्य आदि को पढ़ाना, २—पृच्छना—शंका या जिज्ञासा होने पर तन्निवृत्यर्थ प्रश्न पूछना। ३ परिवर्तना —पढ़े हुए को दुहराना, पुनरावृत्ति करना। ४ अनुप्रेक्षा चिन्तन मनन करना। और धर्मकथा —धर्म का उपदेश देना, ये पाच स्वाध्याय के अवान्तर भेद माने गये हैं।

५—ध्यान एक लक्ष्य पर चित्त का एकाग्र बनाना, एक ही प्रकार के विचारो का निरंतर चिन्तन करते रहना। इसके आर्त्त, रौद्र, धर्म शुक्ल ये चार भेद होते हैं। दुःख प्रधान एकाग्रता आर्तध्यान, हिंसा प्रधान एकाग्रता रौद्रध्यान, धर्मचिन्तन-प्रधान एकाग्रता धर्मध्यान और आत्मचिन्तन प्रधान एकाग्रता को शुक्लध्यान कहा गया है।

६ व्युत्सर्ग ममता का त्याग करना। इसके द्रव्य और भाव दो भेद होते हैं। आहार, शरीर और उपकरण आदि के ममत्व के परित्याग को द्रव्य व्युत्सर्ग और क्रोध, अहंभाव, कपट तथा लोभ को छोडना भाव व्युत्सर्ग कहा जाता है।

इच्छाका निरोध ही तप है—यदि संक्षेपमे तप का अर्थ करें तो इच्छाओ, कामनाओं, और वासनाओ का निरोध करना ही तप है। जीवनशास्त्र का

* प्राय. पापं विजानीयात्, चित्त तस्य विशोधनम्—

यदि गम्भीरता के साथ अध्ययन करते हैं। तो इस सत्य से कभी इन्कार नहीं किया जा सकता कि इच्छा, कामना एवं वासना ही मनुष्य जीवन की एक बहुत बड़ी दुर्बलता है। इसी दुर्बलता के कारण अनन्त शक्तियों का स्रोत होने पर भी यह मनुष्य अपने को दीन, हीन एवं दरिद्र अनुभव कर रहा है। हीरों और लालों की खान पर बैठा वाला व्यक्ति भी यदि अपने को अकिञ्चन मान रहा हो तो इससे बढ़कर जीवन की विडम्बना और क्या हो सकती है ? परन्तु इस विडम्बना का मूल कारण कोई दूसरा नहीं है। मनुष्य स्वय है, उसकी इच्छा है, आसक्ति है और कामनाओं की दासता है। उर्दू भाषा का एक अनुभवी कवि इस सत्य को कितनी सुन्दरता से अभिव्यक्त कर रहा है -

हम खुदा थे गर न होता, दिल में कोई मुद्दआ।
आरजुओं ने हमारी, हमको बन्दा कर दिया ॥१॥

तप का महादेव मनुष्य की इसी इच्छा-डाकिनी पर नियन्त्रण करता है। मनुष्य हृदय मे उठ रहे उसके झंझावातों को सदा के लिए शान्त करने मे सहायता देता है। परन्तु तप का आराधन करना साधारण बात नहीं है। तप जितना महान् है, इसका आचरण उतना ही कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति इसकी आराधना नहीं कर सकता। जन्म-जन्मान्तर के शुभ संस्कारों वाला कोई जितेन्द्रिय और मुमुक्षु व्यक्ति ही इसकी उपासना कर सकता है। तप का पथ बडा पथरीला एवं कटीला है, धन्य है, जो इस दुर्गम पथ पर गतिशील होकर परम साध्य मोक्ष-नगर को सम्प्राप्त करते हैं।

हमारे महामान्य चरितनायक, पण्डित रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० तप के उक्त महत्त्व को खूब समझते थे और यथा शक्य उसे जीवनसात् करने का प्रयत्न करते रहते थे। इन्होंने छोटी अवस्था मे ही तप का आराधन आरम्भ कर दिया था। कहा जा चुका है कि आप श्री १३ वर्ष की किशोरावस्था मे ससार की मोह-ममता छोडकर दीक्षित हो गए थे। आपने दीक्षित होने के थोड़े दिन बाद अध्ययन-समय मे भी अष्टमी और पक्खी को एक आयबिल करना आरम्भ कर दिया था। आयबिल किसे कहते हैं ? समझिए आयबिल का अर्थ—

आयबिल प्राकृत भाषा का शब्द है। सस्कृत भाषा मे इसके १ आचाम्ल, २. आचामाम्ल और ३. आयामाम्ल ये तीन रूप होते हैं। आयबिल मे दिनमे एक बार रूक्ष और निरस भोजन करना होता है, दूध, दही, तेल

गुड़, शक्कर, मिष्ठान्न और नमक आदि किसी प्रकार का स्वादिष्ट भोजन इस व्रत मे ग्रहण नहीं किया जाता। चावल, उड़द या सत्तू आदि पदार्थों में से किसी एक पदार्थ का इसमे सेवन करना होता है। इस व्रत मे पानी मे भिगोकर रुखी रोटी खाने की परम्परा पाई जाती है। आजकल भुने चने खाकर प्रासुक पानी पीकर आयबिल व्रत की परम्परा प्रचलित है। इस व्रत का प्रधान उद्देश्य रस-लोलुपता को समाप्त करना होता है। वस्तुत रसनेन्द्रिय का सयम बडा कठोर सयम माना गया है। खाने के लिए बैठ जाना, तथापि अपनी मन पसन्द वस्तु का ग्रहण न करना कोई साधारण बात नही है।

आयंबिल या उपवास

कहा जा चुका है कि हमारे श्रद्धास्पद, पण्डित रत्न, मुनि श्री आनद ऋषिजी महाराज अष्टमी पक्खी के रोज आयबिल व्रत किया करते थे। किन्तु यह कोई प्रतिबन्ध नहीं था कि आयबिल ही करना है। अपनी इच्छानुसार कभी वे आयबिल और कभी उपवास किया करते थे। चाहे आयबिल हो चाहे उपवास। परन्तु अष्टमी-पक्खी दोनो मे से एक अवश्य कर लिया करते थे। इस व्रत का क्रम (सिलसिला) वर्षों तक चलता रहा। चरितनायक के पूज्य गुरुदेव प्रात स्मरणीय श्रद्धेय श्री रत्न ऋषिजी महाराज जब तक जीवित रहे तब तक उक्त तपस्या की धारा को कभी खण्डित नही होने दिया। निरन्तर अष्टमी-पक्खी आयबिल या उपवास चलता ही रहा। आयबिल और उपवास मे इतना ही अन्तर होता है कि आयबिल मे एक बार रूखी रोटी या चावल आदि ग्रहण किया जाता है, जबकि उपवास म रोटी आदि का सर्वथा निषेध रहता है। प्रासुक पानी का दोनो मे यथेच्छ प्रयोग चलता है। वह भी रात्रि मे नही, केवल दिन मे।

गुरुमहाराज का वियोग

चरितनायक के पूज्य गुरुदेव, परमोपकारी, शास्त्र विशारद, श्रद्धेय श्री रत्नऋषिजी महाराज का अन्तिम चातुर्मास वि० स० १९८३ मे महाराष्ट्र के प्रसिद्ध क्षेत्र भुसावल मे था। चातुर्मास काल बडे आनन्द-मगल के साथ समाप्त होने पर महाराज श्री साकरी, वरणगाव, पिपलगाव और करजी होते हुए बादवड पधारे। यहाँ श्री मानमलजी चांदमलजी कोटेचा के स्थानक मे व्याख्यान फरमाते थे। व्याख्यान में जैन-जैनेतर सभी परम्परा के लोग सम्मिलित होकर लाभ उठाया करते थे। महाराज श्री के अनुग्रह से यहाँ धर्म प्रचार का अच्छा सुयोग रहा। यथा समय यहाँ से विहार कर नाडगांव,

मांगला देवी गाव में

अमरावती से विहार करके महाराज श्री बडनेरा, अजनगांव आदि क्षेत्रों में धर्म-प्रचार करते हुए मांगला देवी गांव" में पधारे। जनता ने हार्दिक स्वागत किया और महाराज श्री के अमृतोपम प्रवचनों का खूब जी भरकर लाभ उठाया। जैन लोगों में धार्मिक श्रद्धान सुस्थापित हुआ, सामायिक प्रतिक्रमण की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। अजैन लोगों को द्यूत (जूआ) मांसाहार, मदिरापान आदि दुर्व्यसनों का परित्याग कराके जीवन में आध्यात्मिकता का वातावरण पैदा कर दिया।

महाराज श्री के हाथों पावों में दर्द

इस तरह मांगला की जनता पर महान् उपकार कर महाराज श्री वहां से विहार करके चिंचली आदि गावों को पावन करते हुए पहूर नामक गाव में पधारे। पहूर में महाराज श्री के आने से पूर्व विराजमान पूज्य श्री जयमलजी म० की सम्प्रदाय के महामान्य मुनिराज श्री गणेशीलालजी म० तथा वक्तावरमलजी म० से सम्मिलन हुआ। दोनों सिंघाड़ों का यह सम्मिलन बड़ा मधुर और स्नेहमय रहा, फलतः प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक आकर्षण का विषय बन गया था। यथा समय पहूर से विहार करके शिन्दी, वाभुलगाव आदि ग्रामों में धर्म की गंगा प्रवाहित करते हुए महाराज श्री रालेगांव पधारे। रालेगाव के श्रावक बड़े श्रद्धालु एवं धर्मप्रिय थे। धर्म ध्यान तथा व्याख्यान श्रवण की ओर इनका बड़ा लगाव था। मगर की बात समझिए कि यहां महाराज श्री के हाथों और पावों में दर्द हो गया, परिणाम स्वरूप उपचारार्थ एक सप्ताह लगाना पड़ा।

ज्वराक्रान्त दशा में

शारीरिक स्वास्थ्य ठीक होने पर श्रद्धेय महाराज श्री जी ने हिंगणघाट की ओर विहार कर दिया। रालेगाव से लगभग एक कोस की दूरी पर पोटी नामक एक गाव आता है, वहां पहुंचने की देर थी कि महाराज श्री अपने को इतना थका अनुभव करने लगे कि इनसे एक कदम उठाना भी मुश्किल हो गया। लाचार हो उन्होंने अपने प्रिय शिष्य हमारे चरित नायक पण्डित रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी से फरमाया, आनन्द ! अब आगे चलने की मेरी शक्ति नहीं है। गुरुदेव श्री की बात सुनकर चरितनायक बोले—गुरु महाराज ! आज आप श्री इसी गाव में विश्राम करें। स्वास्थ्य ठीक होने पर फिर देखेंगे। चरितनायक के निवेदन पर महाराज श्री वहीं विश्राम करने लगे। दोपहर

तक वही रहे। चौथे प्रहर मे महाराज श्री "मोजरी" गाव मे पहुंच गए। रात्रि मे महाराज श्री को बड़े जोर का ज्वर चढ़ गया। महाराज श्री की ज्वराक्रान्त दशा का समाचार पाकर रात्रि मे रालेगांव से श्रीमान् रतनचन्दजी, आदि भावुक श्रावक वहां आ गए। महाराज श्री जी की सोचनीय अवस्था देखकर इन्होंने महाराज श्री के चरणों मे सानुराग निवेदन करते हुए विनति की गुरुदेव ! आप श्री की शारीरिक स्थिति अच्छी नहीं है, ज्वरका अत्यधिक जोर है, यहा औषधि आदि का योग भी कठिन दिखाई देता है, अतः आप श्री आगे जाने का विचार छोड़ दें और वापिस रालेगाव में पधारने की कृपा करें।

श्रद्धालु श्रावकों की विनति सुनकर शान्ति और सहिष्णुता के सागर महाराज श्री फरमाने लगे। जिस समय असाता वेदनीय का उदय होता है उस समय रालेगाव हो या मोजरी गाव हो, इस मे कोई फर्क नहीं पड़ता। कर्म का भुगतान सर्वत्र करना पड़ता है। अत वापिस जाकर क्या करूंगा ? जीर्ण-शीर्ण होना शरीर का स्वभाव है। जीवन-वस्त्र पुराना हो गया है। अब इसको कब तक सभाले रखेंगे ?

जीवन की अंतिम घड़ियाँ

महाराज श्री का सहिष्णुता-पूर्ण उत्तर सुनकर श्रावक निराश हो गये, और अगले दिन महाराज श्री जी ने जब मोजरी से विहार कर दिया तो वे भी मगल पाठ सुनकर वापिस हो गए। मोजरी मे विहार करके दो कोस चलकर महाराज श्री कानगाव मे पहुच गए। वहा पर दो दिन तक विश्राम किया, दो दिन के विश्राम से महाराज श्री अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगे। रात्रि मे आप श्री ने व्याख्यान भी किया १५० के लगभग श्रोताजन थे। कानगाव मे प्रातःकाल विहार करके तीन कोस चलने पर अल्लीपुर के निकट आए तो महाराज श्री का स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया। पैरो ने आगे चलने से इन्कार कर दिया, चलने की शक्ति ही मानो समाप्त हो गई, ज्वर भी अपने यौवन पर आ गया। थकावट तथा ज्वर इन दोनो ने मिलकर महाराज श्री को निढाल कर दिया। अन्त मे महाराज श्री एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और विश्राम करने लगे। विश्रान्ति लेने से ज्वर कुछ ठीक हुआ और थकावट भी कम हुई। साहस बटोरकर महाराज श्री फिर चलने लगे, पर दिलके साहस का शरीर ने साथ नहीं दिया, वह लड़खड़ाने लगा। गुरुमहाराज की यह दशा देखकर उनकी अनिच्छा होने पर भी चरित्रनायक ने अपना हाथ

का सहारा दिया । लगभग ६ साढ़े नौ बजे अलीपुर गाव मे पहुँच गए और श्री विठ्ठल-मन्दिर के मण्डप मे विराजमान हो गए । चरितनायक श्री ने गुरुदेव को थोड़ा-सा जल दिया । जल पान करके महाराज श्री लेट गए, विश्राम करने लगे, किन्तु ज्वर शान्त नही हुआ, प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया । अपनी स्थिति चिन्ताजनक देखकर महाराज श्री ने अपने प्रिय शिष्य चरितनायक मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० तथा सेवाभावी मुनिश्री उत्तम ऋषिजी म० "इन दोनो शिष्यों से क्षमापणा करते हुए फरमाया

आनन्द ! जीवन का अन्तिम समय निकट आ रहा है, त्याग वैराग्य की छाया-तले आनन्द से साधु-जीवन की यात्रा सम्पन्न करना । मनसा, वाचा, और कर्मणा तुम्हें खमाता हूँ, तुम्हे जो कष्ट दिया है, उसके लिए हृदय से क्षमा याचना करता हूँ ।

ज्वराक्रान्त गुरु महाराज की लड़खड़ाती ध्वनि से निकले शब्दों को चरितनायक ने ध्यान से सुना, किन्तु इन्होंने समझा ज्वर की अधिकता है, वेदना अपने यौवन पर है इस कारण गुरुदेव जीवन से निराश हो गए है, और इसी लिए क्षमापना की बाते कर रहे हैं । चरितनायक को स्वप्न मे भी यह विश्वास नही था कि गुरुमहाराज की यह वाणी "भविष्य वाणी" बन कर थोड़े ही घण्टों मे साकार रूप धारण कर लेगी । परिणाम स्वरूप चरितनायक ने अपने गुरुदेव की क्षमापना की बात पर कोई ध्यान नही दिया ।

चरितनायक स्वयं अनुभव कर रहे थे, गुरुमहाराज की वेदना उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है । अतः उन्होंने स्थानीय श्रावक को बुलाकर महाराज श्री के स्वास्थ्य से अवगत कराया । श्रावक वयोवृद्ध एवं अनुभवी थे, उन्होंने जब महाराज श्री की स्थिति देखी तो इन को भी अनिष्ट की आशंका होने लगी । उन्होंने उसी समय श्री तुकारामजी तथा श्री गोरी शंकरजी इन दोनों स्थानीय ब्राह्मण वैद्यों को बुलाकर महाराज श्री को दिखलाया । एक वैद्य तो महाराज श्री की नाड़ी-प्रवाह देखकर मौन हो गए और दूसरे वैद्य ने कहा कि मेरे विचार मे महात्माजी त्रिदोष मे आगए है । त्रिदोष का अर्थ है—वात, पित्त और कफ इन तीनों के प्रकोप से उत्पन्न रोग, त्रिदोष को सन्निपात भी कहते है । सन्निपात दशा मे रोगी की स्थिति चिन्ता-जनक बन जाती है । गुरुमहाराज त्रिदोष मे आ गए है, यह सुनकर चरितनायक श्री वैद्यजी से कहने लगे —

वैद्यजी ! महाराजजी त्रिदो...

गया, किन्तु आपके विचार में महाराज श्री जी के जीवन की स्थिति कैसी दिखाई दे रही है? महाराज जी स्वस्थ हो जाएंगे? या चिन्ताजनक दशा मालूम देती है?

चरितनायक की बात सुनकर वैद्यराज बोले, महाराजजी का रोग अपनी चरम सीमा तक जा पहुँचा है, अब इनके स्वस्थ होने की कोई आशा दिखाई नहीं देती। आगे प्रभु के घर की कौन कह सकता है? वर्तमान स्थिति अच्छी नहीं है। यह तो कहना ही पड़ेगा, तथापि उपचार करना अपना कर्तव्य है।

वैद्यजी के कथनानुसार चरितनायक के छोटे गुरु भाई मुनि श्री उत्तम ऋषिजी महाराज औषध ले आए और उसका प्रयोग भी किया गया, परन्तु वही बात बनी।

'मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की"

सागारी संथारा

ज्वराधिक्य के अलावा महाराज श्री को हिचकी का एक और रोग लग गया। रोगों में हिचकी भी एक भयंकर रोग है। प्राणान्त के समय वायु का मुख से निकलने के प्रयत्न के कारण ठहर ठहरकर हिचकी का आना मृत्यु की सूचना होती है। असातावेदनीय कर्म का प्रकोप इतना अधिक बढ़ा, कि हिचकी के साथ महाराज श्री के मुख से झाग भी आने लगी। महाराज श्री की यह सब दशा एक वयोवृद्ध अनुभवी श्राविका देख रही थी। उसका नाम था, श्रीमती जतन बाई। उसने चरितनायक श्री से निवेदन किया—महाराज! ये सब चिन्ह अन्तिम समय के बनते जा रहे हैं, अतः अब आप गुरुमहाराज को संथारा करवा दीजिए। चरितनायक अपने जीवन में कभी किसी व्यक्ति का मरणासन्न काल देखा नहीं था। यह इनके जीवन की पहली घटना थी, अतः इन को इस सम्बन्ध में कुछ अनुभव नहीं था। अन्तिम समय के सूचक चिन्ह कौन-कौन से होते हैं? इस क्षेत्र में ये सर्वथा अज्ञान थे, किन्तु श्रीमती जतन-बाई जी एक गुरु भक्ता विश्वस्त श्राविका थी। तो उसके कहने के अनुसार उन्होंने महाराज श्री की आज्ञा लेकर उनको सागारी संथारा करवा दिया।

सागारी संथारा जैन जगत् का एक पारिभाषिक शब्द है। आगार-अपवाद या छूट को कहते हैं। अपवाद सहित सागार, प्राकृत भाषा में सागार ही सागारी कहलाता है। भाव यह है कि चरितनायक मुनि श्री आनन्द ऋषि-

जी म० ने 'यदि इस संकटकाल में गुरु महाराज की जीवन लीला समाप्त हो गई तो भोजनादि सब पदार्थों का जीवन पर्यन्त परित्याग, परन्तु यदि संकट टल गया, महाराज श्री का जीवन सुरक्षित रहा, तो भोजनादि पदार्थों का ग्रहण किया जा सकता है' इस धारणा से श्रद्धेय पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी महाराज को प्रत्याख्यान करवा दिया। यही प्रत्याख्यान जैन-जगत् में सागारी संथारा" इस शब्द से व्यवहृत किया जाता है।

गुरुदेव का परलोक गमन

चरितनायक श्री ने जिस समय अपने गुरुदेव को सागारी संथारा करवाया था, उस समय उनको पूर्ण चेतना थी। चरितनायक और उनके छोटे गुरु भाई मुनि श्री उत्तम ऋषिजी महाराज पूर्ण तन्मयता के साथ महाराज श्री की सेवा कर रहे थे, किन्तु धीरे-धीरे महाराज श्री की दशा अधिक चिन्ताजनक होने लगी। उस समय वि० सं० १९८४ ज्येष्ठ कृष्ण सप्तमी सोमवार था। घड़ी ने ११ बजाए तो महाराज श्री की चेतना बिल्कुल ठीक थी, वे होश में थे, [illegible]ब घड़ी की सुई आगे निकली तो महाराज श्री का सांस उखड़ने लगा और [illegible]ब घड़ी ने १२ बजाए तो महाराज श्री ने एक लम्बा सांस लिया श्वास लेने [illegible] साथ ही इनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई, महाराज श्री की अमर आत्मा [illegible] विनश्वर पार्थिव शरीर को छोड़कर स्वर्ग लोक में जा विराजमान हुई।[1]

[illegible]पिता का देहान्त हो जाने पर जो दुःखानुभूति पुत्र को होती है, वही [illegible]ानुभूति शास्त्र विशारद पूज्यपाद श्रद्धेय श्री रत्न ऋषिजी म० के स्वर्ग[illegible]ी बन जाने पर हमारे महामान्य चरित नायक को हुई। जिस मङ्गलमय [illegible] छाया के नीचे जीवन के सुन्दर दिन व्यतीत किए हों, आध्यात्मिक तथा [illegible]जिक दृष्टि से महान् उन्नति एवं प्रगति की हो, उस अभिराम छाया [illegible]ा के लिए वञ्चित हो जाने पर वज्राहत की भांति खेद खिन्न हो जाना [illegible]ाविक नहीं है। अधिक क्या? गुरुदेव के वियोग का चरितनायक को जो [illegible] दुःखानुभव हुआ, उसे शब्दों की सीमित रेखाओं में अभिव्यक्त नहीं किया [illegible]ना। चरितनायक के मानस में जो बड़ी-बड़ी आशाएँ थी, समाज की

---

[1] [illegible]रितनायक पण्डित रत्न मुनिश्री आनन्द ऋषिजी महाराज के पूज्य [illegible]रुदेव स्वनामधन्य श्री रत्न ऋषिजी महाराजजी की शव यात्रा का [illegible]ुस कितनी धूमधाम से सम्पन्न हुआ यह महाराज श्री के जीवन चरित्र [illegible]जाना जा सकता है।

जो उत्कट एवं विशाल योजनाएँ थी, महाराज श्री के असामयिक देहान्त ने उन सब पर पानी फेर दिया। काल की गति बड़ी गहन है। इसके आगे सब को नतमस्तक होना पड़ता है। काल के सामने आशाभवन धराशायी हो जाते हैं। सबके अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है।

चरितनायक श्री गम्भीर विचारक थे, अतः इन्होंने जैसे वैसे मन को सम्भाला। मानस में गुरु वियोग-जन्य-दुःखों का जो झञ्झावात उठ रहा था, मृत्यु की अवश्यम्भाविता समझकर उसे शान्त किया। अपने दायित्व को पूर्ण सफलता के साथ निभाते हुए इन्होंने गुरु महाराज के स्वर्गवास से परिपीड़ित एवं अत्यधिक आकुल-व्याकुल अपने छोटे गुरुभाई मुनि श्री उत्तम ऋषिजी महाराज को सान्त्वना देते हुए उनके अशान्त एवं उद्विग्न मानस को शान्त किया।

पाँचों तिथियों में आयंबिल

पहले कहा जा चुका है कि मान्यवर चरितनायक दीक्षित होने के थोड़े दिनों बाद अष्टमी, पक्खी को कभी आयम्बिल और कभी उपवास किया करते थे। वर्षों तक यही क्रम चलता रहा। किन्तु जब चरितनायक के आराध्य परिपूत-चरण श्रद्धेय श्री रत्न ऋषिजी महाराज का स्वर्गवास हो गया, तब आपका मानस अत्यधिक विरक्त रहने लगा। चरितनायक की अन्तरात्मा ने कहा — जीवन का क्या भरोसा है? कब समाप्त हो जाए? गुरु महाराज हमारे देखते-देखते चले गए। जब इतने बड़े महापुरुष यहां से चले गये, तो हमारी क्या गणना है? अब जो जप तप कर लिया जायगा, वही अपना है और वही साथ जाने वाला है। परिणामस्वरूप चरितनायक ने निश्चय किया कि अब भविष्य में पाँचों तिथियों में आयम्बिल व्रत किया करूंगा।

एक समय भोजन

चरितनायक श्री अपने गुरुदेव श्री रत्न ऋषिजी महाराज के जीवन काल में अष्टमी, पक्खी को आयम्बिल किया करते थे, किन्तु उनके स्वर्गस्थ हो जाने के पश्चात् उन्होंने द्वितीया, पंचमी, अष्टमी, एकादशी और पक्खी (अमावस्या, तथा पूर्णिमा) इन पांच तिथियों में आयम्बिल तप करना आरम्भ कर दिया। यह सिलसिला कई वर्ष तक रहा, इसके अनन्तर आप एक समय आहार करने लग गए, सायंकालीन भोजन छोड़ दिया। एक समय आहार करते आपको लगभग ३८ वर्ष होने जा रहे हैं। एक समय आहार लेने पर भी आप अष्टमी और पक्खी का उपवास नहीं छोड़ते। पहले तो एक समय

भोजन करना, फिर अष्टमी पक्खी को आयम्बिल करना, साधारण बात नहीं। कहना आसान होता है, किन्तु जब करने का समय आता है, तो बहुत कम लोग ऐसे होते हैं, जो कथन के अनुसार अपना आचरण बनाते हैं। तभी तो एक अनुभवी कवि को यह कहना पड़ा।

"कथनी मीठी खाण्ड सी, करनी विष की लोय"

एक मास लगातार एकासन तप

चरितनायक श्री की तप के प्रति इतनी निराली आस्था है कि भले ही विहार में थकावट हो, जहाँ चातुर्मासार्थ नगर में प्रवेश करना है, विशेष रूप से उसी दिन भले ही विशेष व्यस्तता हो, तथापि ये आयम्बिल तप का आराधन करते ही रहते हैं। और जब चातुर्मास आरम्भ होता है, तो एक महीना लगातार एकासन तप की आराधना करते रहते हैं। दशविध प्रत्याख्यानों में एकासन भी एक प्रत्याख्यान है। प्राकृत भाषा में इसे एगासन कहते हैं। "एगासण" शब्द के संस्कृत भाषा में एकाशन और एकासन ये दो रूप होते हैं। एकाशन का अर्थ है—एक+अशन अर्थात् दिन में एक बार भोजन करना एकासन का अर्थ है—एक आसन से भोजन करना। प्रश्न हो सकता है कि एकासन में किस समय भोजन करना चाहिए? उत्तर में निवेदन है कि सूर्योदय से लेकर कम से कम एक प्रहर के अनन्तर भोजन करना चाहिए। क्योंकि एकाशन में पोरसी प्रत्याख्यान समाविष्ट होता ही है। एकासन में एक आसन पर बैठकर भोजन हो जाना चाहिए। एकासन में भोजन करते समय इधर उधर आना जाना निषिद्ध है। इसके अलावा एकाशन या एकासन में अचित्त पदार्थों का सेवन करना होता है, सचित्त पदार्थों का सेवन इस अनुष्ठान में नहीं किया जाता।

चरितनायक श्री आज वयोवृद्ध महापुरुष माने जाते हैं, इस समय इन की आयु लगभग ६६ वर्ष की है। इस वृद्धावस्था में भी एक समय आहार करना और लगातार एक मासतक एकाशन तप करते रहना कोई साधारण बात नहीं है। वृद्धावस्था में प्रायः स्वास्थ्य ऐसा वैसा ही रहता है, और श्रमण संघ का बहुत बड़ा दायित्व है, यह सब कुछ होने पर भी चरितनायक श्री तपस्या भगवती की आराधना में कोई न्यूनता नहीं आने देते, यह इनके साधना जीवन की बहुत बड़ी विशेषता है।

मराठी भाषा में अनुवाद

हमारे महामान्य चरितनायक संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, मराठी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी आदि नवविध भाषाओं के एक जाने माने विद्वान् हैं, इन सब भाषाओं पर इनका अधिकार है, यह पीछे बतलाया जा चुका है। यह भी निवेदन कर दिया गया है कि चरितनायक की जन्मभूमि महाराष्ट्र प्रान्त है। महाराष्ट्र में जन्म लेने के कारण इनकी प्रान्तीय भाषा महाराष्ट्री, मराठी है। इसलिए मराठी पर तो चरितनायक का सर्वाधिक अधिकार है। ये अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी और मराठी में ही अधिक बोलते-चालते एवं लिखते हैं। मनोविज्ञान का भी यह सनातन नियम है, कि यदि मनुष्य वक्ता है या लेखक वह तो प्रायः उसी भाषा में अधिक बोलता एवं लिखता है, जिस भाषा पर वह विशेष अधिकार रखता है। हमारे चरितनायक इस नियम से अछूते नहीं रहे। महाराष्ट्र निवासी होने के नाते इन्होंने भी अधिक मराठी भाषा में साहित्य लिखा है। मराठी साहित्य को परिवर्धित एवं समृद्धित करने में इन्होंने अपना पूर्ण सहयोग दिया है।

चरितनायक श्री के लिखे साहित्य पर जब दृष्टिपात करते हैं, तो यह मानना पड़ता है कि आपने मराठी में कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं लिखी है। प्रश्न हो सकता है कि कोई स्वतन्त्र पुस्तक न लिखने का क्या कारण ? उत्तर में निवेदन है कि प्रथम तो चरितनायक वयोवृद्ध मुनिवरों की सेवा में अधिक व्यस्त रहते थे, दूसरे इन पर साधु-साध्वियों के अध्यापन का बहुत बड़ा दायित्व था और अब भी है, तीसरे इनको जीवन में स्थायी निवास का बहुत कम अवसर मिला है। चरितनायक बहुत बड़े घुमक्कड़ मुनिराज हैं। आज आप वयोवृद्ध हैं, सत्तर वर्षों के निकट होने जा रहे हैं, शरीर स्वास्थ्य भी सन्तोषजनक नहीं है, तथापि चातुर्मास काल को छोड़कर सदा विहार में रहते हैं। दो अढ़ाई वर्षों से आप भी पंजाब में हैं। पंजाब में जन्म लेने वाले तथा सदा रहने वाले हम युवक सन्तों ने बीसों वर्षों में इतना विचरण नहीं किया। जितना आपने इतने स्वल्प काल में कर दिया है। जब वृद्धावस्था की यह दशा है, तो जवानी में विहार कितना अधिक होता होगा ? यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है। साहित्य निर्माण के लिए स्थिरता आवश्यक है, बिना स्थिरवास के साहित्य-रचना करना बड़ा कठिन कार्य है। चौथे आपने कार्य क्षेत्र में स्वतन्त्र पुस्तक लिखने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की। सिद्धान्त है "आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है" आवश्यकता के बिना नवीन रचना

का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। जो आवश्यकता थी, वह इन्होंने पूर्ण कर ली। उस समय आवश्यकता थी कुछ पुस्तकों का मराठी में अनुवाद करने की, उसे चरितनायक ने जैसे तैसे समय निकाल कर पूर्ण कर दिया है। पांचवें जब से चरितनायक ने सामाजिक क्षेत्र में पदार्पण किया है, तब से तो इनकी व्यस्तता बहुत अधिक बढ़ गई है, दर्शनार्थी जनता का इतना अधिक यातायात रहता है कि चरितनायक को समय पर आहार करना भी कठिन हो जाता है। ये सब कारण हैं, जिससे चरितनायक मराठी भाषा में किसी स्वतन्त्र ग्रंथ का निर्माण नहीं कर पाए।

महामान्य चरितनायक श्री ने अनेकों पुस्तकों का मराठी भाषा में अनुवाद किया है। चरितनायक का यह अनुवाद भाव, भाषा तथा शैली की दृष्टि से बड़ा प्रशस्त एवं आदरणीय रहा। मराठी साहित्य की वह अनूठी सम्पत्ति बन गया। मराठी भाषा के विद्वान् लोगों ने उसे बहुत पसन्द किया। जिन पुस्तकों का आप श्री ने मराठी भाषा में अनुवाद किया है उसकी तालिका इस प्रकार है—

१. आत्मोन्नति का सरल उपाय
२. अन्य धर्मापेक्षा जैन धर्मातील विशेषता
३. वैराग्य शतक
४. जैन दर्शन व जैन धर्म
५. *जैन धर्म विषयी अजैन विद्वानों चे अभिप्राय (दो-भाग)*
६. उपदेश रत्न कोष
७. जैन धर्मांचे अहिंसा तत्त्व
८. अहिंसा आदि

ऊपर जिन पुस्तकों की तालिका दी गई है, ये सब पुस्तकें जिनका मराठी में चरितनायक श्री जी महाराज ने स्वयं अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त चरितनायक ने मराठी विद्वानों से भी अनेकों पुस्तकों का मराठी भाषा में अनुवाद कराया है और उसका संशोधन इन्होंने स्वयं किया है।

हिन्दी में साहित्य रचना

चरितनायक ने जिस तरह विद्वानों से अनेकों पुस्तकों का मराठी भाषा में निर्माण कराया है, उसी तरह इन्होंने हिन्दी भाषा में भी अनेकों पुस्तकों की रचना करवाई है। हिन्दी ग्रंथों में—

१ पूज्यपाद त्रिलोक ऋषिजी म० का जीवन चरित्र
२. शास्त्र विशारद पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी महाराज का जीवन-चरित्र
३ भंडारकर महामुनि श्री देवजी ऋषिजी महाराज का जीवनचरित्र
४ ज्ञान कुंजर दीपिका
५ ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास
६ अध्यात्म दशहरा
७ समाज स्थिति का दिग्दर्शन
८. सती शिरोमणि श्री रामकुंवरजी म० का जीवन चरित्र
९. विधवा विवाह आदि पुष्प चर्पटिका,
१० सम्राट् चन्द्रगुप्त राजा के सोलह स्वप्नों आदि ग्रन्थों का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

परम श्रद्धेय चरितनायक श्री की सत्प्रेरणा पाकर अमरावती निवासी आशुकवि डॉ० रामचन्द्र जी केशव गर्दे जी ने विद्या भगवती की आराधना की दृष्टि से १ रत्नाकर पच्चीसी आणि उपदेश रत्न कोष २—पद्यात्मक वैराग्य शतक ३—महावीर संदेश ४—गुरुवचन बहार आदि पुस्तकों का मराठी भाषा में अनुवाद किया। ये पुस्तकें महाराष्ट्रीय जनता में जैन धर्म के प्रचार के लिए काफी उपयोगी प्रमाणित सिद्ध हुई हैं।

इस तरह हमारे आदरास्पद चरितनायक पण्डित रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी महाराज ने मराठी तथा हिन्दी भाषा में स्वयं तथा दूसरे विद्वानों द्वारा साहित्य का निर्माण करके अध्यात्म साहित्य की महान् सेवा की है जहाँ अध्यात्म जगत् चरितनायक श्री को आचार तथा विचार की समुज्ज्वलता की दृष्टि से आदरास्पद स्वीकार करता है वहाँ, उन्हें एक सफल साहित्य स्रष्टा के रूप में भी देखता है। संयम-साधना के क्षेत्र में जहाँ ये अग्रसर हो रहे हैं, वहाँ ये साहित्य साधना में भी पीछे नहीं हैं। आज वयोवृद्ध अवस्था में भी साहित्य साधना के महापथ पर प्रगति करते जा रहे हैं। पूज्य चरितनायक की यह साहित्य सेवा साहित्य जगत् में सदा संस्मरणीय रहेगी।

१९

समाज-सेवा की पगडण्डियाँ

सेवा का अर्थ है - परिचर्या, खिदमत, रक्षण, आराधना। भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक सात में सेवा के प्रकार १० लिखे हैं। वे प्रकार ये है —

१. आचार्य की सेवा, २ उपाध्याय की सेवा ३. स्थविर की सेवा ४. तपस्वी की सेवा ५ रोगी की सेवा ६. नवदीक्षित की सेवा ७. कुल (एक गुरु का शिष्य परिवार) की सेवा ८ गण (साथ पढने वाले साधुओं का समुदाय) की सेवा ९. संघ की सेवा १०. साधर्मिक (समान धर्मी) की सेवा।

जैन शास्त्रों का परिशीलन करने से पता चलता है कि वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से सेवा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। अध्यात्म जगत् में तीर्थंकर का सबसे ऊँचा पद माना गया है। इस पद से बड़ा अन्य कोई पद नहीं है। तीर्थंकर का अर्थ है —जो संसार सागर से तैरने के साधनों का उपदेश करता है, तैराने के साधनों का प्रचार करता है, साधु-साध्वी,श्रावक और श्राविका इस चतुर्विध संघ की स्थापना करता है। तीर्थंकर पद की महानता, लोकोपकारिता से जैन साहित्य भरा पड़ा है। इस पद को प्राप्त करने के कारण-सामग्री का भी वहाँ बड़ा विस्तृत विवेचन मिलता है। इस कारण-सामग्री में सेवा को भी इस पद की प्राप्ति का कारण माना है। उत्तराध्ययन सूत्र अध्याय २९ के ४३वें प्रश्नोत्तर में इस तथ्य को बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है। वहाँ लिखा है —

वेयावच्चेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
वेयावच्चेणं जीवे तित्थयर नाम-गोत्तं कम्मं निबन्धइ।

अनगार गौतम भगवान् महावीर से पूछते हैं कि वैयावृत्य-सेवा से जीव को क्या लाभ होता है ?

उत्तर में भगवान्-महावीर फरमाते हैं कि हे गौतम ! वैयावृत्य से जीव तीर्थंकर नाम गोत्र कर्म का बन्ध करता है। मन, वचन और काया की पवित्रता के साथ जब सेवा-धर्म की आराधना की जाती है, तो सेवा करने वाला व्यक्ति तीर्थंकर गोत्र को प्राप्त कर लेता है।

सेवा एक लोकप्रिय आध्यात्मिक अनुष्ठान है। जितना आकर्षण सेवा में देखने को मिलता है, इतना किसी अन्य अनुष्ठान में नहीं। सेवा करने वाले से प्रत्येक व्यक्ति प्यार करता है। उसे स्नेह तथा आदर की दृष्टि से देखता है। परिवार, समाज, प्रान्त, देश तथा राष्ट्र में जिन लोगों को सम्मान की भावना से देखा जाता है, इसका कारण विशेष रूप से सेवा भगवती की आराधना ही होती है। सेवा करने वाले व्यक्ति ही सर्व जन प्रिय और समादरणीय बन जाते हैं। जन-जन के हृदय में अपना स्थान बना लेते हैं। अधिक क्या दूध और रक्त का सम्बन्ध न होने पर भी भगवान् की तरह मनुष्य जगत् सेवक महापुरुष का जो सम्मान करता दिखाई देता है, उसका मूल कारण केवल सेवा भगवती का अद्भुत चमत्कार ही समझना चाहिए।

सेवा के महापथ पर चलना, साधारण कार्य नहीं है। इस पथ पर वही चल सकता है, जिसने अपने मन, वाणी और शरीर पर पूर्णतया नियंत्रण कर रखा है। मान-अपमान की चिन्ता को हृदय से निकाल दिया है। अभिमान को छोड़कर नम्रता मधुरता और कोमलता की पवित्र छाया तले जीवन के क्षण व्यतीत करने वाला व्यक्ति ही सेवा भक्ति की आराधना कर पाता है। तभी तो महान् अनुभवी संस्कृत के एक विद्वान् आचार्य को यह कहना पड़ा—

"सेवाधर्मः परम गहनो, योगिनामप्यगम्यः"

सेवा धर्म का पालन करना, बच्चों का खेल नहीं, बड़ा कठिन कार्य है। यह योगियों के लिए भी अगम्य है, योगी जन भी सेवा की आराधना सरलता से नहीं कर पाते। हमारे आदरास्पद महामान्य चरितनायक वाणी-भूषण पण्डित रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषि जी महाराज सेवा धर्म की महत्ता एवं उपादेयता को भली भाँति समझते थे। केवल समझते ही नहीं थे, प्रत्युत इसकी परिपालना के लिए सदा सतर्क रह कर इसकी आराधना भी करते चले आ रहे थे और आज भी कर रहे हैं। इन्होंने अपने जीवन में भगवती सुख प्रति-

पादित सेवा के सभी रूपों को लाने का प्रयास किया था, किन्तु प्रस्तुत में हम इनकी केवल समाज-सेवा का ही वर्णन करने का प्रयत्न करेंगे।

श्री रत्न जैन पुस्तकालय, पाथर्डी

साहित्य प्रेमी चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के गुरुदेव परिपूतचरण स्वनामधन्य महामुनि पूज्यपाद श्री रत्नऋषिजी महाराज वि०सं० १६८४ जेष्ठ कृष्णा सप्तमी सोमवार को अल्लीपुर (महाराष्ट्र) में स्वर्गवासी हो गए थे। उनका समाचार पाथर्डी श्रावक-संघ को जब प्राप्त हुआ, तब उनको हार्दिक विक्षोभ हुआ। उसने तत्काल गुरु महाराज श्री की पुण्य स्मृति में एक पुस्तकालय संस्थापित करने का निश्चय कर लिया। पुस्तकालय का नाम "श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी" रखा गया। गुरुदेव की कृपा से तथा चरितनायक श्री की सतत प्रेरणा से पुस्तकालय ने इतनी अधिक प्रगति की कि, कुछ कहते नहीं बनता। आज यह एक विख्यात, जाना-माना पुस्तकालय समझा जाता है। इसमें गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, प्राकृत और मराठी आदि सभी भाषाओं की लगभग १२ हजार छोटी मोटी मुद्रित पुस्तकें है। दो हजार के करीब हस्तलिखित ग्रंथ हैं। पुस्तकालय का भवन तीन मञ्जिला बड़ा विशाल और रमणीय है। पुस्तकालय ने जितनी प्रगति की है, तथा आज जितना यह फलता-फूलता दिखाई दे रहा है, इसका सब श्रेय हमारे मान्य चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को है। इन्हीं की मंगलमय कृपा तथा प्रेरणा द्वारा पुस्तकालय का जीवन दिनों दिन सम्वर्धित एवं सम्पोषित होता चला जा रहा है।

पुस्तकें अतीत कालीन इतिहास, सभ्यता और संस्कृति की संरक्षिका होती हैं, इनके अध्ययन से प्रज्वलित ज्ञान प्रदीप अनागत-कालीन सभ्यता तथा संस्कृति के उन्नयन में सहायता प्राप्त होती है। इसी दृष्टि को आगे रखकर पाथर्डी के उक्त पुस्तकालय की स्थापना की गई थी। इसके प्रबन्धकों ने परीक्षार्थी छात्र-छात्राओं के लिए उपयुक्त साहित्य प्रदान करने की भी व्यवस्था कर रखी है। अनुभवी विद्वानों ने इस पुस्तकालय के सम्बन्ध में बड़े सराहना पूर्ण मतव्य अभिव्यक्त किए हैं। उदाहरण के लिए कुछ एक मन्तव्य इस प्रकार हैं।

१. श्री रत्न जैन पुस्तकालय विशाल है और विद्वानों को काम की चीज है।

—दरबारीलाल सत्यभक्त

२ विचार: इसमें हस्तलिखित ग्रन्थ देखे, देखकर मन को बड़ी प्रसन्नता हुई। अनेक ग्रन्थ छुट प्रकाशित देखे, पुस्तकालय का संग्रह दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है इतने छोटे से गाँव में इतना बड़ा पुस्तकालय देखकर आश्चर्य होता है।

ग० ह० मेरे भारत इतिहास संशोधन मंडल, पूना

३ कई मुद्रित ग्रन्थ देखे इस संग्रह से धर्म प्रचारक तथा इतर विषय के कार्य सिद्ध करने में सहयोग मिलेगा।

के० पी० साहित्य जिला शिक्षणाधिकारी

४ ग्रन्थालय बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें अति प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ भी है। ज्ञान की लालसा रखने वालों को इस ग्रन्थालय से बहुत ही लाभ हो सकेगा।

अमरचन्द केशरचन्द गांधी चांदा (म० प्र०)

५ पुस्तकालय बहुत ढंग से रखा हुआ है। ग्रन्थ बहुत मौलिक है। इसका उपयोग विमर्श करने वाले लोगों को होना चाहिए।

— मोतीलाल कु० फिरोदिया

श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी की एक शाखा "सार्वजनिक वाचनालय" इस नाम से मान्य चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की जन्मभूमि चिचोंडी (शिराल) में भी व्यवस्थित रूप से चल रही है।

नागपुर की जैन धर्म प्रचारक संस्था

परमोपकारी, शास्त्र विशारद पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी महाराज के स्वर्गवास के अनन्तर चरितनायक [illegible]

राज श्रद्धेय श्री देवजी ऋषिजी महाराज को ऋषि सम्प्रदाय का आचार्य पद दिया गया और चरित्रनायक पण्डित रत्न श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को युवाचार्य पद से विभूषित किया गया। इस मंगल अवसर पर वहां उपस्थित मासमार्गी श्री मोहन ऋषिजी म०, पं० श्री विनय ऋषिजी म०, प० मुनि श्री कल्याण ऋषिजी म० आदि सन्त तथा शासन-प्रभाविका स्थविरा महासती श्री रतन कुंवरजी म०, श्री श्याम कुंवरजी म०, श्री सिरेकुंवरजी, श्री अमृतकुंवरजी म० आदि सभी सन्त-सतियों ने एवं श्रावक तथा श्राविकाओं ने शास्त्रोद्धारक पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी महाराज के पुण्य स्मरणार्थ "श्री अमोल जैन सिद्धान्तशाला" नामक संस्था स्थापित करने का निश्चय किया। साथ में यह भी निर्णय किया, कि यह संस्था पाथर्डी में खोली जाय। प्रथमतः भुसावल निवासी सुश्राविका श्री बाईजी बम्ब तथा बोदवड श्री संघ की सहायता से यह कार्य चालू किया।

संस्था के जीवन को सुदृढ़ और स्थायी बनाने के लिए दूरदर्शी प्रबन्धकों ने निर्णय लिया कि स्थायी धन राशि एकत्रित की जाय, उससे उपलब्ध ब्याज द्वारा संस्था का संचालन किया जाय। संस्था की स्थायी सम्पत्ति का होना आवश्यक है। स्थायी सम्पत्ति से ही संस्था फल-फूल सकती है। जिस संस्था के पास स्थायी सम्पत्ति नहीं होती, उसका जीवन सदा खतरे में ही रहता है।' श्री अमोल-सिद्धान्तशाला' के प्रबन्धक इस सत्य को अच्छी तरह समझते थे, यही कारण है कि उन्होंने सर्वप्रथम इस संस्था के लिए स्थायी-सम्पत्ति एकत्रित करके अपनी दूरदर्शिता का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया।

उक्त सिद्धान्तशाला का उद्देश्य ज्ञानाभिलाषी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका सभी को शास्त्रीय ज्ञान से शिक्षित करना था। कोई साधु कुछ पढ़ना चाहे, कोई साध्वी कुछ सीखना चाहे, यह संस्था उसकी सब व्यवस्था करती है। अध्यापक, साहित्य तथा अन्य आवश्यक इष्ट सामग्री जुटाकर ज्ञान का प्रसार करना ही इस संस्था का सर्व प्रधान लक्ष्य रहा हुआ है। अनेकों मुनिराजों तथा अनेक महासतियों ने इस संस्था से शिक्षण प्राप्त किया है। शिक्षणार्थियों में स्वर्गीय पण्डित रत्न श्री मोती ऋषिजी महाराज, महाराष्ट्र प्रान्त की प्रसिद्ध व्याख्यात्री विदुषी महासती श्री सुमति कुंवरजी म०, विदुषी म० श्री अमृत कुंवरजी म०, पण्डिता श्री सज्जनकुंवरजी म०, प० श्री अजित-कुंवरजी म०, प० श्री शान्तिकुंवरजी म०, श्री प्रभाकुंवरजी म०, जैन सिद्धान्ताचार्य पण्डिता श्री सुशीलकुंवरजी म० के नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं।

हमारे आदरणीय चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के हाथों जिस दिन से ऋषि सम्प्रदाय का नेतृत्व आया उसी दिन से आपने पूज्य साधु-साध्वियों के सैद्धान्तिक शिक्षण की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया। आप श्री ने सिद्धान्तशाला के विकास एवं समुत्कर्ष के लिए अपनी समस्त शक्ति समर्पित कर दी। सिद्धान्तशाला कैसे समुन्नत हो? इसका सर्व-व्यापी प्रचार कैसे हो? यही चिन्तन आपके मानस में सदा चक्र लगाता रहता था। यदि वास्तव में देखा जाय तो सिद्धान्तशाला की उपयोगिता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का कोई मतभेद नहीं हो सकता। जिस समाज में साधु वर्ग अशिक्षित है, शिक्षा के प्रकाश से शून्य है, वह समाज कभी उन्नत नहीं हो सकती। जहाँ पथ-प्रदर्शक स्वयं भटक रहा है, वह अपने अनुयायियों का मार्ग-दर्शन कैसे कर सकेगा? अतः साधु-वर्ग को शिक्षित करने के लिए सिद्धान्तशाला जैसी ज्ञानवर्धक संस्था ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। परिणाम स्वरूप महामान्य चरितनायक ने सिद्धान्तशाला के सम्वर्धन में अपना पूर्ण सहयोग दिया, और सती-शिरोमणि श्री रामकुंवरजी म० एवं शास्त्रज्ञ श्री किसनदासजी मुथा के स्मारक रूप में घोड़नदी तथा अहमदनगर में भी सिद्धान्तशाला की शाखाएँ खोलकर पाथर्डी से बाहर भी श्रुत ज्ञान के दीपक जलाने का बुद्धि-युक्त प्रयास किया।

सिद्धान्तशाला का केन्द्र स्थान पाथर्डी ही क्यों रखा गया? यह प्रश्न होना अस्वभाविक नहीं है। उत्तर में निवेदन है कि सिद्धान्तशाला जैसी ज्ञान-वर्धक तथा समाज-सेवी संस्था के लिए पाथर्डी को जो महत्व दिया गया है, इसके अनेकों कारण हैं। सर्वप्रथम पाथर्डी के श्रावकों में किसी प्रकार का भेदभाव या साम्प्रदायिक चिन्तन नहीं है। दूसरे यहाँ पर नैसर्गिक सुविधाएँ अच्छी हैं, सबसे साधु मुनिराजों के लिए उपयुक्त भूमिका बहुत होना ही सुविधास्पद है। तीसरे पाथर्डी का वातावरण बड़ा शान्त है, यहाँ की जनता सामाजिक तथा राजनैतिक संघर्षों से बहुत ऊपर उठी हुई है। लोग बड़े शान्ति प्रिय हैं। चौथे यहाँ महाविद्यालय और विद्यालयों के अस्तित्व से शैक्षणिक वातावरण बड़ा आकर्षक एवं सुन्दर बना हुआ है।

ी तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी

यह संस्था कवि कुल भूषण प्रा. स्मरणीय पूज्य श्री तिलोक ऋषिजी महाराज तथा शास्त्री विशारद पण्डित रत्न श्रद्धेय पूज्य श्री रत्नऋषिजी महाराज की पुण्य स्मृति में खोली गई है। चरितनायक श्री का यह प्रयास

[illegible] आध्यात्मिक प्रकाश के प्रति [illegible] "[illegible]" [illegible] प्रकट की है। आचार्य की गुण गरिमा महान् है।

आचार्य श्री के छह लक्षण

श्री व्यवहार सूत्र के [illegible] टीकाकार ने आचार्य श्री के लक्षणों का वर्णन करते हुए उनके छह लक्षण बताए हैं, उनका नामनिर्देश पूर्वक अर्थ विचार इस प्रकार है।

१ श्रद्धावान आचार्य श्रद्धावान् होना चाहिए। जो व्यक्ति देव गुरु व धर्म के प्रति पूर्णरूप से श्रद्धा-आस्था रखता है, निष्ठापूर्वक पांच महाव्रतों का पालन करता है, आत्मकल्याण में अटूट विश्वास को लेकर जीवन यात्रा सम्पन्न कर रहा है, मारणान्तिक कष्ट आजाने पर भी जिस का धार्मिक श्रद्धान डांवाडोल नहीं होता, ऐसा दृढविश्वासी व्यक्ति ही आचार्य पद के योग्य हो सकता है। जिसकी स्थिति "गंगा गए गंगादास, जमुना गए जमुनादास" जैसी होती है। ऐसा अव्यवस्थित चित्त वाला व्यक्ति आचार्य जैसे महान् दायित्व-पूर्ण पद के अयोग्य माना जाता है।

२. सत्यवादी मनसा वाचा और कर्मणा सत्य भगवान की आराधना-उपासना करने वाला व्यक्ति आचार्य बनता है। जिस व्यक्ति के मन वचन और कर्म में एकता नहीं होती, किसी को कुछ और किसी को कुछ कह डालता है, जो रसना से बोलता है उसका जरा भी ध्यान नहीं रखता, झूठ बोलता है, ऐसा असत्यवादी व्यक्ति चतुर्विध संघ का नेता नहीं बन सकता।

३. मेधावी—जिस की विचार शक्ति प्रबल है, जो बौद्धिक बल से गहराई तक सोच समझ सकता है, ऐसा दूरदर्शी तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति आचार्य का स्थान पाने का अधिकारी माना गया है। जो गंभीर विचारक न हो, दूसरों के विचारों को गम्भीरता के साथ सोच न सकता हो, ऐसा मेधाविहीन व्यक्ति आचार्य नहीं बन सकता।

४. बहुश्रुत—आचार्य स्वदर्शन और परदर्शन का विद्वान् एवं पारगामी होता है। आत्मा परमात्मा, जड़, चेतन, स्वर्ग नरक, लोक परलोक के सम्बन्ध में अपनी क्या मान्यता है? इस सम्बन्ध में दूसरों का क्या मन्तव्य है? आदि सभी बातों से जो भली भांति परिचित हैं अवगत है,—ऐसा बहुश्रुत व्यक्ति ही आचार्य पद से विभूषित किया जा सकता है।

[illegible] को [illegible] कर एक बनाया। [illegible] में यह हुआ जैन समाज संगठन के इतिहास में [illegible] कहे तो [illegible] समा। [illegible] के [illegible] यहाँ [illegible] विजय का श्री वर्द्धमान स्थानक वासी जैन श्रमण संघ की स्थापना की भावना [illegible] श्रमण संघ का [illegible] हो। यह है एक विराट् श्रमण संघ के रूप में आने का [illegible] एक बहुत [illegible] हुआ।

भारत के स्थानकवासी जैन समाज को सुसंगठित करने में अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानक वासी जैन कान्फ्रेन्स का बड़ा महत्त्व पूर्ण हाथ रहा। कान्फ्रेन्स के प्रभावशील कार्यकर्ताओं ने समाज में ऐक्य-भावना लाने के लिए अपनी समस्त शक्तियाँ समर्पित कर दीं। अन्त में कान्फ्रेन्स के प्रयत्नों से सादड़ी (मारवाड़) में वि० सं० २००९ वैशाख शुक्ला तृतीया के शुभ दिन स्थानकवासी मुनि मण्डल के एक विराट् सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में पंजाब, राजस्थान, मालवा, मेवाड़, मारवाड़ और महाराष्ट्र आदि सभी प्रान्तों के प्रमुख मुनिराजों ने भाग लिया था। सम्मेलन में मुख्य रूप से श्रद्धेय पूज्य श्री गणेशीलालजी म०, श्रद्धेय चरित-नायक पण्डित रत्न पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज, श्रद्धेय पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज, श्रद्धेय पं० प्यारचन्दजी महाराज, श्रद्धेय श्री पन्नालाल जी म० के सुशिष्य श्री मोहनलालजी म०, श्रद्धेय मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज, पंजाब प्रान्तीय युवाचार्य श्रद्धेय श्री शुक्लचन्दजी म०, श्रद्धेय पण्डित श्री किशनलालजी महाराज, श्रद्धेय श्री फूलचन्दजी म०, शेरे पंजाब श्रद्धेय श्री प्रेमचन्दजी महाराज, श्रद्धेय श्री पुष्कर मुनिजी महाराज, श्रद्धेय मोतीलालजी म० के शिष्य शान्ति मुनिजी म० मेवाड़ी, श्रद्धेय श्री इन्द्रमलजी म०, श्री सहस्रमलजी म०, श्रद्धेय व्याख्यान वाचस्पति पं० श्री मदनलालजी म०, श्रद्धेय कविरत्न अमर मुनिजी महाराज आदि मुनिराज भाग ले रहे थे। आदरणीय साध्वी मण्डल पर्याप्त संख्या में वहाँ विराजमान था।

महामन्त्र नवकार की मंगल ध्वनि के साथ सम्मेलन की कार्यवाही चालू की गई। सभी उपस्थित मुनिराजों ने एक स्वर से अपनी-अपनी सम्प्रदाय और साम्प्रदायिक पदवियों का विलीनीकरण करके एक आचार्य के नेतृत्व में "श्री वर्द्धमान स्थानक वासी जैन श्रमण संघ" की स्थापना की श्रमण संघ के अधिकारी वर्ग का चुनाव करते हुए पंजाब प्रान्तीय जैन धर्मदिवाकर, जैनागम रत्नाकर परम श्रद्धेय पूज्य श्री आत्माराम जी म० को सर्वसम्मति से आचार्य

पद से विभूषित किया गया। पूज्य आचार्य श्री जी अपनी वृद्धावस्था के कारण सादड़ी सम्मेलनमें पधार नहीं सके थे। इन की अनुपस्थिति में ही श्रमण संघ ने इनको अपना आचार्य चुना था। व्यक्ति की अनुपस्थिति में यदि उसे आचार्य जैसे महान गौरव पूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया जाता है, तो उसके व्यक्तित्व के प्रति समाज में कितना श्रद्धान सम्मान तथा आकर्षण है ? इसका भली भाँति परिचय प्राप्त हो जाता है।

आचार्य प्रवर पूज्य श्री आत्मारामजी म०

जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जी म० बहुत बड़े तेजस्वी और वचस्वी महापुरुष थे। आपका जीवन एक आध्यात्म उपवन था। इसमें त्याग, वैराग्य, क्षमा, दया, सहिष्णुता, विद्वत्ता, उदारता तथा गंभीरता आदि अनेकों सुमन खिल रहे थे जिनके सौरभ उनका कण-कण सुरभित हो रहा था। आपका जन्म वि० सं० १९३९ भाद्रपद शुक्ला द्वादशी के शुभ दिन जिला जालंधर (पंजाब) के प्रसिद्ध नगर राहों के सेठ मन्साराम जी चोपड़ा के घर हुआ था। माता का नाम परमेश्वरी था। ग्यारह वर्ष की स्वल्प आयु में वि० सं० १९५१ बनूड़ (पंजाब) में महामहिम पूज्य श्री शालिग्रामजी महाराज के चरणों में दीक्षित हुए। प्रातः स्मरणीय शास्त्र विशारद जैनाचार्य पूज्य श्री मोतीरामजी महाराज से आप श्री ने जैन तथा जैनेतर साहित्य का अध्ययन किया। प्रतिभा सम्पन्न तथा प्रत्युत्पन्नमति होने के कारण संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य के आप इतने ऊँचे विद्वान् थे कि कुछ कहते नहीं बनता। युनिवर्सिटी के एक जर्मन प्रोफेसर के शब्दों में आपका शास्त्रीय जीवन एक चलता फिरता पुस्तकालय था। वि० सं० १९६९ में भारत केसरी आचार्य प्रवर पूज्य श्री सोहनलालजी महाराज के पवित्र हाथों से आपको पंजाब का उपाध्याय पद दिया गया था। वि० सं० २००३ लुधियाना में पञ्चनदीय मुनि मण्डल ने आपको पंजाब के आचार्य पद से विभूषित किया और वि० सं० २००९ में श्री वर्द्धमान स्थानक वासी जैन श्रमण संघ के सादड़ी के विराट् मुनि सम्मेलन में आपको अपना आचार्य उद्घोषित किया।

सुनने और देखने में बड़ा अन्तर होता है। व्यक्ति सुनने में जितना मधुर होता है, देखने में वह इतना मधुर एवं सुन्दर नहीं रह पाता, परन्तु आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज इस नियम के अपवाद थे। वे सुनने में जितने आकर्षक थे, देखने में उससे भी कहीं अधिक लुभावने थे।

भीनासर सम्मेलन में मान्य चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को उपाध्याय बनाकर श्रमण संघ ने इन की ज्ञान प्रदायी शक्ति को सम्मानित किया था। यह हर्ष की बात है कि चरित नायक श्री ने भी उपाध्याय बनकर शक्ति से बढ़कर अपने कर्तव्य का परिपालन किया। साधु साध्वियों को पढ़ाने सिखाने, अध्यात्म विद्या सिखाने में इन्होंने पूर्ण सहयोग दिया और अनेक क्षेत्रों में सिद्धान्त-शालाएँ खोल कर ज्ञान के प्रसार एवं प्रचार के लिए जन-जन को मधुर प्रेरणा प्रदान की।

श्रमण संघीय कार्यवाहक समिति के संयोजक

पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज को जब से श्रमण संघ का आचार्य उद्घोषित किया, उसी समय आपके कार्य-भार को हलका करने के लिए सहयोगी के रूप में पण्डित प्रवर पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज को उपाचार्य पद प्रदान कर दिया। उपाचार्य पद प्रदान करने के पीछे श्रमण संघ की यही भावना एवं कामना थी कि श्रमण संघ का कुछ दायित्व आचार्य श्री सम्भालें और कुछ उपाचार्य श्री। श्रमण संघ के विधान में जहां उपाचार्य श्री के अधिकारों का उल्लेख है, वहां लिखा है कि जितने अधिकार आचार्य श्री जी प्रदान करेंगे, उतने अधिकारों का उपाचार्य श्री प्रयोग करेंगे। इस से स्पष्ट है कि वैधानिक दृष्टि से अधिकारों के मूल स्रोत आचार्य श्री जी हैं। यही कारण है कि आचार्य श्री जी ने जितने अधिकार उपाचार्य श्री को सौंपे। उपाचार्य श्री ने उनके अनुसार संघ के शासन को चलाना आरम्भ किया। दोनों महापुरुषों के आपसी सहयोग तथा सद्भाव के सम्पोषण एवं सम्वर्धन की सद् भावना से वर्षों तक संघ शासन की गाडी बड़ी सफलता के साथ चलती रही। वि० सं० २००६ से लेकर २०१२ तक कोई गत्यवरोध नहीं हुआ। समय का प्रकोप समझिए कि आगे चलकर कुछ परिस्थितियां ऐसी पैदा हो गईं, जिनके कारण श्रमण संघ के मुख्य अधिकारियों—आचार्य श्री और उपाचार्य श्री दोनों महापुरुषों में वैधानिक मत भेद उत्पन्न हो गया। मत-भेद का मूल कारण अधिकारों के प्रयोग का था। इस मत-भेद को समाप्त करने के लिए अनेकानेक प्रयत्न हुए परन्तु जब वे सब निष्फल चले गए तो गम्भीरता की सजीव मूर्ति, दूर दृष्टा पूज्य आचार्य श्री जी महाराज ने अधिकारों के कारण उत्पन्न संकट को समाप्त करने के लिए उपाचार्य श्री को प्रदत्त समस्त अधिकार वापिस ले लिए और श्रमण संघ सुव्यवस्थित पद्धति से चलता रहे और इस की अखण्डता सुरक्षित रहे, इस दृष्टि से एक "श्रमण संघीय कार्यवाहक समिति" बनाई।

इस समिति को अपने सभी अधिकार देकर संघ की व्यवस्था का सब दायित्व
समिति को सौंप दिया। आचार्य देव ने न अधिकार अपने पास रखे और
उपाचार्य श्री के पास रहने दिए, अधिकारों का सब मुखिया समिति को सम
कर दिया। आचार्य श्री ने ऐसा करके बड़ी दूरदर्शिता की, इसी दूरदर्शिता
यह सुपरिणाम है कि आज श्रमण संघ जीवित है और समाज का नवनिर्मा
में प्रतिफलित कर रहा है। अन्यथा इसकी क्या दुरवस्था होती ? यह विचा
केवल ज्ञानी के कौन कह सकता है ?

समिति में मुनिराज थे। श्रद्धेय मंत्री श्री पन्नालाल जी महाराज
मान्य चरित्रनायक उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी महाराज, मंत्री पंडित रत्न
श्री शुक्लचन्दजी म०, उपाध्याय कवि श्री अमर मुनिजी म०, उपाध्याय श्री
हस्तीमल जी म०। इनमें संयोजक हमारे महामान्य चरित्रनायक उपाध्याय श्री
आनन्द ऋषिजी महाराज ही थे। संयोजक का अर्थ है—संचालन करने वाला
गति प्रदान करने वाला। दूसरे शब्दों में कहें तो आचार्य सम्राट् पूज्य श्री
आत्मारामजी महाराज ने हमारे चरित्रनायक श्री को समिति का संयोजक
बनाकर श्रमण संघ की व्यवस्था का सारा दायित्व इनके कंधों पर डाल दिया।
आचार्य सम्राट् श्री के मानस में चरित्रनायक श्री के सम्बन्ध में कितना भरोसा
था, तथा वे इनकी योग्यता का कितना सम्मान रखते थे, यह स्वतः स्पष्ट हो
जाता है। सौभाग्य की बात समझिए कि आचार्य सम्राट् श्री के हृदय में चरित-
नायक श्री का जो मान था, इन्होंने भी उसे पूर्ण रूपेण निभाया। इन्होंने
अपनी अद्वितीय योग्यता, दूरदर्शिता तथा शांति प्रधान नीति के माध्यम से
संघ के महारथ को कहीं रुकने नहीं दिया, आज तक यह अपनी अभिराम
एवं अविराम गति से चलता चला आ रहा है। संयोजक श्री की दूरदर्शिता
एवं सतर्कता के कारण ही विरोधी लोगों के "श्रमण संघ के प्रासाद को धरा-
शायी करने के स्वप्न" केवल स्वप्न बन कर ही रह गए वे मूर्त रूप नहीं ले
सके। संयोजक श्री की यह श्रमण संघीय सेवा श्रमण संघ के इतिहास में सदा
अविस्मरणीय रहेगी और आने वाली पीढ़ियां इसके लिए इनका सदा आभार
मानती रहेगी।

पू० श्री आत्मारामजी म० का स्वर्गवास

वि० सं० २०१६ की बात है। प्रातः स्मरणीय जैनधर्म दिवाकर
चार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज लुधियाना (पंजाब) में
राजमान थे। आचार्य सम्राट् के जीवन का यह अन्तिम वर्ष था। इस वर्ष

अखिल भारतीय जैन कान्फरेन्स ने बम्बई में जब अपनी जनरल मीटिंग बुलाई थी, सौभाग्य से उस समय हमारे सम्मानास्पद चरितनायक पण्डित रत्न पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज बम्बई में ही विराजमान थे। जब कान्फरेन्स ने अपने निर्णय के अनुसार पूज्य चरितनायक श्री जी म० के सामने आचार्य पद सम्बन्धी पारित प्रस्ताव रखा तो आपने फरमाया—

बन्धुओ ! मैं तो श्रमण संघ का साधारण सेवक हूँ। जितना आप लोग मेरा मान कर रहे हैं, उतनी मेरे में योग्यता नहीं है। मैंने तो गुरुदेव से संघ सेवा का पाठ पढ़ा है, उसी को जीवन सात् करने का प्रयास कर रहा हूँ। जैनधर्म दिवाकर शास्त्र विशारद आचार्य सम्राट् दिवंगत पूज्य श्री आत्माराम जी म० ने "कार्यवाहक समिति" के संयोजक के रूप में संघ सेवा करने का जो अवसर मुझे प्रदान किया, आजतक उस दायित्व को यथा शक्ति निभाने का प्रयत्न करता चला आ रहा हूँ। अब यदि श्रमण संघ सर्व सम्मति से आचार्य पद देकर मुझ से सेवा लेना चाहता है तो मैं आप लोगों तथा श्रमण संघ की भावना को कैसे ठुकरा सकता हूँ। संघ की आज्ञा सर्वोपरि है। संघ की आज्ञा के सन्मुख मेरी इच्छा या अनिच्छा का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। चतुर्विध संघ जो सेवा लेगा उसे यथा शक्य बजाने का प्रयत्न किया जायगा। केवल एक कामना प्रकट कर देता हूँ। श्रमण संघ के मुनिराजों महासतियों तथा आप लोगों के सहयोग की आवश्यकता है।

महामान्य श्रद्धेय चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज का सारगर्भित मार्मिक तथा संघ सेवा भावना-पूर्ण वक्तव्य सुनकर उपस्थित जन-समूह आनन्द विभोर हो उठा। श्रद्धा परिपूरित हृदयों से सब ने "भगवान् महावीर स्वामी की जय हो, जैन धर्म दिवाकर आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आत्मारामजी म० की जय हो, महामान्य पण्डित रत्न पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज की जय हो" आदि जयकारों से आकाश को गुंजाते हुए पूज्य चरितनायक श्री जी द्वारा प्रदत्त आचार्य पद की स्वीकृति के लिए अपना हार्दिक सन्तोष एवं हर्षातिरेक अभिव्यक्त किया। वातावरण बड़ा सुहाना था। सर्वत्र हर्ष एवं आनन्द दिखाई दे रहा था।

श्रमण संघीय आचार्य पद के अधिकारी का निश्चय हो जाने के अनन्तर श्री कान्फरेन्स के मनोनीत अधिकारी वर्ग ने कान्फरेन्स के निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए श्रमण संघ के मुनिराजों का एक सम्मेलन बुलाने का विचार किया। चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के सहा-

नुसार, श्रमण संघीय मुख्य मुख्य मुनिराजों से विचार-विनिमय करके अजमेर में सम्मेलन करने का निश्चय हो गया। और इसके लिए मुनिराजों को निमन्त्रण पत्र प्रेषित कर दिया। सम्मेलन का निश्चय हो जाने के कारण श्रद्धेय चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज ने भी बम्बई घाटकोपर में सेवाभावी मधुर व्याख्यानी पं० मुनिश्री मोती ऋषिजी म० की शारीरिक अस्वस्था के कारण सेवाभावी मुनि श्री शांति ऋषिजी म० को उनकी सेवा में रखकर अजमेर की ओर विहार प्रारम्भ किया। आपके साथ तपस्वी बजाना मुनि श्री लाभचन्द्रजी महाराज भी थे। इगतपुरी, नासिक, लासलगाव मनमाड मालेगाव धुलिया, सिरपुर, सेंधवा आदि अनेकों क्षेत्रों में धर्म प्रचार करते हुए इन्दौर पधारे। यहाँ मालव केसरी मुनि श्री सौभाग्यमलजी म० का सम्मिलन हुआ। स्थविरा परम विदुषी महासती जी श्री रत्न कुंवर जी म० को दर्शन देने व शाजापुर श्रावक संघ के अत्याग्रह से चातुर्मास की स्वीकृति यहीं हुई। इन्दौर से विहार कर आपने शाजापुर में चातुर्मास काल बिताया। चातुर्मास समाप्त कर उज्जैन खाचरोद पधारे, यहां से आपके साथ मालव केसरीजी व अशोक मुनिजी मूल मुनिजी आदि संत आपकी सेवा में हुए। नागदा होते हुए आप रतलाम पहुंचे, यहां करीब ८० संत व ४७ सतियों ने एवं करीब २० हजार के जन समुदाय ने आपका भव्य स्वागत किया। रतलाम से सैलाना पीपलोदा जावरा, मन्दसौर नीमच, निम्बाहेडा चित्तौड भीलवाडा गुलाबपुरा विजयनगर आदि क्षेत्रों को पावन करते व अनेक संत सतियों से मिलकर श्रमण संघ को सुदृढ़ बनाने के लिए उनसे विचार विनिमय करते रहे। यहां से आप नया शहर पधारे, यहां पर ज्योतिर्विद स्थविर मुनि श्री कस्तूरचन्दजी म० 'मरुधर केसरी' श्री मिश्रीमलजी म० 'मधुकरजी" आदि अनेकों संतों से, मिलन हुआ और सम्मेलन की सफलता के लिए कार्यक्रम निर्धारित किया गया। नया शहर से आप अजमेर पधारे। वयोवृद्ध मंत्रीजी श्री पन्नालालजी म०, ज्योतिर्विद स्थविर मुनि श्री कस्तूर चन्दजी म०, कवि रत्न उपाध्याय श्री अमर मुनिजी म०, उपाध्याय श्री हस्तिमल जी म०, मरुधर केसरी मिश्रीमल जी म०, मालव केसरी श्री सौभाग्यमलजी म०, 'मधुकर" मिश्रीलालजी म०, मंत्री पंडित सुखचन्दजी म०, मंत्री श्री हीरालालजी म०, मंत्री पुष्कर मुनिजी म०, मंत्री मुनि अम्बालाल जी म०, योग निष्ठ फूलचन्द्र जी म०, पं० मुनि केवल मुनिजी, पं० अशोक मुनिजी पं०, उदय मुनिजी, पं० कन्हैयालाल जी म०, तपस्वी श्री लाभचन्दजी म० पं० समीर मुनिजी म० आदि अनेक मुख्य २ मुनि वृन्द अजमेर पधारे गए।

महावीर जयकार की गगनभेदी ध्वनि के साथ सम्मेलन की कार्यवाही चालू हुई। सब प्रथम प्रान्तिक ... समस्याओं का समाधान किया गया। इस प्रकार शास्त्र और श्रावक अनुसार श्रमण संघीय समाचारी का निर्धारण करते हुए परिमार्जित एवं संशोधित किया। और अन्त में चतुर्विध संघ की साक्षी में महामान्य चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज को वि० सं० २०२१ फाल्गुन शुक्ला ११ को आचार्य पद प्रतीक चादर समर्पित करने का समय निश्चित किया गया।

राज्याभिषेक करते समय जैसे बादशाहों को ताज आदि पहनाने की परम्परा देखने में आती है वैसे ही जैन समाज में आचार्य उपाध्याय आदि पद प्रदान करते समय पद प्रतीक-स्वरूप चादर ओढ़ाने की परम्परा पाई जाती है। चतुर्विध संघ का अर्थ है साधु साध्वी श्रावक और श्राविका। जिस महापुरुष को आचार्य पद की चादर ओढ़ाई जाती है, उस के सम्बन्ध में चतुर्विध संघ को यह आस्था होती है कि यह महापुरुष आज से संघ का आचार्य है, शास्ता है, अधिशास्ता है, संचालक है, सर्वेसर्वा है। संघ ने अपना आध्यात्मिक नेतृत्व आज से इस महापुरुष के हाथों सौंप दिया। मैं कह रहा था कि अजमेर में हो रहे मुनि सम्मेलन ने महामान्य चरितनायक श्री जी का आचार्य-पद प्रतीक चादर ओढ़ाने का समय निश्चित कर दिया और निश्चित समय पर चतुर्विध संघ ने महामहिम चरितनायक आचार्यश्री को पद-प्रतीक चादर ओढ़ा दी। जिस समय चादर ओढ़ाई जा रही थी वह दृश्य कुछ निराला ही था। उसे शब्दों की सीमित रेखाओं में व्यक्त करना अत्यधिक कठिन है। यदि संक्षेप में कहें तो उत्साह उल्लास-हर्ष ठाठें मार रहा था। आचार्य पद महोत्सव के पंडाल का कण कण आनन्द विभोर हो उठा था। बच्चा बच्चा भगवान् महावीर के जयकार बोल रहा था, प्रातः स्मरणीय आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की जय हो, इस प्रकार के उच्च स्वरों से आकाश को गुंजाया जा रहा था।

महामान्य चरितनायक आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के पुण्योत्कर्ष की गाथा कितनी चित्ताकर्षक है? एक दिन भुसावल में आप ऋषि-सम्प्रदाय के युवाचार्य बने।

पश्चात् पाथर्डी में आपको आचार्य बनाया गया। तदनन्तर ब्यावर में पांच सम्प्रदायों ने मिलकर अपना प्रधानाचार्य चुना। उसके बाद सादड़ी वृहद

शीले सर्प न आभडे, शीले शीतल आग।
शीले हरि करि केसरी, भय जावें सब भाग ॥२॥

हिन्दी का कवि कह रहा है, दुनिया के लोगों! शील एक पवित्र रत्न है। संसार का कोई अन्य रत्न इस रत्न का मुकाबला नहीं कर सकता। इसके सामने सब रत्न नगण्य हैं, तुच्छ हैं। यह सर्वोत्कृष्ट है। शील की छाया बड़ी शीतल है, सुखद है, दुःख परिहारक है। इसके नीचे तीनों लोक की समस्त सम्पत्ति निवास करती है। तीन लोक का ऐसा कोई ऐश्वर्य या वैभव नहीं है जो शील के आराधक मनुष्य को सम्प्राप्त न हो सके। जहाँ शील की परि-पालना है, उपासना है, आराधना है, वहाँ सर्प का विष कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता। वह कितना भयंकर एवं भयावह हो, पर शील की शक्ति के सामने उसका बल समाप्त हो जाता है। जहाँ शील की पूजा होती है, वहाँ आग भी अपना तेज खो बैठती है। आग की प्रचण्ड ज्वालाएँ भी शीलवान को हानि नहीं पहुँचा सकती। जहाँ शील के गीत गाए जाते हैं, शील का ही स्वर गूँजता है, वहाँ सिंह जैसा हिंसक जीव भी हिंसा वृत्ति छोड़कर अहिंसक बन जाता है। शील के प्रकाश के आगे नरक का अन्धकार कहाँ?

ब्रह्मचर्य की महिमा अपरम्पार है। यह शक्तियों का एक विलक्षण अक्षय भण्डार है। ऋद्धि-सिद्धियों का पवित्र स्थान है। आश्चर्य जनक चमत्कारों का अपूर्व सागर है। ब्रह्मचर्य की अपूर्व शक्तियों का परिचय प्राप्त करने के लिए अपने अध्यात्म पुरुषों की जीवनियों को देखा जा सकता है। बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है, आधुनिक युग के महापुरुष हमारे मान्य चरित-नायक, आचार्य सम्राट्, पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के बाल-ब्रह्मचारी जीवन को ही देख लीजिए। इनके पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन ने ऐसे ऐसे आध्या-त्मिक चमत्कार दिखलाए हैं, कि जिसे सुनकर मनुष्य आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रहता। इन चमत्कारों से ब्रह्मचर्य की महान् चमत्कारपूर्ण शक्तियों का भलीभाँति परिचय प्राप्त हो जाता है। चमत्कारपूर्ण घटनाएँ तो अनेकों हैं, परन्तु विस्तार भय से सभी का उल्लेख नहीं किया जायगा, केवल पाठकों की जानकारी के लिए कुछ एक घटनाओं का वर्णन किया जायगा।

वचनसिद्धि का चमत्कार

हमारे मान्य चरितनायक, आचार्य-सम्राट्, पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की सेवा में एक शास्त्रीजी रहते हैं। नाम है--पं० श्री नारायण

२१

आध्यात्मिक चमत्कार

धन जन पृथ्वी आदि भौतिक पदार्थों का परित्याग कर देना, इतना कठिन कार्य नहीं, जितना विषय-वासना को क्षीण करना कठिन है। वस्तुतः कामदेव के प्रभाव से बचना बड़ा मुश्किल काम है। संसार में अपनी शक्ति की धाक जमानेवाले और समर आंगन में भी दो हाथ करनेवाले योद्धा जानता है कि कामदेव के ... गुण है। इस के सामने वे भी घुटने टेकते दिखाई पड़ते हैं। अतः है, अनुभवी महापुरुषों ने ब्रह्मचर्य को इसी दृष्टि से अनिवार्य व्रत प्रतिपादित किया है।

मनसा वचसा और कर्मणा या त्रिविध ब्रह्मचर्य की विशुद्ध परिपालना एवं आराधना करते हैं, उनका जीवन कितना महान् एवं लोकप्रिय बन जाता है? इस सम्बन्ध में श्रमण मुनि भगवान् महावीर कितनी सुन्दर बात फरमाते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र सोलहवां अध्याय की १६ वीं गाथा देखिए।

देव दाणव गन्धव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बंभयारिं नमंसंति दुक्करं जे करंति तं॥

विश्ववन्द्य भगवान महावीर फरमाते हैं कि जो लोग दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत की परिपालना करते हैं, उनके चरणों में देवता-दानव, गंधर्व-यक्ष राक्षस और किन्नर आदि सभी दैविक शक्तियाँ झुक जाती हैं। वे ब्रह्मचारी के चरणों की रज लेकर अपने आपको धन्य मानते हैं।

ब्रह्मचर्य की महिमा

हिन्दी के अनुभवी कवि ने यह कहा है --

शील रतन मोटो रतन, सब रतनों की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन॥१॥

शीले सर्प न आभडे, शीले शीतल आग।
शीले हरि करि केसरी, भय जावे सब भाग॥२॥

हिन्दी का कवि कह रहा है, दुनिया के लोगों! शील एक पवित्र रत्न है। संसार का कोई अन्य रत्न इस रत्न का मुकाबला नहीं कर सकता। इसके सामने सब रत्न नगण्य हैं, तुच्छ हैं। यह सर्वोत्कृष्ट है। शील की छाया बड़ी शीतल है, सुखद है, दुःख परिहारक है। इसके नीचे तीनों लोक की समस्त सम्पत्ति निवास करती है। तीन लोक का ऐसा कोई ऐश्वर्य या वैभव नहीं है जो शील के आराधक मनुष्य को सम्प्राप्त न हो सके। जहाँ शील की परिपालना है, उपासना है, आराधना है, वहाँ सर्प का विष कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता। वह विषधर भयंकर सर्प अजगर हो, पर शील की शक्ति के सामने उसका बल समाप्त हो जाता है। जहाँ शील की पूजा होती है, वहाँ आग भी अपना तेज खो बैठती है। आग की प्रचण्ड ज्वालाएँ भी शीलवान को हानि नहीं पहुँचा सकती। जहाँ शील के गीत गाए जाते हैं शील का ही स्वर गूंजता है, वहाँ सिंह जैसा हिंसक जीव भी हिंसा वृत्ति छोड़कर अहिंसक बन जाता है। शील के प्रताप के आगे नतमस्तक [illegible] ?

ब्रह्मचर्य की महिमा अपरम्पार है। यह शक्तियों का एक विलक्षण अक्षय भण्डार है। ऋद्धि सिद्धियों का पवित्र स्थान है। आश्चर्य जनक चमत्कारों का अपूर्व सागर है। ब्रह्मचर्य की अपूर्व शक्तियों का परिचय प्राप्त करने के लिए अपने अध्यात्म पुरुषों की जीवनियों को देखा जा सकता है। बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है आधुनिक युग के महापुरुष हमारे मान्य चरित-नायक, आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के बाल ब्रह्मचारी जीवन को ही देख लीजिए। इनके पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन ने ऐसे ऐसे आध्यात्मिक चमत्कार दिखलाए हैं, कि जिन सुनकर मनुष्य आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रहता। इन चमत्कारों से ब्रह्मचर्य की महान् चमत्कारपूर्ण शक्तियों का भलीभांति परिचय प्राप्त हो जाता है। चमत्कारपूर्ण घटनाएँ तो अनेकों हैं, परन्तु विस्तार भय से सभी का उल्लेख नहीं किया जायगा, केवल पाठकों की जानकारी के लिए कुछ एक घटनाओं का वर्णन किया जायगा।

वचनसिद्धि का चमत्कार

हमारे मान्य चरितनायक, आचार्य-सम्राट्, पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की सेवा में एक शास्त्रीजी रहते हैं। नाम है – पं० श्री नारायण

गुरुदेव का शिष्य बम्बई में ३००) माहवार वेतन पाता है और सदा आप
सहित वंदना-पत्र भेजता है।

× × ×

(२) वि० सं० २०१५ की बात है। बाम्बोरी (महाराष्ट्र) में महाम
चरितनायक, आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के नेतृत्व
सरसबाई नामक एक बहन की दीक्षा हो रही थी। दीक्षा महोत्सव बड़े समार
के साथ सम्पन्न होना था। बाहर से भी हजार, पन्द्रह सौ के लगभग दर्शना
लोगों के आने की आशा थी। परिणाम स्वरूप बहन के परिवार ने २०
लोगों के लिए भोजन व्यवस्था कर रखी थी। समय की बात समझिए,
बाहरी लोग अनुमान से बढ़कर आ गए करीब-२ पांच हजार की संख्या में
प्रबन्धकों के सामने बड़ी जटिल समस्या आ गई, प्रबन्ध २००० का कि
हुआ और है, आ गए ५००० इतने अधिक आए हुये व्यक्तियों के भोजन इ
शीघ्रता में नहीं हो सकता था। सब लोग बड़ी दुविधा में थे। सबको
चिन्ता सता रही थी कि बाहर के तथा गांव के लोग क्या कहेंगे? क्या दीक्षा
महोत्सव करवाने की ही लगन थी? प्रबन्ध भी तो करना था। अपनी मान
हानि की आशंका से वैरागिन का परिवार घबरा गया। पंजाब प्रदेश में एक
किम्वदन्ती है—"मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक" इसके अनुसार वैराग्यवती के
पिता श्री रतनचन्द मुणोत चरितनायक श्री जी महाराज की सेवा में पहुँचे।
उन्होंने गुरुचरणों में करबद्ध निवेदन किया --

गुरुदेव! वैराग्यवती की माता की यह भावना है कि लड़की को दीक्षा
देने से पूर्व आप श्री स्वयं हमारे घर में उसे दर्शन देने की कृपा करें।

कृपालुता के सागर पूज्य चरितनायक श्री लड़की के पिता की बात
सुनकर बोले—वैरागिन की माता की भावना अवश्य पूर्ण की जाएगी। उसी
समय चरितनायक सरसबाई को दर्शन देने के लिए चल दिए। घर पहुँचकर
वैराग्यवती को दर्शन दिए, मंगल पाठ सुनाया। जब आप श्री वापस आने लगे,
तो अवसर पाकर लड़की के पिता ने चरितनायक के सामने अपनी दुविधा को
कथा रखी और व्याकुलता पूर्ण स्वर में निवेदन किया। महाराज! इस समय
हमारे सम्मान का प्रश्न उपस्थित है। हमारी इज्जत आप श्री की दया से ही
बच सकती है।

अपने प्रिय श्रावक की व्याकुलता पूर्ण वार्ता सुनकर पूज्य चरितनायक
श्री ने साधु-भाषा में फरमाया, कि श्रावक जी! जैसे मक्खन का सेवन करने

से कभी किसी के दाँत नहीं टूटते, वैसे पवित्र और विशुद्ध अध्यात्म-भावना से किये गए कार्य में कभी अपमान नहीं हुआ करता। भोले श्रावक ! कभी धर्म के भंडार भी खाली हुए हैं ? वे तो सदा भरे ही रहते हैं। मन को शान्त रखो, जहाँ गुरुदेव का शरणा है, वहाँ आनन्द ही आनन्द है।

चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज श्रावक को सान्त्वना पूर्ण वचन कहकर पधार गए। पाठक विस्मित होंगे अधिक आए हुए हजारों लोगों के भोजन कर लेने के अनन्तर भी भोजन भंडार खाली नहीं हुआ, अपितु पूज्य चरितनायक श्री के कथनानुसार धर्म का भंडार अटूट एवं परिपूर्ण ही रहा।

× × ×

(३) एक बार जैन धर्म-दिवाकर आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज का चातुर्मास इनकी जन्मभूमि चिचोंडी में था। चातुर्मास काल में औरंगाबाद जिले के भाजल गाँव से सुश्राविका सुन्दरबाई माकला का एक दर्शनार्थी परिवार आया। सम्पन्न परिवार होने के कारण साथ में पर्याप्त सामान था। चिचोंडी ग्राम छोटा था, अतः स्वल्प समय ही मोटर वहाँ रुकती थी। सामान अधिक होने के कारण उतारने में गड़बड़ हो गई। एक बॉक्स बदल गया। बॉक्स में बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण थे। हजारों की सम्पत्ति थी। वह बॉक्स (पेटी) मोटर में ही रह गया और उसके बदले किसी दूसरे बॉक्स को उठा लिया गया। स्थानक में जाकर जब दूसरे दिन बॉक्स देखा, तो सबके होश हवास उड़ गए। हजारों की सम्पत्ति का स्मरण कर सब सिहर उठे। तत्काल सारा परिवार पूज्य चरितनायक श्री की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने अपने बॉक्स के बदल जाने की बात सुनाई। अपने भक्त-मण्डल को उदास, हताश, आकुल-व्याकुल देखकर शांति की प्रतिमूर्ति श्रद्धेय चरितनायक श्री फरमाने लगे—

"भाई ! यह सन्तों का दरबार है। यहाँ चिन्ता, घबराहट या व्याकुलता का क्या काम ? धैर्य से काम लो। शुभ कर्म यदि साथी है, तो गई वस्तु भी मिल जाती है।"

चरितनायक श्री जी के इस कथन से आगन्तुक दर्शनार्थी परिवार को शान्ति मिली और उनकी अन्तरात्मा को विश्वास हो गया कि अब गुरुदेव के वचन हो गए हैं, बॉक्स अवश्य मिल जायेगा। हमारे सहृदय पाठक यह जानकर चकित होंगे कि चिचोंडी गाँव के मुखिया लोगों ने जब प्रयत्न किया, वे मोटर के [illegible] दर्शनार्थी [illegible]

वॉला बाक्स ले आए। दर्शनार्थी परिवार ने जब उसे खोलकर देखा, तो उसमें जो रखा था, वह (८०० रुपया और वस्त्राभूषण) ज्यों का त्यों पड़ा मिला। रत्ती भर कोई नुकसान नहीं हुआ था। प्राप्त रुपयों का बाईजी ने धर्मार्थ दानकर दिया। पूज्य चरित्रनायक श्री का "सन्तों के दरबार में चिन्ता का क्या काम ?" यह कथन सवा सोलह आने सत्य प्रमाणित हुआ।

× × ×

(४) एक बार हमारे मान्यवर चरितनायक आचार्यदेव पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज राजस्थान में विचरण कर रहे थे। एक गाँव में विराजमान थे, किसी प्रश्न को लेकर साथी सन्तों से वार्तालाप चालू हो गया। वार्तालाप में एक श्रावक की आवश्यकता अनुभव हुई। परन्तु उस समय वह श्रावक कैसे मिल सकता था ? समय की बात समझिए कि अचानक पूज्य चरितनायक श्री ने यह फरमा दिया कि मेरी अन्तरात्मा कहती है, वह श्रावक आज सायंकाल तक अपने पास आ जायेगा। चरितनायक श्री की बात सुनकर सभी साथी मुनिराज हैरान थे। सब कह रहे थे कि उस श्रावकको कोई सूचना नहीं दी गई, उसका कोई पत्र भी नहीं आया, फिर वह यहाँ से बहुत दूर रहता है, और हम अपने विहार में हैं, ऐसी दशा में वह श्रावक सायंकाल तक कैसे आ सकता है ? सन्तों के प्रश्न का समाधान करते हुए चरितनायक श्री बोले— सायंकाल आने दो उसके बाद देखेंगे। चरितनायक श्री के ऐसा कहने पर सभी साधु मौन रह गए और सायंकाल की प्रतीक्षा करने लगे। धीरे-धीरे दिन का चतुर्थ प्रहर आया, उसका मध्य भाग समाप्त ही हुआ था कि यह देखकर सब साधु दंग रह गये कि जिस श्रावक के आने के सम्बन्ध में पूज्य प्रवर चरितनायक, श्रद्धेय श्री आनन्द ऋषिजी महाराज ने फरमाया था, वही श्रावक सन्मुख चला आ रहा है. श्रद्धेय चरितनायक श्रीकी वचन-सिद्धि का यह निराला चमत्कार देखकर सभी मुनिवर आश्चर्य चकित थे।

मंगल पाठ का चमत्कार

आवश्यक सूत्र के श्रमणसूत्र में निम्नोक्त मंगल पाठ आता है—

चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहूमंगलं केवलिपण्णत्तो-धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू-लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि॥

*चार शरण दु:खहरण जगत में, और न शरणा कोई होगा।
जो भव्य प्राणी करे आचरण, उसका अमर अमर पद होगा॥

इस मंगल पाठ को मंगलीक इस नाम से व्यवहार किया जाता है। किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ में इस मंगल पाठ के पढ़ने की परम्परा है। दु:ख वेला में विशेष रूप से पढ़ा जाता है। यह पाठ बड़ा प्रभाविक समझा जाता है। सुनाने वाला जितना अधिक चारित्रशील होता है, उतना ही प्रभाव अधिक आश्चर्यजनक प्रमाणित होता है। प्रस्तुत प्रकरण में चरितनायक श्री के जीवन में घटी एक घटना निवेदन करने लगा हूँ। इसमें पाठकों को इनके मंगल पाठ का अपूर्व चमत्कार प्रभाव देखने को मिलेगा।

(५) वि० स० २०२३ की बात है, मालेरकोटला (पंजाब) में श्री राममूर्तिजी जैन लोहटिया (लोहेवाले) बीमार हो गए। इनकी गर्दन की डिस्क में दर्द हो गया था। डॉ० श्री नरेन्द्रदासजी अग्रवाल ने इनका उपचार करते हुए गर्दन पर प्लास्टिक का पट्टा बांध दिया गया था, यह पट्टा ६ महीनो तक रखना था। यह गर्दन सीधी रखने के उद्देश्य से बांधा गया था। डॉ० का कहना था कि जीवन भर चारपाई छोड़नी होगी पाट या भूमि पर सोना पड़ेगा। श्री राममूर्तिजी बड़े परेशान थे। इनको अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई देता था, किन्तु सौभाग्य की बात समझिए, हमारे चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० मालेरकोटला पधार गए। श्री राममूर्तिजी भी चरितनायक श्री के दर्शन करने आये। उनके वन्दन करते समय अचानक चरितनायक श्री का हाथ उनकी गरदन को छू गया और चरितनायकजी ने इनको मंगल-पाठ सुनाया। श्री राममूर्तिजी सुनाया करते हैं कि आचार्य श्री जी के हस्त स्पर्श होने से तथा मंगल-पाठ श्रवण करने की देर थी कि शान्ति होनी आरम्भ हो गई और धीरे-२ गर्दन खूब ठीक हो गई।

× × ×

वि० स० २०१५ में महामान्य चरितनायक आचार्य-सम्राट्, पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज का चातुर्मास पाथर्डी (अहमदनगर) में था। चातुर्मास काल में चादा-निवासी श्रीमान् सेठ तिलोकचन्दजी गुदेचा आप श्री के दर्शनार्थ आए। गुन्देचा साहब एक अच्छे गुरु-भक्त श्रावक थे। इन्होंने एक नियम ले रखा था। ये प्रतिवर्ष एक मास तक महामान्य चरितनायक पूज्य श्री

* यह पाठ श्रमणसूत्र में नहीं है तथापि बोलने में आता है

आनन्द ऋषिजी महाराज के चरणों में रहकर सेवा का लाभ लिया करते थे। अपने नियमानुसार वे इस वर्ष भी पूज्य चरित्रनायक श्री जी की सेवा में उपस्थित हुए। अपने गाँव से बैलगाड़ी द्वारा पाथर्डी आए थे। पाथर्डी में रात्रि को पहुँचे। समय की बात समझिए कि बैलगाड़ी से जब उनका एक मजदूर सामान उतार रहा था तो किसी विषधर सर्प ने उसे डंक दे मारा। डंक लगते ही मजदूर तड़प उठा। उसकी स्थिति गम्भीर होते देख गुन्देचाजी घबरा गए। सामान किसी अन्य व्यक्ति को सौंपकर वे तत्काल वहाँ से चले और सीधे पूज्य चरित्रनायक श्री आनन्द ऋषिजी महाराज की सेवा में आ गए और विषधर के डंक की बात बताकर नम्रतापूर्वक निवेदन करने लगे। गुरुदेव! यह मजदूर गरीब आदमी है, इस पर कुछ दया करें। यदि मर गया तो एक परिवार बर्बाद हो जाएगा। आपकी कृपादृष्टि के बिना इसका संरक्षण असम्भव है।

गुन्देचा साहब की विनीततापूर्ण प्रार्थना सुनकर पूज्य गुरुदेव श्री ने उस मजदूर को मंगल-पाठ सुनाना आरम्भ कर दिया। मंगल-पाठ आरम्भ करने की देर थी कि मजदूर को कुछ शान्ति अनुभव होने लगी। धीरे-२ विष का प्रकोप पर्याप्त मात्रा में शान्त हो गया। दूसरे दिन वह पूर्णतया स्वस्थ होकर यथेच्छ भ्रमण करने लगा। उसकी रसना पर यही स्वर गूंज रहा था, कि मुझे जीवन-दान देने वाले पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज हैं।

× × ×

(७) मालेरकोटला में डा० दयाकृष्णजी बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। एक बार इनको हार्ट-अटैक ने आ घेरा, स्थिति गम्भीर हो गई यहाँ तक कि लोगों में इनके प्राणान्त की अफवाह फैल गई। इन दिनों चरित्रनायक मालेरकोटला में ही विराजमान थे। लोगों के कहने पर आप श्री डॉक्टर साहब को मंगल पाठ सुनाने गए। पाठक विस्मित होंगे, आप श्री के स्तोत्र सुनाने के साथ ही डॉ० साहब अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगे। चरित्रनायक के स्तोत्र ने संजीवनी का काम किया।

ऊपर की पंक्तियों में जैन-धर्म दिवाकर, आचार्य-सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के आध्यात्मिक चमत्कारों की संक्षेप में झांकी प्रस्तुत की गई है। महाराज श्री का तो समस्त जीवन ही चमत्कारमय है। मिश्री जिधर से चखो, उधर से ही माधुर्य प्राप्त होता है। इसी भांति महामान्य आचार्य सम्राट् श्री के जीवन को जिधर से देखो, उधर ही कुछ विलक्षणता दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः ब्रह्मचर्य की महिमा अपरम्पार है। इसका किनारा कभी उपलब्ध नहीं किया जा सकता।

२२

चातुर्मास तालिका

चातुर्मास साधु-जीवन की महत्त्वपूर्ण मर्यादा है। इस मर्यादा के अनुसार साधु साध्वी चातुर्मास में नियमित रूप से एक स्थान पर ठहरते हैं। यदि कोई विशेष कारण न हो तो चार-मास तक विहार नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त चातुर्मास में कोई वस्त्र नहीं लिया जा सकता रुई, धागा तक भी ग्रहण करने का निषेध है। चातुर्मास की इस मर्यादा का प्रत्येक छोटे-बड़े साधु को पालन करना होता है। मार्ग शीर्ष कृष्णा प्रतिपदा से लेकर आषाढ़ी पूर्णमासी तक इन ८ महीनों में साधु-साध्वी यथेच्छ यत्र-तत्र विहार तथा वस्त्रादि का आदान कर सकते हैं। परन्तु श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से लेकर कार्तिक-पूर्णिमा तक चार महीने में वस्त्र धागे आदि ग्रहण किये बिना एक स्थान धर्माराधना में व्यतीत करते हैं। हमारे चरितनायक आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज ने भी अपने जीवन में इस मर्यादा का सम्यग्रीत्या परिपालन किया है। इन्होंने अपने जीवन में कहाँ २ चातुर्मास किये ? अपने पवित्र चरणों द्वारा किस २ भूभागको पावन बनाया ? अहिंसा, सत्य, संयम के दीप जगाकर किस २ के अन्तर्जीवन को ज्ञान के आलोक से आलोकित किया ? प्रस्तुत प्रकरण में हम इन्हीं प्रश्नों का समाधान करेंगे।

परम श्रद्धेय आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज के अब तक चातुर्मासों की तालिका इस प्रकार है—

चातुर्मास

संख्या	वि०सं०	क्षेत्र नाम	संख्या	वि०सं०	क्षेत्र नाम
१	१९७१	मनमाड	२	१९७२	लासलगाव
३	१९७३	वांबोरी (खानदेश)	४	१९७४	म्हसा
५	१९७५	बेलवंडी	६	१९७६	आलकुटी
७	१९७७	अहमदनगर	८	१९७८	पाथर्डी
९	१९७९	कलम (निजाम)	१०	१९८०	अहमदनगर

वन् १९७४

महामान्य चरितनायक के पूज्य गुरुदेव श्रद्धेय, श्री रत्न ऋषिजी महा-
राज ने इस वर्ष का चातुर्मास घोडनदी माना था। परन्तु वहाँ प्लेग की
र्व मारी फैल गई। फलत घोडनदी के दीर्घदर्शी श्रावकों की विनती मे यह
चातुर्मास म्हसा नामक गाव मे किया। यह क्षेत्र छोटा है, परन्तु लोगो मे
धार्मिक अनुराग पर्याप्त था। इसी धार्मिक अनुराग के कारण ही महाराष्ट्र-
के जाने-माने इस महापुरुष का चातुर्मास इस छोटे से गाव मे सम्पन्न हो
सका था। पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी महाराज ने इस चातुर्मास मे अठाई
तप किया था। इसी अवसर पर एक आश्चर्य जनक घटना सघटित हुई। एक
बडा भारी विषधर कही से निकलकर पूज्य गुरुदेव श्री रत्न ऋषिजी महाराज
के सामने आ गया। लोगों ने उसे पकडने की इच्छा प्रकट की। परन्तु पूज्य
श्री ने ऐसा करने से लोगो को रोक दिया। प्रत्युत इन्होंने स्वयं अपना रजो-
हरण उसके ऊपर रख दिया। रजोहरण रखने की देर थी कि स्वल्प समय मे
वह विषधर अदृश्य हो गया। आज भी म्हसा के वयोवृद्ध लोग इस घटना को
बडे आश्चर्य के साथ सुनाते है।

यही पर एक दूसरी घटना भी बनी। एक हिरण का बच्चा जगल से
दौडता हुआ आया और महाराज श्री जहाँ व्याख्यान फरमाते थे उसी पाट के
नीचे बैठ गया। गावमे अनेकों कुत्ते हैं उनमे बचकर यह कैसे आ गया?
इस बात का प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य था। दया प्रिय श्रावको ने उसके
सामने खाने-पीने की वस्तुएं रखी किन्तु उसने कुछ भी ग्रहण नही किया।
चुपचाप बैठा रहा। रात्रि को कब उठकर किधर को चला गया, यह किसी
को देखने मे नही आया। इस आश्चर्य भरी घटना को आज भी लोग याद
करते हैं।

इसी चातुर्मास मे सेठ रत्नचन्दजी जमराजजी छाजेड ने उस समय
के प्रसिद्ध "केसरी" नामक समाचार पत्र मे विज्ञापन देकर पूना मे श्री सिद्धे-
श्वर शास्त्री चित्राव को बुलाया था। हमारे चरितनायक, मुनि श्री आनन्द
ऋषिजी महाराज इन्ही शास्त्रीजी से सिद्धान्त कौमुदी पढा करते थे। एक-
बार घोडनदी मे चरितनायक श्री पढने से हताश हो गए इन्होने संस्कृत व्या
करण पढने मे इन्कार कर दिया। परन्तु आदर्श श्रावक श्रीमान सेठ नानचन्द
जी दुगड के समझाने पर इन्होंने पुन. सिद्धान्त कौमुदी का पढना आरम्भ किया

था। इस सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक पीछे पृष्ठ १५१ पर वर्णन किया जा चुका है।

चरितनायक के मान्य गुरुदेव जी महान् प्रतापी महापुरुष थे। जिसपर इनकी दया हो जाती थी, उसकी जीवन नैय्या किनारे लग जाती थी। इस चातुर्मास में यह सत्य साकार हो गया था। आप श्री ने जिस मकान में चातुर्मास किया था। उसके पिछले भाग में अनाज (ज्वार) भरा हुआ था। अनाज का भाव बढ़ जाने से मालिक मकान छाजेड़जी उसे बेचना चाहते थे। उन्होंने महाराज श्री से निवेदन किया, गुरुदेव! यदि आप एक दिन के लिए दूसरे स्थान पर पधार जाएँ, तो हमारा काम हो सकता है। मालिक मकान की बात सुनकर महाराज श्री फरमाने लगे—यदि माल बेचने का इतना विचार था, तो आपने चातुर्मास के लिए दूसरा स्थान ही दे देना था। महाराज श्री के ऐसा कहने पर उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि आप यहीं विराजें, आपको कष्ट नहीं दूँगा। आपकी दया चाहिए, माल तो बाद में भी बिक जायेगा। पाठक विस्मित होंगे कि चातुर्मास के अनन्तर जब गृहस्वामी ने अनाज बेचा तो उसने उससे ४ गुना लाभ हुआ। वस्तुतः महाराज श्री का पुण्य-प्रताप कुछ निराला ही था।

संवत् १९७५

चरितनायक श्री का यह पाँचवाँ चातुर्मास था। यह चातुर्मास इन्होंने अपने गुरुदेव की छत्र-छाया तले घोड़नदी में किया था। वहाँ के श्रावकों में फूट थी, दो धड़े थे। किन्तु गुरुदेव पूज्य चरण श्री रत्न ऋषिजी महाराज के अनुग्रह से यहाँ पर शान्ति हो गई थी। चातुर्मास श्री लालचन्दजी पीतलिया के विशाल भवन में कराया गया था। इस वर्ष भयंकर दुष्काल पड़ा था। परिणाम स्वरूप अहिंसा और दया की सजीव मूर्ति महामना पूज्य पाद श्री रत्न ऋषि जी म० के जीव रक्षा प्रधान उपदेशों से प्रभावित होकर स्थानीय तथा पार्श्ववर्ती गाँवों की जनता ने लगभग २००० रुपये एकत्रित किए। इस धन राशि से निर्धन जनता के लिए अन्न-वस्त्र की व्यवस्था की गई और गौ आदि पशुओं के लिए चारे का प्रबन्ध किया गया। इस तरह यह चातुर्मास परोपकार की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा।

इस चातुर्मास में चरितनायक मुनि श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के अध्यापन के लिए काशी से एक पण्डितजी बुलाए गए थे। किन्तु वे चरितनायक का अध्यापन-कार्य न कर सके। फलतः चातुर्मास के पश्चात् उनका

अध्यापन कार्य बन्द करा दिया गया । चरितनायक के शिक्षण को सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिए गुरुदेव पूज्य श्री रत्न ऋषिजी महाराज ने पूना की ओर विहार किया । पूना में पहुँचकर वहाँ की संस्कृत पाठशाला के एक विद्वान् से वार्ता की, किन्तु उसने भी पढ़ाने से इकार कर दिया । तदनन्तर "केसरी" पत्रिका मे विज्ञापन दिया । अन्त में राजकीय वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय से प० राजधारी त्रिपाठी शास्त्री को बुलाया गया और इनकी देख-रेख मे महामान्य चरितनायक का अध्यापन कार्य आरम्भ हुआ ।

संवत् १९७६

इस वर्ष का चातुर्मास आलकुटी (अहमदनगर) गाव मे था । चातुर्मास काल समाप्त होने के बाद मान्य-चरितनायक अपने पूज्य गुरुदेव श्री रत्न ऋषिजी म० के साथ वडनेरा, दरियाबाई पाडली आदि अनेकों क्षेत्रो को पावन करते हुए अहमदनगर मे पधारे अहमदनगर मे पहले विराजित महासती जी श्री रामकुवरजी म० ने अपनी शिष्य-मण्डली के साथ मुनिमण्डल का भाव भरा स्वागत किया । हमारे मान्य चरितनायक श्री आनन्द ऋषिजी म० व्याख्यान के क्षेत्र मे श्री गणेश यही प्रारम्भ किया था । अहमदनगर मे सुश्रावक सेठ किसनदासजी मूथा आदि लोग जैनागमो के बड़े गभीर विद्वान् समझे जाते थे । उनके सामने व्याख्यान देना साधारण कार्य नही था, परन्तु हमारे चरितनायक जी प्रथम प्रयास मे ही पूर्णतया सफल रहे ।

व्याख्यान देने का अभ्यास हो तो कोई चिन्ता की बात नही । किन्तु जिसने व्याख्यान कभी नही दिया हो, उसका प्रथम ही अवसर हो और वह देना भी बड़े, अनुभवी लोगों के सामने तो उसकी बड़ी जटिल समस्या होती है । परन्तु श्रद्धेय चरितनायक ने अपने प्रतिभा प्रकर्ष से उस बड़ी समस्या को सुगमता से समहित कर लिया था । व्याख्यान मे आपने औपपातिक सूत्र सुनाया था ।

संवत् १९७७

इस वर्ष का चातुर्मास अहमदनगर मे था । व्याख्यान का सब उत्तरदायित्व (भार) हमारे चरितनायक प० रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० पर था । मध्याह्न मे शान्त स्वभाव महासतीजी श्री रामकुवरजी म० आदि महासतियों की उपस्थिति मे शास्त्रज्ञ सेठ श्री किसनदासजी मूथा, श्री चदनमलजी पीतलिया आदि विद्वान् श्रावकों के साथ शास्त्रीय वार्तालाप किया जाता था । इस चातुर्मास मे चरितनायक ने साहित्य दर्पण, अष्टादश स्मृतियों आदि ग्रन्थो का अध्ययन किया था । लगातार चार महीने अहिंसाधर्म का ध्वज लहराकर

चरितनायक श्री ने अपने पूज्य गुरुदेव, श्रद्धेय श्री रत्न ऋषिजी म० के साथ अहमदनगर से प्रस्थान कर दिया। अनेकानेक क्षेत्रों को पावन बनाते हुए चरितनायक श्री पाथर्डी पधारे। पाथर्डी की भावुक जनता ने धर्मध्यान का खूब लाभ लिया।

चरितनायक के पूज्य गुरुदेव श्री रत्न ऋषिजी म० ने अशिक्षित समाज के बालकों की बेकारी को देखकर जनता को एक जैन पाठशाला स्थापित करने की प्रेरणा की। अन्त में पाथर्डी तथा बाहर के विचारवान श्रावकों की सम्मति से वि० स० १६७३ माघ शुक्ला १८ सोमवार को "श्री जैन ज्ञानफण्ड" नामक सस्था की स्थापना की। सस्था का प्रबध इतनी अनूठी पद्धति से किया गया, कि धनी-निर्धन सभी उसमें सहयोग दे सकते थे। एक आने से लेकर एक रुपये तक मासिक चन्दा ५ वर्ष के लिए रखा गया था।

उस समय यहाँ साहेबराम जी गुगलिया की दुकान पर चिचपूर वाले श्री कुन्दनमलजी गुगलिया के सुपुत्र श्री उत्तमचन्द्रजी रहते थे। चरितनायक श्री के प्रभावपूर्ण आध्यात्मिक उपदेशों से प्रभावित होकर वे ससार की मोह-माया से विरक्त हो गये। इनको वैराग्य होगया। आगे चलकर यही उत्तमचद्र जी नान्दूर (बीड़) गाँव में वि० स० १६७६ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया रविवार के शुभदिन दीक्षित होकर चरितनायक के गुरुभाई बने। इनका नाम श्री उत्तम ऋषिजी रखा गया। दीक्षा का सर्व कार्य श्री भीकमचदजी चुन्नीलालजी, कोटेचा आदि श्रावकों ने किया था।

सवत् १६८०

इस वर्ष "श्री जैन ज्ञान फण्ड सस्था" के सचालकों ने ज्येष्ठ कृष्णा ५ रविवार को चरितनायक के गुरुदेव श्री शास्त्र विशारद प० रत्न श्री रत्न ऋषिजी महाराज के नेतृत्व में पाथर्डी में एक पाठशाला की स्थापना की और इस वर्ष अपने पूज्य गुरुदेव के साथ चरितनायक श्री का चातुर्मास अहमदनगर में सम्पन्न हुआ। मान्यवर मुनिराज श्री जीतमलजी म० ठा० ३ का भी चातुर्मास यहीं था। इस चातुर्मास में महासतीजी श्री रामकु वरजी म० तथा महासती श्री नन्दूजी महाराज आदि २० साध्वी समुदाय महामान्य पूज्य श्री रत्न ऋषिजी म० की सेवा का लाभ ले रही थी। व्याख्यान हमारे चरित नायक, प० रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी महाराज फरमाया करते थे। चरितनायक श्री जब अहिंसा, सत्य का विश्लेषण करते हुए प्राञ्जल भाषा में आपने प्रतिभा के चम-

र प्रस्तुत किया करते, तो एक समय बँध जाता था। अहमदनगर का बच्चा
बच्चा चरितनायक के व्याख्यान की महिमा गाते नहीं थकता था।

संवत् १९८१

इस वर्ष चरितनायक का चातुर्मास परमश्रद्धेय, शास्त्रविशारद, गुरुदेव
श्री रत्न ऋषिजी महाराज तथा ऋषि-सम्प्रदाय के मनोनीत आचार्य शास्त्रो-
द्धारक पं० श्री अमोलक ऋषिजी महाराज की छत्रछाया में करमाला शहर में
हुआ था। महामान्य पं० रत्न श्री रत्नऋषिजी म० की आज्ञा में पहले शास्त्र
विशारद श्री अमोलक ऋषिजी महाराज व्याख्यान फरमाया करते थे। इनके
अनन्तर हमारे मान्यवर चरितनायक पं० रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषि जी म०
का प्रवचन होता था। महापर्व पर्युषण पर बड़ा प्राभाविक कार्यक्रम था।
कर्नाटक, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों से हजारों दर्शनार्थी आए थे। हैदराबाद वाले
रायबहादुर दानवीर सेठ श्री ज्वालाप्रसादजी ने श्री तिलोक जैन पाठशाला
पाथर्डी को ७७०९ रु० दान में दिए थे। अन्य सज्जनों का सब दान तिलोक
पाठशाला को लगभग ८५०० रुपये प्राप्त हुए थे।

संवत् १९८२

का चातुर्मास चांदा (अहमदनगर) में तपस्विनी महासती श्री राज-
कुंवरजी म० आदि ठाणे ४ ने गुरुदेव की सेवा में किया था। स्थानीय जनता
के उत्साह से वहाँ पर एक दीक्षा का कार्य भी सम्पन्न हुआ था।

संवत् १९८३

इस वर्ष का चातुर्मास चरितनायक ने अपने परमाराध्य गुरुदेव पूज्य
चरण श्री रत्न ऋषिजी म० तथा तपोमूर्ति श्री देवऋषिजी म० के साथ भुसा-
वल में किया। आप श्री पचापनी वाडे के विशाल भवन में विराजमान थे।
व्याख्यान का पूर्ण दायित्व चरितनायक, पं० रत्न श्री आनन्द ऋषिजी महाराज
पर था। जैन-जैनेतर श्रद्धालु सभी लोग व्याख्यान का लाभ ले रहे थे। श्रोता-
गण की अधिकता देखकर महापर्व पर्युषण में धर्मप्रेमी श्रीमान् मूलचन्दजी
अग्रवाल की विशाल धर्मशाला में व्याख्यान की व्यवस्था करनी पड़ी थी। इस
चातुर्मास में महामहिम तपस्वी श्री देव ऋषिजी महाराज ने ४० और मुनि श्री
तुला ऋषिजी म० ने १५ दिनों की तपस्या की थी। चरितनायक के साथ
गुरुदेव श्री रत्न ऋषिजी महाराज ने प्रति वर्ष की तरह दो मास तक एकान्तर
तप का आराधन किया। चरितनायक के उपदेशों से प्रभावित होकर महावीर
जयन्ती पर उपस्थित स्थानीय तथा बाहरी जनता ने करमाला कन्यापाठशाला

को ५००रु० आगरा अनाथालय को ५००रु० और श्री तिलोक जैन पाठशाला पाथर्डी को २५०० रु० के लगभग दान दिया था।

संवत् १९८४

इस वर्ष चरित्रनायक प० रत्न मुनि श्री आनन्द ऋषिजी म० के गुरुवर्य समाज भूषण, ऋषि—सम्प्रदाय के समुज्ज्वल रत्न, श्रद्धेय, श्री रत्न ऋषिजी महाराज अस्वस्थ होगए और अलीपुर गांव के श्री विठ्ठल मंदिर के मण्डप में ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी सोमवार के १२ बजे को पूज्य गुरुदेव का स्वर्गवास हो गया। इस सबन्ध मे पीछे पृष्ठ नं० १८४ में विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। जिज्ञासुओं को वह स्थल देख लेना चाहिए।

महामहिम पूज्यपाद श्री रत्न ऋषिजी महाराज का स्वर्गवास हो जाने के कारण चरित्रनायक मुनि श्री आनन्द ऋषिजी महाराज पर सारा उत्तरदायित्व आगया, परन्तु इन्होंने गुरुकृपा से बड़ी योग्यता एवं सफलता के साथ उसे निभाना आरंभ किया। उस समय आप श्री तथा आपके लघु गुरु भ्राता मुनि श्री उत्तम ऋषिजी म० ठा० २ से थे आप दोनों का पहला चातुर्मास हिंगनघाट में था। महापर्व पर्युषण के शुभावसर पर यहां के श्रावकों ने श्री तिलोक जैन पाठशाला पाथर्डी के लिए उदारता के साथ हजारों रुपये दान दिए। तपस्या, जप, आदि धार्मिक अनुष्ठानों की दृष्टि से भी जनता ने पर्याप्त लाभ उठाया था।

संवत् १९८५

इस वर्ष का चातुर्मास सदर बाजार नागपुर था। आपके प्रेरणाप्रदायक प्रभावशाली उपदेशों से आकर्षित होकर यहां की जनता ने परमोपकारी महामान्य, दिवंगत श्री रत्न ऋषिजी म० की पुण्यस्मृति में ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी के दिन "श्री जैन धर्म प्रसारक संस्था" इस नाम की संस्था स्थापित की। इस संस्था ने हिन्दी और मराठी भाषा के अनेकों ट्रैक्ट प्रकाशित किये हैं। आज भी यह संस्था व्यवस्थितरूप से चलती हुई साहित्यिक दृष्टि से समाज की महान सेवा कर रही है।

संवत् १९८६

इस वर्ष चरितनायक श्री आनन्द ऋषिजी महाराज का चातुर्मास अमरावती, म. प्र. था। इस चातुर्मास में "श्री महावीर जैन पुस्तकालय" की स्थापना की गई थी।

संवत् १९९२

इस वर्ष चातुर्मास के लिए मान्य चरितनायक श्री को अहमदनगर वालो तथा कई एक क्षेत्रो की बडी जोरदार विनती थी। किंतु इस वर्ष पूना (खिड़की) मे तेरापन्थी-साधुओं का चातुर्मास होने वाला था। अत चरितनायक श्री ने अन्य सब विनतियो को हटाकर पूना (खिडकी) वालो की विनती का आदर किया और वि० स० १९९२ का चातुर्मास वही किया। इस चातुर्मास मे एक बहुत बडा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। वह था–' धार्मिक पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन" समाज मे धार्मिक सस्थाएँ खुलती जा रही थी, किन्तु उनमे धर्म-शिक्षा के लिए धर्म-पुस्तको का अभाव था। सस्थाओ के सचालक सदा यही कहते सुनाई देते थे, धार्मिक पुस्तकें नहीं हैं। बालको को शिक्षा कैसे दे ? शिक्षा प्रेमी चरितनायक श्री ने इस चातुर्मास मे इस त्रुटि को दूर करने का प्रयास किया। चरितनायक श्री के मार्गदर्शन मे "श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी" की ओर से 'सामायिक प्रतिक्रमण" स्तोत्र-सग्रह थोकडा सग्रह आदि पुस्तके प्रकाश मे आई। इसके अलावा इस वर्ष एक और बहुत महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कार्य सम्पन्न हुआ। वह था एक साथ ६ दीक्षाओ का होना इनमे ५ दीक्षाएँ छोटी थी और एक बडी दीक्षा। ५ दीक्षित व्यक्तियो मे ४ बहिनें थी और एक भाई। बडी दीक्षा एक बहिन ने ग्रहण की थी। सभी दीक्षित व्यक्तियो के नाम इस प्रकार है –

१ –श्री मोतीलाल जी	४ श्री अमृत कुवरजी
२—श्री सुमति कुवरजी	५—श्री सज्जन कुवरजी
३ श्री फूल कुवरजी	६ – श्री वसन्त कुवरजी

श्री मोतीलालजी कावरिया पूना के रहने वाले थे। ये हमारे चरितनायक, बालब्रह्मचारी, पडित रत्न, पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के शिष्य बने और ऋषि सम्प्रदाय मे ये मोती ऋषिजी महाराज के नाम से विख्यात हुए। बहिन सुमतिकुवरजी घोडनदी पूना की थी, इनको दीक्षित करके महासती श्री शातिकुवर जी महाराज की शिष्या बनाया गया। श्री अमृतकुवरजी "चरोली" की रहने वाली थी। इनको महासती श्री शान्तिकुवरजी महाराज के नेश्राय मे रखा गया। श्री सज्जनकुवरजी चिचवड पूना की थीं, इनकी गुरुणी महासती श्री आनन्दकुवरजी महाराज बनाये गये। श्री वसन्तकुवरजी आवलकुटी (अहमदनगर) की थी ये महासती रम्भाकुवर जी महाराज की शिष्या बनीं। श्री फूलकुवरजी म० की बड़ी दीक्षा हुई थी,

सुवर्णकार आदि जैन-जैनेतर भाइयों की भक्ति भावना बड़ी आदरणीय एवं अनुकरणीय रही। सर्व साधारण जनता की सुविधा के लिए व्याख्यान दोपहर को दिया जाता था। प्रातःकालीन व्याख्यान की भांति दोपहर के व्याख्यान में भी सभी धर्मों के लोग बिना किसी भेद भाव के उसमें सम्मिलित होते थे। चातुर्मास के बाद गुरुदेव चरितनायक श्री पूना में पधारे, वहाँ नवयुग सुधारक पंजाब केसरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज का समागम हुआ। चरितनायक श्री जी के साथ बड़ा वात्सल्य पूर्ण व्यवहार रहा। दोनों महापुरुषों का एक साथ व्याख्यान हुआ। इसी वर्ष लोणावला नामक गांव में श्री मोहनलाल जी चोरडिया के द्वारा मुनि श्री हीरा ऋषिजी की दीक्षा हुई, परन्तु आयुष्यकर्म की समाप्ति का चक्र समझिए कि वे २१ दिनों तक ही संयम की परिपालना करके तदनन्तर वे दावडी (पूना) में स्वर्गवासी हो गये।

संवत् १९९७

संवत् १९९७ इस वर्ष चरितनायक श्री का चातुर्मास अहमदनगर में था। इस चातुर्मास में शास्त्र विशारद चरितनायक श्री जी के सदुपदेशों से मनीशिरोमणि श्रीराम कुंवरजी म० तथा शास्त्रज्ञ सेठ किसनदासजी मूथा के पुण्य स्मरणार्थ "श्री अमोलक जैन सिद्धान्त शाला" पाथर्डी की शाखा स्वरूप स्थापित करने का निश्चय किया। चातुर्मास के अनन्तर आप श्री घोडनदी पधारे। मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में वहाँ भी सिद्धान्तशाला की शाखा स्थापित की। पण्डित श्री बदरीनारायणजी शुक्ल शास्त्री (सर्वदर्शन) को प्रधानाध्यापक के स्थान पर नियुक्त किया गया। अनेक साधु-साध्वी इस ज्ञानवर्धक संस्था से लाभ उठा चुके हैं और वर्तमान में उठा रहे हैं।

संवत् १९९८

संवत् १९९८ इस वर्ष चरितनायक श्री जी महाराज ने अपना चातुर्मास पूना जिला के एक छोटे से गांव "बोरी" में किया। वहाँ चोरडिया परिवार के लगभग १२ घर हैं। सभी सम्पन्न हैं। चरितनायक के अहिंसा प्रधान उपदेशों से प्रभावित होकर कई हरिजन बन्धुओं ने मांसाहार एवं मदिरापान का परित्याग किया। चातुर्मास में ११-१३-१५-१६-२१ ४५ आदि दिनों की बड़ी २ तपस्यायें हुईं। चातुर्मास समाप्ति पर आप श्री अहमदनगर आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए "मिरी" पधारे। वहाँ आषाढ़ शुक्ला ६ के दिन श्री बाबूलाल जी रेदासनी ने सजोड़ा दीक्षा ली। श्री बाबूलाल जी का

नाम श्री ज्ञान ऋषिजी रखा गया, और नवदीक्षित साध्वी का नाम श्री नवल कुंवरजी रखकर इनको श्री सुमति कुंवरजी म० की शिष्या बना दिया गया।

सम्वत् १९९९

सवत् १९९९--महामहिम चरितनायक श्री का यह चातुर्मास बाम्बोरी क्षेत्र मे हुआ। चातुर्मास काल मे जनता ने खूब लाभ उठाया, तपस्या भी संतोषजनक हुई। चातुर्मास के अनन्तर चरितनायक श्री चास पधारे। वहाँ ऋषि-सम्प्रदाय के आचार्य, तपस्विराज, पूज्य श्री देवऋषिजी महाराज के स्वर्गस्थ हो जाने का दु खद समाचार मिला। नव आचार्य के निर्वाचन के लिए ऋषि-सम्प्रदाय के मुनिराज पाथर्डी मे एकत्रित हुए। वहाँ माघ कृष्णा ९ बुधवार के दिन चतुर्विध सघ ने शान्तस्वभावी चरितनायक को "आचार्य" पद से अलकृत किया, इस अवसर पर पण्डित मुनि श्री कल्याण ऋषिजी महाराज आदि ठा० ६ 'मधुरभाषिणी" श्री सायर कुंवरजी महाराज तथा महासती श्री रम्भाकुंवरजी म० ठाणा ४ महासती श्री आनन्द कुंवरजी म० आदि ठा० ६ उपस्थित थे। इस आचार्य पद महोत्सव के उपलक्ष्य मे पीपला-निवासी श्री चांदमलजी शोभाचंदजी बोरा ने श्री तिलोक रत्न स्थानक वासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के प्रकाशन विभाग मे २१०० रु० का दान किया।

इस वर्ष हीवडा (अहमदनगर) मे चरितनायक पूज्य आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के नेतृत्व मे महासती श्री सायर कुंवरजी म० के पास मिरीवाली दगडोबाई को दीक्षित किया गया। इस अवसर पर प० मुनि श्री कल्याण ऋषिजी महाराज, कवि श्री हरिऋषिजी महाराज और वयोवृद्ध श्री माणक ऋषिजी म० आदि ठा० १४ पधारे थे। दीक्षा के बाद ये सभी मुनिराज पाथर्डी पधारे। यहाँ ऋषि-सम्प्रदाय के मुनियो का सम्मेलन हुआ। १६ मुनिराजो तथा महासती श्री रभा कुंवरजी म०, महासती श्री सायर कुंवरजी म० आदि साध्वियो की उपस्थिति मे सम्प्रदाय के नियमोपनियम बनाए गए। इस सबन्ध मे वयोवृद्ध श्री कालू ऋषिजी म० की भी सम्मति प्राप्त की गई थी।

सम्वत् २०००

सम्वत् २००० इस वर्ष चरितनायक श्री ने चादा (अ० नगर) मे चातुर्मास किया। यहाँ श्रावको के तो १२ घर थे। किन्तु माहेश्वरी, ब्राह्मण आदि जैनेतर परिवार भी बड़े श्रद्धालु थे। सभी लोग श्रद्धा से व्याख्यान-वाणि

का राज रहे थे। पाथर्डी में [illegible] भी प्रेम ऋषिजी म० का स्वास्थ्य अधिक शिथिल हो जाने से चरितनायक श्री ने वहीं [illegible] में एक मुनि श्री किशोर ऋषिजी म० को सेवार्थ पाथर्डी भेजा। समय की बात है कि पाथर्डी चातुर्मास में ही श्री प्रेम ऋषिजी म० दिवंगत हो गए। चातुर्मास की समाप्ति पर चरितनायक श्री पुनः पाथर्डी पधारे। यहाँ पर स्वर्गस्थ गुरु श्री देव-ऋषिजी म० तथा श्री प्रेम ऋषिजी म० की पुण्य स्मृति में "श्री देव प्रेम धार्मिक उपकरण भण्डार" नामक संस्था की संस्थापना की। इसी वर्ष चरितनायक श्री ने 'बालमटाकली (अहमदनगर) में दूसरी (कमाल) निवासी श्री अनु-भाई को फाल्गुन सुदी ५ के दिन ही दीक्षित किया। इनका नाम मुनि श्री जयवन्त ऋषिजी रखा गया।

सवत् २००१

मान्य चरितनायक श्री ने इस वर्ष का चातुर्मास "जालना" में किया। चातुर्मास में धर्मध्यान का खूब ठाट रहा। चातुर्मास के अनन्तर चरितनायक श्री घवलघाट पधारे। वहा पर चरितनायक श्री ने गोंदिया ग्राम की बहिन इन्दिराकुंवरजी को दीक्षित किया।

नागपुर के श्रीमान् दानवीर सेठ सरदारमलजी पुंगलिया ऋषि-सम्प्रदाय के मनोनीत श्रावक समझे जाते थे। असाता वेदनीय का प्रकोप समझिए, आप अस्वस्थ हो गए। स्थिति चिन्ताजनक बनती जा रही थी। आपकी हार्दिक इच्छा थी, कि आचार्यदेव पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज के दर्शन हो जाए। अपने भक्त श्रावक की हार्दिक इच्छा का मान रखते हुए आप श्री ने नागपुर की ओर प्रस्थान कर दिया। किन्तु दूसरे दिन ही पुंगलिया जी के दिवंगत हो जाने के समाचार मिल गए। निर्दयी काल ने गुरु-शिष्य दोनों का मिलाप होने से पहले ही शिष्य की जीवन-लीला समाप्त कर दी। महा-मान्य पुंगलियाजी स्थानकवासी जैन श्रावक समाज के एक महान स्तम्भ थे। उनके आकस्मिक निधन से समाज को जो क्षति पहुँची है। उसकी निकट के भविष्य में पूर्ति होती नहीं दिखाई देती।

सवत् २००२

इस वर्ष चरितनायक श्री जी म० का चातुर्मास घोडनदी में था। चातुर्मास में "श्री वर्द्धमान जैनधर्म-शिक्षण-प्रचार सभा" नामक संस्था की स्थापना की गई। इसका संचालन पाथर्डी से होता है। चातुर्मास के बाद

चरितनायक बाम्बोरी पधारे। यहाँ प्र० प्रवर्तिनी महासती श्री शान्ति कुंवरजी म० अस्वस्थ थी। उनकी दर्शनार्थ हार्दिक इच्छा की पूर्ति करने के लिये आपश्री बाम्बोरी पधारने का कष्ट किया था।

संवत् २००४

इस वर्ष चरितनायक श्री ने बेलापुर रोड (श्रीरामपुर-अहमदनगर) में चातुर्मास किया। इस चातुर्मास में महासतीजी श्री रमा कुंवरजी म० पंडिता श्री सुमति कुंवरजी म० आदि ठा० ४, चरितनायक श्री जी की सेवा का लाभ ले रहीं थीं। इस अवसर में औपपातिक सूत्र का संशोधन किया गया।

संवत् २००५

इस वर्ष का चातुर्मास चरितनायक, पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० ने अपनी पवित्र जन्मभूमि "चिचोंडी" में किया। वहां के जैन-अजैन लोगों की अपूर्व बलवती भावना थी, कि चरितनायक श्री को एक चातुर्मास अपनी जन्म भूमि में अवश्य करना चाहिए। इनकी कामना की पूर्ति करने के लिए ही आप श्री को इस वर्ष का चातुर्मास चिचोंडी में करना पड़ा। इस चातुर्मास का बड़ा लाभ सभी लोगों ने उठाया। अनेक व्यक्तियों ने मांस, मदिरा, जुआर, शिकार परस्त्रीगमन आदि कुव्यसनों का परित्याग करके जीवन-शुद्धि के महापथपर चलना आरम्भ किया। महापर्व पर्युषण का दृश्य तो बड़ा ही सुन्दर था। इस समय केवल अजैनों भाइयों की उपवास संख्या लगभग १००० की थी। अधिक क्या वर्णन करें। क्या ब्राह्मण, क्या हरिजन, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभी ने बिना भेदभाव के इस चातुर्मास में सेवाभक्ति, उपदेश श्रवण आदि का पर्याप्त लाभ लिया। चरितनायक श्री के इस चातुर्मास में विशेषता यह देखने में आई, कि चाहे कोई जैनी हो या सनातनी, या इस्लामी हो, किन्तु चरितनायक श्री के व्यक्तित्व के लिए सभी के हृदय में समान-आस्था थी। एक जैसी निष्ठा थी। सभी इन्हें भगवत् स्वरूप मानकर इनके पवित्र चरण-रज लिया करते थे। प० नारायण प्रसाद शास्त्रीजी ने अपनी आंखो देखी बात बताई कि चिचोंडी में एक समय गया था वहां देखा कि जहां चरितनायक श्री का जन्म स्थान था वहीं पर धर्मस्थान छोटा सा बना हुआ है। विचित्र बात यह है वहां किसी भी धर्म या जाति का व्यक्ति रोगी हो और उसे उस तपो-भूमि की धूली लगा दी जाय, तो वह अवश्य स्वस्थ हो जाता है। मेरे सामने ही मुसलमान का एक रोगी लड़का ले आया गया, उसे लिटा दिया गया और वह स्वस्थ हो गया। अनुभवी संस्कृत विद्वान् का वचन है—

† गुणाः पूजास्थानं गुणिषु, न च लिंगं न च वयः ।"

यह अमर वाक्य विचारों में साकार हो रहा था। पूज्य चरित्रनायक श्री के इस सद्भाव की स्मृति चिरस्थायी बनी रहने के लिए जनता ने श्री [illegible] पारमार्थिक [illegible] नामक संस्था की स्थापना की। यह संस्था आज भी [illegible] सेवा कर रही है।

चातुर्मास के अनन्तर चरित्रनायक श्री अहमदनगर पधारे। यहां पर आत्मार्थी श्री मोहन ऋषिजी महाराज तथा पंडित मुनि श्री श्रीमलजी महाराज से भेंट हुई। परस्पर में बड़ा स्नेहमय वातावरण रहा। अहमदनगर से विहार करके चरित्रनायक श्री घोड़नदी पधारे। घोड़नदी में आप श्री के नेतृत्व में दिवंगत प्रवर्तिनी महासती श्री [illegible] कुंवरजी म० के स्थान पर महासती श्री सायरकुंवरजी म० का प्रवर्तिनी पद पर निर्वाचन किया गया और अन्त में यह निश्चय किया गया कि भविष्य में प्रवर्तिनी विदुषी महासती श्री सुमति कुंवरजी म० होंगी।

संवत् २००६

ब्यावर में मुकाम में तीन पक्ष थे। सभी ने एकमत होकर पूज्य चरित्रनायक श्री के चरणों में इस चातुर्मास की विनती की थी। तब चरित्रनायक श्री ने इस वर्ष का चातुर्मास यहीं (ब्यावर) में करना स्वीकार कर लिया। चातुर्मास में बड़ा आनन्द मंगल रहा। जनता ने चरित्रनायक की महती विद्वत्ता से खूब जी भर कर लाभ उठाया। यहां प्रान्तीय सम्मेलन करने के लिए श्री अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी कॉन्फरेन्स की ओर से प्रयत्न चल रहा था। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप चातुर्मास के अनन्तर ब्यावर में ६ सम्प्रदायों के मुनिराजों का एक सम्मेलन हुआ। इसमें समाचारी का संशोधन किया गया। उपस्थित सभी मुनिराज एकता का मूल्य जानते थे और "संघे शक्तिः कलौयुगे" इस सत्य को भली भांति समझते थे। फलतः चैत्र कृष्णा प्रतिपदा के शुभ दिन "श्री वीर वर्द्धमान श्रमण संघ" की स्थापना कर दी गई। इस श्रमण संघ में ५ सम्प्रदायें शामिल हो सकी थी। इस संघ का आचार्य पद हमारे चरित्रनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० को समर्पित कर दिया। उस समय श्रमणसंघ में लगभग साधु-साध्वियों की संख्या ३६०

---

† गुणों से ही व्यक्ति की पूजा होती है, गुणों के आगे आयु, लिंग का कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता।

की थी । श्रमण संघ की यह व्यवस्था—वृहत् साधु सम्मेलन तक के लिए की गई थी।

संवत् २००७

इस वर्ष पूज्यप्रवर चरितनायक श्री का चातुर्मास "उदयपुर" में था। यह चातुर्मास जैन कान्फरन्स की प्रार्थना पर किया गया था। इस चातुर्मास में विदुषी महासती श्री रतन कुंवरजी महाराज, प० वल्लभ कुंवरजी म० ठाणा १० भी चरितनायक श्री जी की सेवा का लाभ ले रही थी। चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर चरितनायक श्री जी ने मार्गशीर्ष शुक्ला में श्री पुष्प ऋषिजी को दीक्षित किया। उदयपुर से विहार करके चरितनायक श्री आयड नामक गाव में पधारे। वहाँ पर जैन दिवाकर मुनिश्री चौथमल जी महाराज के स्वर्गवास का दु:खद समाचार मिला। इस आकस्मिक, असामयिक समाचार से आप श्री के हृदय को तीव्र आघात पहुचा। चातुर्मास के अनन्तर आप श्री का जैन जगत् की महान् आदरणीय विभूति श्री जैन दिवाकरजी महाराज से मिलने का विचार था। किन्तु समय की बात समझिए, कि निर्दयी काल ने उसे मूर्तरूप नहीं लेने दिया। वहाँ से विहार करके आप श्री नाथद्वारा पहुँचे, तो महान विचारक, साहित्य महारथी, कविरत्न, पंडित मुनि श्री उपाध्यायजी अमरचन्द्र जी महाराज तथा स्थविर पद विभूषित मान्य मुनि श्री हजारीमलजी महाराज का समागम हुआ। परस्पर में अत्यन्त सन्तोषजनक एवं घनिष्ठ प्रेम भाव रहा। सभी लोगों ने इस मधुर सम्मिलन की हृदय से सराहना की। सभी मुनिवरों का एक ही स्थान "नौचउण्ड" पर सार्वजनिक व्याख्यान होता था।

नाथ द्वारा से प्रस्थान करके चरितनायक श्री "गुलाबपुरा" पधारे। वहाँ शास्त्र विशारद मुनि श्री पन्नालालजी महाराज, पंडित रत्न पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज से सम्मिलन हुआ। कवि रत्न श्री अमरचन्द्रजी म० भी यहीं पधार गये। इस तरह संतों का एक छोटा सा सम्मेलन हुआ। संगठन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया गया।

संवत् २००८

सम्वत् २००८ में चरितनायक श्री ने "भीलवाड़ा में चातुर्मास किया। चातुर्मास के अनन्तर "आपालगढ" में आप श्री ने श्री हिम्मतमलजी भण्डारी को दीक्षित किया। उनका नाम "श्री हिम्मत ऋषिजी" रखा गया। तदनन्तर श्री चरितनायक श्री "आरड़ताड़ा" पधारे। वहाँ मनोहर व्याख्याता

प० रत्न मुनि श्री प्यारचन्द्रजी महाराज पधार गये। सादडी सम्मे सर्वैक्य के लिए विचार विमर्श किया गया और सम्मेलन को सफल ब लिए योजना तैयार की गई। "श्री वीर वर्द्धमान श्रमणसघ" के साध्वियो तथा प्रमुख श्रावको से सम्मति लेने का निश्चय किया गया।

आकडसादा से विहार करके चरितनायक श्री "भगवानपुरा" यहाँ पर कवि मुनिश्री हरिऋषिजी महाराज तथा मुनि श्री भानु ऋषि ठाणे २ चरितनायक श्री की सेवा मे आए। वहाँ से सभी मुनिवर गुल पधारे। वहाँ हैदराबाद आध्रप्रदेश से उग्र विहार करके महासती श्री कुवरजी म० मुख्याख्यात्री विदुषी महासती जी श्री सुमतिकुवरजी म०जिन प्रभाविका पडिता महासती श्री रत्नकुवरजी महाराज तथा विदुषी म जी श्री वल्लभकुवरजी महाराज आदि साध्वियाँ भी पधार गईं। वि २००६ चैत्र शुक्ला द्वितीया गुरुवार के शुभ दिन चरितनायक श्री ने बै वती श्री शकुन्तला कुमारी को दीक्षित किया। इनका नाम श्री चन्दनकुम म० रखा गया और महासती श्री सुमति कुवरजी महाराज की इनको वनाया गया। हर्ष की बात है—पूज्य चरितनायक श्री की देख-रेख दीक्षिता—महासती श्री चन्दनकुमारी जी ने अध्ययन क्षेत्र मे बडी उन्न है। आज महासती चन्दनकुमारीजी का पठित साध्वी-वर्ग में एक सम्मान स्थान है। यह लेखिका होने के साथ २ एक अच्छी व्याख्यात्री भी हैं। भविष्य समुज्ज्वल दिखाई देता है।

गुलाबपुरा से विहार करके श्रमणश्रेष्ठ चरितनायक श्री अनेक क्षेत्र पावन करते हुए शीघ्र "सादडी" (मारवाड) पधारे। यहाँ पर स्थानकव मुनिराजो का एक विराट् सम्मेलन होने जा रहा था। अत. पजाब, राजस्थ मालवा मेवाड आदि प्रान्तो से सैकडो की सख्या मे मुनिराज और महासति पधारी हुई थीं। अक्षय तृतीया के शुभ मुहूर्त मे सम्मेलन आरम्भ हुआ सम्मेलन मे सम्मिलित सब सन्तो ने सर्वानुमति से निश्चय किया कि स मुनिराज अपनी २ पदवियो का परित्याग करके और सब एक आचार्य की छ छाया मे अपना जीवन बिताएँ। पारित प्रस्ताव के अनुसार उपस्थित सभी मु वरो ने अपनी-अपनी आचार्य पदवी का परित्याग कर दिया और "श्री वर्द्धम स्थानकवासी जैन श्रमणसघ" की स्थापना की। श्रमणसघ का आचार्यपद धर्म दिवाकर, साहित्य रत्न, महामहिम पूज्य श्री आत्मारामजी महारा को समर्पित किया गया। पडित रत्न पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज उपाचार्य पद से विभूषित किया गया। १६ मन्त्रियों का ए

मन्त्रिमण्डल बनाया गया इसके प्रधानमंत्री हमारे मान्य चरितनायक पूज्य
श्री आनन्द ऋषिजी महाराज बनाए गए। वैशाख शुक्ला १३ के पवित्र मुहूर्त
में लगभग ३५००० श्रावक श्राविकाओं तथा करीब २५० साधु-साध्वियों की
उपस्थिति में नव निर्वाचित उपाचार्य श्री को जब पदवी प्रतीक चादर ओढ़ाई
गई तब वह दर्शनीय दृश्य था।

सम्वत् २००९

सम्वत् २००९ में पूज्यप्रवर चरितनायक प्रधानमंत्री श्री ने चातुर्मास
...द्वारा में किया। इस चातुर्मास में सादड़ी सम्मेलन की नींव सुदृढ़ बनाने
...मित्त मंत्री मुनिवरों का "सोजत" शहर में सम्मेलन निश्चित किया
...या। चातुर्मास के बाद प्रधानमंत्री श्री सोजत पधारे। वहाँ पर उपाचार्य
...प्रधानमंत्री श्री तथा सोजत वाले प० मुनिश्री समर्थमल जी म० आदि
...का आपस में विचार विमर्श हुआ। दि० १५-१-५३ को मन्त्रिमंडल की
...हुई। इस बैठक में मन्त्रियों का कार्य विभाजन और प्रान्तीय विभाजन
...या। अनेक प्रस्ताव पारित हुए।

२०१०

सम्वत् २०१० के सोजत सम्मेलन में विचार किया गया कि यदि
...य उपाचार्य श्री, प्रधानमंत्री श्री, सहमंत्री श्री हस्तीमल जी म०
...वाचस्पति श्री मदनलाल जी म०, कविरत्न उपाध्याय श्री अमर
...महाराज, और प० मुनि समर्थमलजी म० इन ६ महारथियों का
...क ही क्षेत्र में हों तो लम्बे समय तक विचार विनिमय हो सकेगा।
...शोधन आदि के सम्बन्ध में विचार और आगामी बृहत् सम्मेलन
...न बनाया जा सकेगा। अन्त में "जोधपुर" श्री संघ के विशेष
...उक्त सभी मुनिवरों ने २०१० का चातुर्मास जोधपुर में किया।
...में मध्याह्न में मुनिवरों की बैठक होती थी। विविध विषयों पर
...आदान-प्रदान चलता था। चातुर्मास के उत्तरार्द्ध में कार्तिक
...ज्ञानपंचमी) के शुभ दिन उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी म० के
...ड़ा निवासी श्री चाँदमलजी भण्डारी दीक्षित हुए। इनको
...क प्रधानमंत्री पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी म० का शिष्य बनाया
...म मुनि श्री चन्द्रऋषिजी महाराज रखा गया।
...का चातुर्मास सानन्द समाप्त होने के अनन्तर महामान्य प्रधान
'पाली' पधारे। वहाँ पर स्थविर मुनि श्री शार्दूलसिंहजी

म० तथा पंडित मुनि श्री कवि कानचन्दजी म० से समागम हुआ। वहाँ से मारवाड़ और सिरियारी होते हुए प्रधानमन्त्री श्री 'राणावास' विराजमान हुए। वहाँ आप श्री ने विचार किया कि यहाँ तथा आसपास के गाँवों के अनेक छात्र स्कूल में पढ़ने के लिए आते हैं, किन्तु स्थानकवासी परम्परा के संस्कार दृढ़ करने की कोई व्यवस्था नहीं है। इस सम्बन्ध में आप श्री ने जनता को प्रेरणा दी और अपने उपदेशों में इसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला। आप श्री के प्रेरणापूर्ण उपदेशों से प्रभावित होकर राणावास, सिरियारी, सिमली, रड़ावास आदि के श्रावक एकत्रित हुए। हजारों का प्रारम्भिक फण्ड इकट्ठा करके उन्होंने एक संस्था स्थापित करने का निश्चय किया। अन्त में श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन छात्रालय" की स्थापना कर दी। वैसे तो इस सत्कार्य में सभी शिक्षा प्रेमी लोगों ने सहयोग दिया, परन्तु रड़ावास निवासी श्रीमान् सेठ चम्पालालजी दुगलिया का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं सराहनीय था। देवगढ़ में तेरापंथी सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसीजी के पास एक दीक्षा होनेवाली थी। अतः देवगढ़ के श्री संघ प्रधानमन्त्री श्री की सेवा में राणावास आया। और उसने इनसे अपने नगर को पावन करने के लिए जोरदार विनती की, दयासागर प्रधानमन्त्री श्री ने उसे स्वीकार कर राणावास से देवगढ़ पधार गए। देवगढ़ की जनता ने आपश्री के सात्विक प्रवचनों से बड़ा लाभ उठाया। आप श्री की वाणी में ओज, विद्वत्ता, सरलता एवं मधुरता अनुपम थी। अधिक क्या! [illegible] विशेष अनुरोध से राजमहल के विशाल प्रांगण में भी दो प्रवचन हुए।

देवगढ़ से विहार करके प्रधानमन्त्री श्री नाथद्वारा आदि क्षेत्रों में [illegible] की गंगा प्रवाहित करते हुए "सनवाड़" पधारे। यहाँ मुनि [illegible] म० का समागम [illegible]। [illegible] करते [illegible]। [illegible], यहीं [illegible] [illegible] प्रधानमन्त्री श्री [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

लोग उन विद्वानों को भी प्रधानमन्त्री श्री की सेवा में लाए। वार्तालाप संस्कृत
भाषा में किया गया। उन्होंने प्रधानमन्त्री श्री से अनेक प्रश्न पूछे। पूज्य
प्रधानमन्त्री श्री के सन्तोषजनक तथा बुद्धिगम्य उत्तर सुनकर उनको बड़ा
संतोष हुआ। श्रद्धेय चरितनायक श्री ने जब उनको पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि
जी म० द्वारा निर्मित ज्ञानकुंजर, चित्रालंकार काव्य, दशवैकालिक का पन्ना
दिखलाया, वे देखकर आश्चर्य चकित रह गए। समस्त दशवैकालिक को एक
पृष्ठ पर लिख देना कोई साधारण बात नहीं है। इस असाधारण कलाकौशल
से सभी विस्मित थे।

...त् २०११

सम्वत् २०११ में चातुर्मास के लिए बदनोर, बड़ी सादड़ी तथा
...गढ़ इन तीनों क्षेत्रों के श्री संघ आग्रह कर रहे थे। किन्तु बड़ी सादड़ी
...राणा साहब ने यह पट्टा (पत्र) लिखकर दिया था, कि यदि प्रधान-
...डितराज मुनिश्री आनन्दऋषिजी महाराज का चातुर्मास बड़ी सादड़ी
...तो आश्विन मास में भैंसों और बकरों की जो हिंसा होती है वह सदा
...बन्द कर दी जायेगी। दया के सागर प्रधानमन्त्री श्री ने अभयदान के
...त कार्य को महत्त्व देकर बड़ी सादड़ी में चौमासा करना स्वीकार कर
...बड़ी सादड़ी में ही पूज्यपाद महामहिम श्री तिलोक ऋषिजी म० की
...तथा श्रमण संघीय उपाचार्य प० रत्न श्री गणेशीलाल जी म० की
...मनाई। आरम्भ में मुनिश्री मोतीऋषिजी म० सुखविपाक सूत्र
...ते, तदनन्तर आपश्री विविध विषय-स्पर्शी उपदेश सुनाकर श्रोताजनों
...ीं में काफी मत-भेद पैदा हो गया था। परन्तु समय सूचक, दूर-
...न्त्री श्री जी म० ने दोनों पक्षों की शान्ति के लिए पांच जयकारों
... केवल "भगवान महावीर की जय" ही बोलना प्रारम्भ करके
...शान्त कर दिया था।

...सादड़ी के चातुर्मास के बाद प्रधानमन्त्री श्री "कानोड़" पधारे।
...ी मोतीलालजी महाराज का समागम हुआ। वहाँ से कपासन
...० रत्न मुनिश्री इन्द्रमलजी म० से भेंट हुई। यहीं से बीकानेर-
...न्य में सूचनाएँ दी गई। और संगठन को लेकर विचार
...गया। बयोवृद्ध स्थविर प० रत्न मुनि श्री पन्नालालजी म०
...मान थे। उनको सूचना मिलने पर प्रधानमन्त्री श्री समूचा

पधार गए। महामन्त्री पं० रत्न मुनिश्री हस्तीमल जी म० तथा शास्त्रज्ञ मुनि श्री मोतीलाल जी म० ममूदा पधार गए। वहाँ लगभग २४ सन्त, १६ महासतियाँ थी। इस तरह एक छोटा सा सम्मेलन हो गया। यहाँ विराजमान मुनिवरों ने विचार विमर्श के अनन्तर निश्चय किया कि इस वर्ष सब मुनिराज बीकानेर नहीं पहुँच सकते। अतः २०१२ चातुर्मास के बाद सम्मेलन होना चाहिए। अतः सं० २०११ में सम्मेलन नहीं हो सका।

सम्वत् २०१२ का चातुर्मास महामान्य प्रधानमन्त्री श्री ने "बदनौर" में किया। बदनौर ठिकाने के ५० गाव तथा आमीद चौकी के १६ गावों में परस्पर सामाजिक वैमनस्य था। परन्तु यह वैमनस्य मान्य प्रधानमन्त्री श्री तथा ठाकुर साहब श्री गोपालसिंह जी के सत्प्रयत्नों से तथा सम्वत्सरी महापर्व के शुभ प्रसंग पर उपस्थित हुए दूसरे गाँवों के प्रमुख श्रावकों के सहयोग से शान्त हो गया। इस चातुर्मास में "श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन वाचनालय" की स्थापना की गई। यहां स्थानकवासी जैन समाज के लगभग ३५ घर थे। परन्तु सभी में भाव-भक्ति और धर्मध्यान के प्रति निष्ठा बड़ी आदरणीय एवं सराहनीय थी। जैनेतर जनता व्याख्यान वाणी से बड़ा लाभ लेती थी। इसी वर्ष सोजत (बीकानेर) में श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ ने अपना द्वितीय विराट् सम्मेलन किया। इसमें हमारे मान्यवर प्रधानमन्त्री श्री को 'उपाध्याय' पद से विभूषित किया गया और व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज को प्रधानमन्त्री पद प्रदान किया गया।

सम्वत् २०१३

इस वर्ष का चातुर्मास पूज्य गुरुदेव चरित्रनायक उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी महाराज ने प्रतापगढ़ (म०प्र०) में किया। इस चातुर्मास में आप श्री ने हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह व्यवस्थित किया। इसके लिए एक अलमारी बनाई गई। इस तरह विभिन्न शास्त्रों की इधर-उधर बिखरी सम्पत्ति को एकत्रित करके आपश्री ने आगम-साहित्य की जो प्रशंसनीय सेवा की वह सदैव के लिए स्मरणीय रहेगी।

सम्वत् २०१४

सम्वत् २०१४ का चातुर्मास बुरहानपुर (म० प्र०) में किया गया। इस चातुर्मास में श्रमण-संघ के मुनिराजों के हस्तलिखित शास्त्र तथा ग्रन्थ कई पेटियों में एक स्थान पर एकत्रित की गई। अप्रकाशित ग्रन्थ

को सम्पादित करवाकर सूचीपत्र तैयार करवाया। इसी वर्ष आप श्री के छोटे गुरु भ्राता, त्याग-वैराग्य की सजीव प्रतिमा, मुनिश्री उत्तम ऋषिजी म० स्वर्ग-वासी बन गये थे।

सवत् २०१५

वि० म० २०१४ का चातुर्मास समाप्त करके उपाध्याय श्री जब इन्दौर पधारे, तो पाथर्डी की जनता ने आप श्री को महाराष्ट्र पधारने की विनती की। और पाथर्डी मे चातुर्मास करने का जोरदार निवेदन किया। श्रद्धालु जनता की जोरदार प्रार्थना के कारण महामान्य श्री जी महाराज ने इस वर्ष का चातुर्मास पाथर्डी करने की स्वीकृति दे दी। उपाध्याय श्री मुख्यनगर अहमदनगर मे जब पधारे, तो आपश्री के स्वागत मे लगभग ५००० लोग सम्मिलित हुए थे। इस वर्षका चातुर्मास पाथर्डी मे करके पाथर्डीकी जनता पर आपने महान उपकार किया। इस चातुर्मासमें आपश्रीने "श्री रत्न जैन पुस्तकालय" के हस्त-लिखित ग्रन्थो का परिशीलन किया। यह ग्रन्थालय सुचारु रूप से चलता रहे इसके लिए सर्तोषजनक व्यवस्था की। इस प्रान्त मे जैन समाज के प्रति जन साधारण मे बडी भ्रान्ति फैल रही थी। आपने उन सबका निराकरण करके सबको सन्तुष्ट किया।

चातुर्मास के अनन्तर आप श्री अहमदनगर पधारे वहा एक बहिन को दीक्षित किया। उसका नाम महासती धर्मशीला और उसे महासती श्री उज्ज्वल कुमारी जी म०की शिष्या बनाया गया। अहमदनगर से प्रस्थान करके आप श्री बाम्बोरी पधारे। वहाँ श्रीमान सेठ रतनचन्द जी मुणोत की सुपुत्री सरस बाई को दीक्षा दी। और उसे प० महासती जी श्रीअमृतकुवरजी म० की नेश्राय किया। नव दीक्षिता का नाम महासती श्री सुशील कुमारी जी रखा गया। बाम्बोरी से विहार कर के आप श्री पूना होते हुए चिचोडी पधारे। वहाँ पर बहिन अभयकुंवरजी को दीक्षित करके महासती श्री अजितकुवरजी म० की शिष्या बनाया।

सवत् २००१६

सवत् २०१६का चातुर्मास आपश्रीजी बेलापुर और श्रीरामपुर इन दोनो क्षेत्रो मे किया। दोनोमे ४ मीलका अन्तर है। दोनो क्षेत्रो का बहुत आग्रह था, परिणाम स्वरूप २-२ मास दोनो क्षेत्रो मे लगाकर सभी को धर्म ध्यान का लाभ दिया। बेलापुर वालो ने चातुर्मास मे ही आप श्री के अमृतोपम उपदेशो से प्रभावित होकर "श्री महावीर जैन पाठशाला" की स्थापना की और "श्री

रायपुर [illegible] 'श्री [illegible]' [illegible] 'श्री गुलाबचन्द बाफना जैन पाठशाला' इन दो संस्थाओं को [illegible] सामाजिक सेवा की बुद्धि शुद्ध प्रगट [illegible] समाज के [illegible] नहीं था। फलतः उसके लिए ८० हजार का [illegible] लगी है। इस प्रकार इस बार आप श्री के चातुर्मास से रायपुर संघ पर महान् उपकार हुआ।

सम्वत् २०१७

सम्वत् २०१७ का चातुर्मास आप श्री ने [illegible] में किया। इस चातुर्मास में 'श्री आनन्द जैन पाठशाला' की ओर का [illegible] किया। तथा "श्री तिलोक जैन शताब्दी अभिनन्दन ग्रन्थ' का सम्पादन करवाया गया। इस चातुर्मास में आप श्री ने एक श्रावक को दीक्षा दी। दीक्षित का नाम 'श्री यशवन्त ऋषिजी' है। चातुर्मास के बाद आप श्री घोड़नदी क्षेत्र में पधारे। वहाँ पर श्री तिलोक दीक्षा शताब्दी मनाई गई। इस समारोह में लगभग १५००० हजार लोगों ने भाग लिया। स्थानीय जनता ने उत्साह से सेवा भक्ति का परिचय दिया, इसी समय 'श्री तिलोक जैन पारमार्थिक संस्था" का उद्घाटन किया जिसमें आज ५०००० रुपया है सैकड़ों बहने असहाय बच्चा को मदद मिलती है पुनः बाद के समय भी इस संस्थाने खूब अच्छा सहयोग दिया। घोड़नदी से विहार कर आप श्री पूना पधारे। वहाँ पर एक बहिन को दीक्षित किया। दीक्षिता का नाम श्री ज्ञान कुंवरजी रखा गया। और इन्हें बा० ब्र० श्री इन्द्रकुंवरजी के नेश्राय में समर्पित किया। दीक्षा का मंगलमय कार्य सम्पन्न करने के अनन्तर आप श्री 'चिंचवड़" पधारे। वहाँ पर एक स्थानक के उद्घाटन का आयोजन चल रहा था। उसके निमित्त एक बड़ा भारी उत्सव था। उसमें आप श्री ने अपना प्राभाविक प्रवचन दिया।

सवत् २०१८

सम्वत् २०१८ का चातुर्मास आप श्री ने "अदवी" नामक गाव मे किया। यह चातुर्मास दानवीर सेठ केशरचन्दजी बोरा के पुरुषार्थका सत् परिणाम था। सेठ जी बड़े उदार, दानी व्यक्ति है। चातुर्मास के निमित्त गाँव वालों ने १५०० रुपये एकत्रित किये थे, किन्तु इन्होंने अपनी ओर से ५०० रु० इनमे डाल कर इस तरह दो हजार की धनराशि पाथर्डी के श्री "तिलोक जैन विद्यालय" को स्थानीय प्रधानमंत्री श्री शंकरलाल गांधी के हाथों दान में दे दी, और चातुर्मास मे बाहर से आने वाले दर्शनार्थी भाइयों की सेवा स्वय अपने तन-मन-धन से की। सेवा का सब उत्तर दायित्व (भार) इन्हीं पर था। सेठ जी ने अपने दायित्व को इतनी प्रामाणिकता से निभाया कि कुछ कहते

नहीं बनता। सेवा-कार्य मे चार मास इन्होंने जागरूकता रखी। आनेवाले दर्शनार्थी *यही कहते सुनाई देते थे कि आजतक ऐसा चातुर्मास न हुआ और न भविष्य मे* होने की आशा है।

चातुर्मास के पश्चात् आप श्री बाम्बोरी पधारे, वहाँ आप श्री ने श्रीमान् सेठ फूलचन्दजी गाधी की सुपुत्री कुमारी श्यामा को दीक्षित किया। उसका नाम महासती साधनाकुवरजी रखा और इन्हे महासती श्री सुमति कुवरजी *म० की शिष्या बनायी। यहाँ से विहार करके आप श्री पाथर्डी पधारे वहाँ पर* 'श्री तिलोक-रत्न जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड" की रौप्य जयन्ती मनायी गई। वहाँ से विहार करके आपश्री मिरी पधारे वहाँ पर श्री सेठ चन्दनमल जी मेहेर के सुपुत्र श्री मनसुखलालजी को दीक्षा दी। नवदीक्षित का नाम मुनि श्री कुन्दन ऋषिजी महाराज रखा गया। कुन्दन ऋषिजी एक विद्या-रसिक एव सेवाभावी सन्त हैं। विद्या क्षेत्र मे अच्छी प्रगति करते जा रहे हैं। *आजकल ये शास्त्री परीक्षा के अन्तिम वर्ष की तैयारी कर रहे हैं।*

सवत् २०१९

सवत् २०१९ का चातुर्मास आप श्री ने मुम्बई (घाटकोपर) मे किया। इस चातुर्मास मे श्री तिलोक रत्न स्थानकवासी-जैन-धार्मिक-परीक्षा-बोर्ड की विशारद परीक्षा तक के हिन्दी पाठ्य पुस्तको को गुजराती भाषा मे अनुवाद कराया। इसी वर्ष आदरास्पद परम सेवाभावी मुनिराज प० मोती ऋषिजी *म० को अर्धांगवायु की बीमारी हो गई थी। यहाँ पर ही आप श्री ने सुयशा,* श्रद्धा सुदर्शना इन तीन बहिनो को दीक्षा का पाठ पढाया। सुयशा और श्रद्धा ये बालिकाएँ श्री सुमति कुवर जी म० की शिष्या बनी और सुदर्शना श्री अमृत-कुवरजी म० की शिष्या बनी।

(मुम्बई घाटकोपर) चातुर्मास के अनन्तर आप श्री "माटुगा (मुम्बई) पधारे। *वहाँ पर अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन कॉन्फरन्स की मिटिंग* हुई। उस समय जैनधर्म दिवाकर, साहित्य रत्न, जैनागम रत्नाकर, आचार्य सम्राट्, पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज के स्वर्गस्थ हो जाने कारण नवीन आचार्य के निर्वाचन पर विचार किया गया। अन्त मे आप श्री (चरितनायक श्री) को आचार्यपद से विभूषित करने का सर्वसम्मत निर्णय हुआ। माटुगा से आप श्री कोट (मुम्बई) मे पधारे। वहा पर *श्री तिलोक-रत्न-स्थानक-*वासी-जैन-धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की शाखा खोली गई। वहा से आप श्री दादर (मुम्बई) पधारे। वहा पर "श्री अमोलक जैन पाठशाला" की दूसरी शाखा का उद्घाटन किया गया।

शिक्षण दिलवाने के लिए धार्मिक शिक्षण समिति की व्यवस्था की। जैन-जैनेतर सभी लोग आप श्री के चरणों का सान्निध्य पाकर अपने को धन्य अनुभव कर रहे थे। चातुर्मास में तपश्चर्या, धर्म प्रभावना मनोपजनक हुई थी।

चातुर्मास समाप्त होने पर आप श्री सदर पधारे। वहाँ एक वैरागिनी बाई की दीक्षा हुई। सदर के "श्री श्रमणोपासक जैन स्कूल" में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध करवाया। सदर से आप श्री सब्जी मंडी में पधारे। वहाँ की जनता ने आपके शास्त्रीय प्रवचनों का पूरा लाभ उठाया। एस० एस० जैन सभा पंजाब का शिष्टमंडल देहली चातुर्मास में चरितनायक श्री के चरणों में उपस्थित हुआ। उसने जयपुर में की गई पंजाब पधारने की विनती को फिरसे दोहराया। उस समय चरितनायक श्री की सेवा में पण्डित रत्न श्री फूलचन्द्रजी महाराज 'श्रमण' भी थे। इन्होंने भी पंजाब पधारने के प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। तदनन्तर आप श्री ने जयपुर में जो भाव प्रदर्शित किये थे, उन्हीं का पुनः दुहराते हुए फरमाया-पंजाब के निकट आ गये हैं। परिस्थितियाँ अनुकूल रहीं तो पंजाब स्पर्शने की भावना है। देहली चातुर्मास में श्री अखिल भारतवर्षीय जैन कान्फरन्स की जनरल कमेटी थी। उस समय कान्फरन्स तथा चाँदनीचौक श्री संघने पूज्य चरितनायक श्री को "जैन धर्म दिवाकर" इस पद से सम्मानित किया।

संवत् २०२३

देहली से प्रस्थान करने के अनन्तर आप श्री ने पंजाब में प्रवेश किया, जब आप श्री पंजाब के मुख्य शहर अम्बाला पधारे, तो पंजाब के मुनिराजों, महासतियों तथा श्रावक संघ ने आप श्री का भव्य स्वागत किया। पंजाब प्रान्तीय प्रवर्तक पंडित रत्न श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के नेतृत्व में पंजाब के सभी जाने माने युवक सन्त आप श्री के स्वागत में सम्मिलित हुए। मुख्य-मुख्य मुनिराजों के नाम-पंजाब प्रान्तीय प्रवर्तक, पंडित रत्न श्री शुक्लचन्द्रजी महाराज, आगरे वाले प० श्री प्रेमचन्द्रजी महाराज, तपस्वी मुनि श्री प० रत्नश्री फूलचन्द्रजी महाराज (श्रमण) प० श्री स्वाध्यायी प्रेमचन्दजी मुनिश्री म०, सुलेखक ज्ञान मुनिजी म०, प० श्री जगदीश मुनिजी महाराज, वक्ता मुनिश्री प० पूर्णचन्द्र जी महाराज, पंजाब केसरी प० श्री विमल मुनिजी महाराज, विश्वधर्म प्रेरक प० श्री सुशील मुनिजी महाराज आदि ठा० ४० तथा मुख्य-मुख्य महासतियों के नाम-प० महासती श्री प्रियावती म०, प० महासती श्री जगदीशमतीजी म०, महासती श्री अभयकुमारी जी म०,

सहायता फंड करीब चार हजार एकत्रित हुआ। वहा से विहार करके आप जालंधर मे पधारे। लेखक प० ज्ञानमुनिजी म०, वाणी भूषण प० विमल मुनिजी म० साथ में थे। वहाँ भी विहार के लिए सहायता फंड एकत्रित किया गया। प्रातःकालीन प्रार्थना तथा व्याख्यान सभी की दैनिक दर्शनीय थी। वहाँ से विहार कर टांडा होते हुए आप श्री मुकेरियां पधारे, श्री कृष्णलाल मरकट जी की कोठी में ठहरे। वहाँ से आपश्री पठानकोट पधारे। वहाँ पर आपश्री के स्वागत के लिए पंजाब के युवक मन जैन भूषण श्री प० विमल मुनिजी म० आदि मुनिवर विराजमान थे। इन्होंने तथा पंजाब के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री लक्ष्मणसिंह गिल के नेतृत्व में पंजाब के मंत्रिमंडल ने आपका भव्य स्वागत किया। जैन भूषण श्री तथा शिक्षा मंत्री आदि सभी मंत्रियों और पठानकोट के मुख्य २ नागरिकों ने आपश्री के चरणों में श्रद्धासुमन समर्पित किए। यहाँ ७ दिन विश्रामकर आप श्री ने पठानकोट से जम्मू के लिए विहार कर दिया। मार्ग के क्षेत्रों को पावन करते हुए सुखे समाधे जम्मू (कश्मीर) में पधारे।

संवत् २०२४

सम्वत् २०२४--इस वर्ष आपश्री का चातुर्मास जम्मू शहर में था। जम्मू कश्मीर प्रान्त की राजधानी है। यहाँ जैन समाज के करीब २०० घर हैं। प्रायः सभी सम्पन्न परिवार हैं। जनता में धर्म के प्रति बड़ा अनुराग एवं श्रद्धान है। आपश्री के इस चातुर्मास की आध्यात्मिक चहल-पहल तो इन पंक्तियों के लेखक ने स्वयं आंखों देखी है। यह सेवक भी आपश्री की सेवा में ही था। हजारों की संख्या में दर्शनार्थी लोग जम्मू में आये। जम्मू की श्रद्धालु तथा धर्म-प्रिय जनता ने सोत्साह एवं सोल्लास अतिथि जनता की सेवा का लाभ लिया। इस चातुर्मास में दो दीक्षाएँ हुई। इनमें नवदीक्षित का नाम–१. श्री धन ऋषिजी जो आपश्री के शिष्य बने। २ श्री भगवन् मुनिजी है। इनकी शिक्षा-दीक्षा का दायित्व लेखक को सौंपा गया। दीक्षाओं का कार्यक्रम बड़ा आकर्षक एवं प्रभावशाली था। जम्मू के श्रीसंघ ने आपश्री के चातुर्मास की स्मृति को चिरस्थायिनी बनाये रखने के लिये जम्मू में एक आनन्द-भवन बनाने का निर्णय किया। इसके लिए दान सहायता एकत्रित की गई एक ही व्यक्ति ने दस हजार की विशाल-धनराशि समाज को समर्पित की। समाज का विचार है इस कार्य में लाखों रु० खर्च किये जायेंगे।

जम्मू चातुर्मास समाप्त होने पर आप श्री ने वहाँ से विहार किया।

बीसा ओसवाल जाति के थे। आपके [illegible] दिया था। माता [illegible] बाई [illegible] [illegible] में रहते थे। एक बार आपने चरितनायकजी का सदुपदेश श्रवण कर [illegible] आपको वैराग्य हो गया। कुछ दिन तक चरितनायक के साथ रहे। किन्तु [illegible] से आपके [illegible] आपको अपने घर ले गये। वि० सं० १९६६ में पूज्य चरितनायकजी का चातुर्मास [illegible] (हैदराबाद) में था। उस चातुर्मास में पुनः आकर आपने चरितनायकजी की सेवा में धार्मिक शिक्षण प्रारम्भ किया। अन्त में उसी वर्ष [illegible] रविवार के दिन [illegible] श्री [illegible] के महाराज से पूज्य चरितनायकजी ने आप को दीक्षित कर दिया। आपका नाम हीरा ऋषि जी म० रखा गया। उस समय आपकी आयु २५ वर्ष की थी।

समय की गति बड़ी गहन है, उसके आगे किसी का वश नहीं चलता। संसार की बड़ी शक्ति को इसके सम्मुख नतमस्तक होना पड़ता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण मुनि श्री हीरा ऋषि जी का साधु-जीवन है। दीक्षित हुए अभी आपको ६० दिन हुए थे कि [illegible] (पूना) में आप अस्वस्थ हो गये। दस्त और वमन ने आप को अधिक दुर्बल बना दिया। औषधोपचार का कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में २१वें दिन आप इस पार्थिव शरीर को छोड़ कर स्वर्गवासी बन गए। रवि के दिन ही शरीर का परित्याग किया।

आप की धारणा शक्ति अच्छी थी। शास्त्रों के अध्ययन, चिन्तन, मनन की ओर आप का बड़ा झुकाव था। गुरुदेव को आपके दीक्षित जीवन से बड़ी बड़ी आशायें थी। परन्तु समय के प्रहार ने आशाओं के सुन्दर प्रासाद को धराशायी बना डाला।

५—श्री ज्ञान ऋषिजी महाराज

आप गृहस्थावस्था में "श्री बापूलालजी" इस नाम से व्यवहृत किए जाते थे। आप की जन्मभूमि निरवाला (पूर्व खानदेश) थी। जाति से आप देशावासी बीसा ओसवाल थे। वि० सं० १९९० के मन्दसौर-चातुर्मास में आप को कृपालु गुरुदेव चरितनायक पूज्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज के चरणों का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। कुछ दिनों तक चरितनायकजी की सेवा में आपने धार्मिक शिक्षण भी प्राप्त किया परन्तु घरवालों ने आपको विवाह के बन्धनों में बांध दिया। आपकी वैराग्य भावना इतनी प्रबल थी कि आपने अपने धर्म-पत्नी को भी वैराग्य के महापथ का पथिक बना लिया। दोनों ही दीक्षा लेने की भावना रखने लगे। अन्त में वि० सं० १९९६ आषाढ़ शुक्ला २ के शुभ दिन

आपकी धर्मपत्नी महासती श्री रंभाकुवरजी महाराज के पास श्री सुमतिकुवर जी म० के नेश्राय में दीक्षित हो गई और उसके चार दिन बाद आषाढ़ शुक्ला ६ मिरीगांव (अहमदनगर) में पूज्य चरितनायक श्री के चरणों में आपने साधु-धर्म अंगीकार किया। आप का श्री ज्ञानऋषिजी नाम रखा गया।

६. श्री पुष्प ऋषि जी महाराज

आप गृहस्थ में "पूमालाल" इस नाम से पुकारे जाते थे। आप राणावास (मारवाड़) निवासी श्री छोगालाल जी कटारिया के सुपुत्र हैं। वि० सं० २००६ में जब स्वनामधन्य चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज राणावास पधारे तो आपको मान्य चरितनायक की कल्याणकारिणी जिनेन्द्रवाणी सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। चरितनायक श्री की पवित्र वाणी ने आपके मानस में वैराग्य भाव पैदा कर दिया। साधु-धर्म में प्रविष्ट होने के लिए साधु-प्रतिक्रमण का अभ्यास किया और जिन शासन प्रभाविका पंडिता महासती जी श्री रतनकुवर जी म०, प्रभाविक विदुषी श्री बलजकुवरजी म० आदि ठाणे १० की उपस्थिति में इसी वर्ष मार्गशीर्ष शुक्ला ५ गुरुवार के शुभ दिन उदयपुर में महामान्य चरितनायक पूज्य श्री के चरणों में दीक्षित हो गये। आजकल आप पंजाब में पूज्य चरितनायक श्री के साथ विहरण कर रहे हैं। आप वयोवृद्ध होने पर भी बड़े सादगी मय हैं। 'ॐ शांति" का जाप आपको बड़ा प्रिय और सुखद लगता है। इस जाप की आप स्वयं माला फेरते हैं, बाल वृद्ध और युवक सभी को इस जप-अभ्यास करने की सदा प्रेरणा देते रहते हैं। "ॐ शांति" के प्रचारक होने के कारण ही पंजाब की जनता में आप "ॐ शान्ति" इसी नाम से पहचाने जाते हैं। आजकल आप एकान्तर तप की आराधना कर रहे हैं।

७. श्री हिम्मत ऋषिजी महाराज

आपश्री हिम्मतमल जी मगहता चवाला (बरार) निवासी श्री छोगमल जी भंडारी के सुपुत्र थे। माता का नाम श्री दगड़ी बाई था। आपकी वैराग्य-भावना का सर्वाधिक श्रेय पंडिता महासती श्री सिरेकुवरजी म० तथा महासती श्री फूलकुवरजी म० को है। इन्हीं के उपदेशों से प्रभावित होकर आप साधना के महापथ पर चलने को तैयार हुए थे। भीलवाड़ा चातुर्मास में दीक्षाग्रहण के विचार से आप महामान्य चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज की सेवा में पहुँचे। और वि० स० २००८ मार्गशीर्ष शुक्ला ५ सोमवार के शुभ दिन चरितनायक जी के पवित्र हाथों से भीलवाड़ा (राजस्थान) में दीक्षित

हुए। दीक्षा समारोह में मुनिश्री छोगालाल जी म०, मुनि गोकुलचन्द्र जी म०, पंडिता महासती श्री रतनकुंवर जी म०, श्री रामकुंवर जी म० तथा भदेश्वर वाले सोभागाजी म० (टीबू जी) आदि साधु-साध्वियों की भी उपस्थिति थी।

धार्मिक शिक्षण की ओर आपका पर्याप्त लगाव था। आपने श्री ति०र० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी (अ० नगर) की विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। बबोरा में आपने मुनिश्री मोतीलाल जी म० से आचारांग 'सूयगडांग' जीवाभिगम और भगवती सूत्र का शिक्षण प्राप्त किया। अजमेर चातुर्मास में मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी म० (छोटे) से आपने ज्ञानलब्धि, नवतत्त्व, अठाणु बोल का बासठिया, गतागति आदि ८-१० थोकडों का ज्ञान प्राप्त किया। इस तरह अध्ययन क्षेत्र में आपने अच्छी प्रगति की थी।

८-श्री चन्द्रऋषि जी महाराज

आप गृहस्थावस्था में चांदमल के नाम से प्रसिद्ध थे। आपके पिता कडा (अहमदनगर) निवासी श्री चुन्नीलाल भंडारी और, माता का नाम श्रीमती सक्करबाई था। अहमदनगर में विराजित प्रवर्तनी महासती श्री उज्ज्वलकुंवर जी महाराज के मंगलमय उपदेश सुनकर आपके मन में वैराग्य-भाव उत्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप दीक्षा लेने की भावना से आप वि० सं० २०१० के जोधपुर चातुर्मास में चरितनायक पूज्य श्री आनन्दऋषिजी महाराज की सेवा में उपस्थित हुए। अन्त में, इसी वर्ष कार्तिक शुक्ला ५ (ज्ञानपंचमी) के शुभ दिन श्रमणसंघ के मान्य उपाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज के पवित्र हाथों से दीक्षित हुए और आपको मान्य चरितनायक पूज्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज का शिष्य बनाया गया। आप सेवाभावी और साधनाप्रिय सन्त हैं। आजकल आप पंजाब में पूज्य चरितनायकजी के साथ ही रह रहे हैं। आचार्य श्री की सेवा का आप विशेष ध्यान रखते हैं। सेवाकार्य से निवृत्त होकर आप अपना अधिक समय माला जपने एवं स्वाध्याय में व्यतीत करते हैं। परिणामस्वरूप आपको सभी सन्त "भक्त जी" के उपनाम से पुकारते हैं।

९-श्री कुन्दनऋषि जी महाराज

आप गृहस्थावस्था में मनसुखलाल जी के नाम से बुलाये जाते थे। आप मिरी ग्राम निवासी श्री चंदनमलजी मेहेर के सुपुत्र हैं। मिरी गांव में चरितनायक आचार्य सम्राट् का पदार्पण हुआ तब आप श्री के उपदेश से वैराग्य भाव का उदय हुआ, परिवार वालों के आज्ञा से आप चरितनायक की

श्री रत्नमुनि जी महाराज 'मारवाड़ी'

भरी जवानी में आपने ज्ञान-वैराग्य के महापथ पर चलना आरम्भ कर दिया। [illegible] में पण्डित रत्न मुनि श्री [illegible] महाराज के पवित्र चरणों में दीक्षित हुए थे। आप शिक्षित सन्त हैं। धार्मिक शास्त्र में आपकी पर्याप्त प्रगति है। हिन्दी, संस्कृत का आपको अच्छा ज्ञान है। अंग्रेजी भाषा का भी वर्तमान में शिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।

संयम लेने से पूर्व आपका नाम "श्री रामलालजी [illegible]" था। आप [illegible] है, [illegible] आपका गोत्र है। पिता का नाम श्री [illegible]रामजी तथा माता का नाम श्री [illegible] देवी है। आपका जन्म मुलतान (पंजाब) में हुआ था। भारत विभाजन के कारण आपकी जन्मभूमि पाकिस्तान में चली गई है।

गत तीन वर्षों से आप महाभाग्य चरितनायक जैन धर्म दिवाकर, आचार्य सम्राट् पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज की सेवा में रह रहे हैं।

चरितनायक श्री की सेवा में आपने अध्ययन तथा व्याख्यान क्षेत्र में सराहनीय उन्नति की है। आप एक होनहार, मिलनसार, हँसमुख, सेवाप्रिय, अध्ययनशील, सहृदय तथा परिश्रमी सन्त हैं। पूज्य चरितनायक श्री की पवित्र छाया तले आचार-विचार की उन्नति करते हुए आप जैन-जगत् को अपनी अध्यात्म सेवाओं से प्रतिलाभित करेंगे, ऐसी पूर्ण आशा है।

समताभाव से निभा लेते हैं, इस प्रकार जीवन की कला में आप कुशल एवं प्रवीण है।

आप व्यावहारिक और धार्मिक ज्ञान के प्रबल पुरस्कर्ता हैं, जिसके लिए दिन-रात सतत प्रयत्नशील रहते है जिसके फलस्वरूप आज महाराष्ट्र में अहमदनगर जनपद के पाथर्डी तहसील में एक टेक्निकल विद्यालय और धार्मिक परीक्षा बोर्ड चल रहा है, जिसके द्वारा समाज की अच्छी सेवा हो रही है।

सम्यक्‌दृष्टि के अनेक लक्षणों में एक लक्षण गुणग्राहकता का भी है। आपके जीवन में गुणग्राहकता ठूस ठूस कर भरी हुई है। जैसे कृष्ण महाराज ने सड़ी हुई कुत्ती को देखकर उसके अन्य सड़े हुए अंगों की ओर ध्यान न देकर उसके शुभ्र दांतों की प्रशंसा की उसी प्रकार आप की दृष्टि भी सदैव गुण ग्रहण की ओर झुकी हुई रहती है।

आपकी उम्र ६६ वर्ष की है, पर आपका सेवा कार्य २८ वर्ष के नवयुवक सा है, पर शरीर की ओर ध्यान न देते हुए सदैव उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ अपने कार्यों में व्यस्त रहते हैं।

आप दीन दुखियों के प्रति सदैव सहानुभूति की शीतल सरिता बहाते रहते हैं। इस प्रकार आपका हृदय सागर करुणा जल से ओत प्रोत है, ऐसे सम्पूर्ण सद्‌गुण सम्पन्न आचार्य देव को प्राप्त कर के अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन समाज अपने को धन्य का अनुभव कर रहा है।

हमारे आचार्य देव को आरोग्य और दीर्घायुष्य प्राप्त हो ऐसी शासन देव से नम्र प्रार्थना करते हैं। पूजनीय आचार्य देव स्व-पर कल्याण की अधिकाधिक सेवा करें, यही हार्दिक मंगल कामना है।

प्रवर्तक विनयऋषि

आचार्य भगवान् के चरणकमल में श्रद्धाञ्जलि

इस विश्व के रंग मंच पर न जाने कितने नट अपनी-अपनी लीला दिखाने आते है और आकर चले जाते हैं, इस विश्ववाटिका में कितने सुमन खिलते है और मुर्झा जाते हैं। गगनांगण में कितने तारे चमचमाते हुए उदय

रहते हो। यादगार इस बात का प्रमाण है कि युवावस्था में कितना ओजतेज रहा होगा। मानो आप श्री की वाणी में एक विलक्षण प्रभाव है।

ऐ संघ शिरोमणे! आप श्री की गम्भीरता, निर्भीकता, निष्पक्षता, धीरता, वीरता, गंभीरता, सौजन्यता, मनस्विता आदि की ज्योत्स्ना समूचे भूमण्डल को ज्योतिर्मय बना रही है। आप श्री के प्रशंसनीय उच्च चारित्र ने ही आप श्री को लोकमान्य सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया है। आप जैसे कर्ण-धार को पाकर जैन समाज गौरवान्वित हो रहा है। वस्तुतः आप श्री जी जैन समाज में प्रतिष्ठित ही नहीं अपितु लोक व्यापिनी कीर्ति से अलंकृत हो रहे हैं।

ऐ गुण गण रत्नाकर! विद्वत्ता की दृष्टि से कुबेर के अक्षय भंडार की भांति आप श्री का ज्ञान भंडार अक्षय है। समुद्र रत्नों का आगर होकर भी कृपणवत् है और उसकी जलराशि अथाह होते हुए भी खारा है, किन्तु आप श्री उदार चेता हैं। आप श्री की अमृतवाणी रूपी पानी का पीते-पीते मन डूबता नहीं है, जब आप श्री के पवित्र मुखारविन्द से धर्मपावनी, कर्मनाशिनी, भव्य जनमन आह्लादनी सतत निःसरित वीतरागवाणी का झरना झरता है तब मुमुक्षु प्राणी बरबस प्रवचन प्रवाह में बह जाते हैं और वाह-वाह करते हुए अपने आपको कृतार्थ मानते हैं। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी इत्यादि भाषाओं के आप पूर्ण विज्ञ हैं। शास्त्रीय ज्ञानार्जन में और उनके विवरण में भी आप श्री अग्रगण्य हैं, ज्ञानकार्य सदा सर्वदा चलता ही रहता है। शास्त्रीय प्रश्नों का विश्लेषण और स्पष्टीकरण करने में आप श्री सिद्ध-हस्त एवं कुशल हैं।

ऐ आराध्यदेव संघेश! आप श्री के दिव्य भव्य विशाल ललाट पर एक अलौकिक प्रकार की आभा देदीप्यमान रहती है, आप श्री की शान्त कान्त प्रसन्नतायुक्त मुखाकृति मानो साधुता की जीवित प्रतिमूर्ति है। जो एक बार आप श्री के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त कर लेता है मानो वह सदा के लिए आपका क्रीतदास की तरह बन जाता है। प्रतिदिन सैकड़ों दर्शनार्थियों का तांता सा लगा रहता है किन्तु आप श्री की यह एक बहुत बड़ी विशेषता देखने में आई है कि आपके मन में या तन में व्यग्रता एवं घबराहट दृष्टिगोचर नहीं होती। आपका मुस्कराता हुआ सौम्य मुखमंडल सदा एक समान रहता है। यथानाम तथा गुणवाली उक्ति आपश्री ने चरितार्थ कर दी है।

ऐ ज्योतिर्धर ऋषिराज! आप श्री जी का जीवन उज्ज्वल समुज्ज्वल

उज्ज्वल धवल आचार निष्ठा एवं समूचे संघ के सफल नेतृत्व की लोक मानस पर गहरी छाप है।

इस छोटे से सन्त-जीवन में मुझे तीन बार आचार्य श्री जी के पुण्य-पुनीत दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। प्रथम बार नाथद्वारा (मेवाड़) द्वितीय बार पूनाचपुरा (विजय नगर) और तीसरी बार आगरा (यू०पी०) में। सरल और सौम्य मानस मृदु एवं मधुर वाणी वर्ताव-व्यवहार में कुसुमादपि मृदुल तथा आचार निष्ठा में वज्रादपि कठोर कुल मिलाकर श्रद्धेय आचार्य श्री के अप्रतिम व्यक्तित्व का एक दिव्य भव्य चित्र आज मेरे मन की आँखों में स्पष्ट झलक रहा है। जैन समाज में ऐसा योग्यतम एवं महनीय व्यक्तित्व मेरे देखने में, सुनने पढ़ने में नहीं आया जिसने एक ही जीवन में तीन-तीन बार संघ के महत्त्वपूर्ण आचार्य-पद पर अभिषिक्त एवं प्रतिष्ठित होने का गौरव सम्प्राप्त हुआ हो, पहले अपनी ऋषि-सम्प्रदाय दूसरी महत्तर प्रान्त में छह सम्प्रदाय तथा वर्तमान में श्रमण संघ के आचार्य-पद को सुशोभित करने का उन्हीं को श्रेय प्राप्त हुआ है उनकी गरिमा महिमा, योग्यता, धीरता-गम्भीरता कुशलता दक्षता का इससे अधिक ज्वलन्त परिचय और क्या हो सकता है?

वास्तव में महामहिम आचार्य श्री जी आज समाज के कुशल भाग्य विधाता, संघ के सर्व अधिनेता एवं शास्ता और जन जागरण के सफल अधिनेता हैं। भारत के सुदूर प्रान्तों में उनका दिव्य व्यक्तित्व सहस्रमुख होकर सुरभित होता रहा है और हो रहा है। इस मनस्वी, यशस्वी, तपस्वी, तेजस्वी शास्ता अधिष्ठाता को पाकर समूचा संघ भाग्यशाली एवं गौरवान्वित हो उठा है। उनके सफल सशक्त नेतृत्व में समाज तथा संघ ने सुख-शान्ति का मधुर वरदान पाया है। झंझावातों और तूफानों में भी वह सशक्त समर्थ कर्णधार बनकर संघ की नैया को अपने कुशल और मजबूत हाथों से खेते चले जा रहे हैं, और भी स्पष्ट भाषा में कह दूँ तो समूचा श्रमणसंघ आज इस कर्मठ प्रशास्ता एवं लौह पुरुष के हाथों में अपने जीवन की बागडोर सौंप कर बेफिक्री और चैन की सांस ले रहा है।

सचमुच आचार्य श्री जी का महामहिम व्यक्तित्व धर्मनिष्ठा एवं पुरुषार्थ वृत्ति का एक जीता जागता रूप है, श्रमणसंघ के महत्त्वपूर्ण आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित होने पर वृद्ध अवस्था में भी कहीं गद्दी जमाकर स्थिरवासी नहीं हुए, आत्मा में बल, मन में तरंग, कदमों में दृढ़ता जोश और वाणी में दिव्य आलोक लिए आचार्य श्री निरन्तर पदविहार करते रहे हैं, और कर रहे

किसी ऐसे आचारनिष्ठ प्रमुख सन्त को नियत करने की आवश्यकता होती ही है जो समूचे संघ की नैया का खिवैया बनकर चतुर्विध संघका अभ्युदय और कल्याण साध सके।

अन्तत: श्रमण संघ के भाग्य-विधाताओं की दृष्टि तत्कालीन श्रमणसंघ के उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी महाराज पर टिकी। संघ के प्रमुख तत्वों ने सोचा श्रद्धेय प० रत्न श्री आनन्द ऋषिजी महाराज इस महत्वपूर्ण पद के लिए सर्वथा योग्य हैं। क्योंकि ऋषि-सम्प्रदाय मरुधरीय पट्ट सम्प्रदाय के वे पहले आचार्य रहते आये हैं और श्रमणसंघ के उपाध्याय-पद पर भी सुशोभित रहे हैं। धर्मशासन करने के लिए उनके पास संघ सेवा के दीर्घकालीन अनुभवों की अमूल्यनिधि है। आचार-निष्ठता एवं ज्ञाननिष्ठता है। समाज तथा संघ की नब्ज-नाड़ी को वे भलीभांति परखते जानते समझते हैं। परिणामतः श्रमणसंघ के वरिष्ठ सन्तों ने सर्वसम्मति से उन्हें श्रमणसंघ के द्वितीय पट्टधर शासक के रूप में आचार्य घोषित कर दिया गया, श्रमणसंघ के विधायकों का यह सही दिशा में चिन्तन पूर्ण उद्घोष था और यह तथ्य सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी महाराज श्रमणसंघ की नैया के समर्थ कर्णधार प्रमाणित हुए हैं, वे अनेक तूफानों, बवंडरों, भयंकर झंझावातों और भयावह संकटों से संघ की नैया को बचाते और खेते चले जा रहे हैं।

अप्रतिम व्यक्तित्व

आचार्य श्री जी का व्यक्तित्व असन्दिग्ध रूप से अप्रतिम अद्वितीय, उज्ज्वल समुज्ज्वल एवं विशाल-विराट है। आपश्री का स्वभाव अत्यन्त मृदु, सरल तथा निश्छल है। संघ में लघु से लघु सन्त के प्रति भी विनम्र सरल निश्छल मृदुल-मधुर बर्ताव व्यवहार रखना यह आचार्य श्री के जीवन का सर्वोपरि विशेषता है। उच्चता के अभिमान-अभिनिवेश का गन्ध तक भी आपके तन-मन को छू तक भी नहीं पाती है। और भी स्पष्टतम शब्दों में कहूं तो आचार्य श्री जी पृथ्वी के समान क्षमाशील, चन्द्रमा की भांति शीतल, सिन्धु सागर की तरह सघन गम्भीर, सुमेरु की भांति अचल-अविचल हैं। अपनी संयम निष्ठा एवं आचार प्रतिष्ठा में आप वज्र से भी कठोर, संघ के प्रति कुसुम से भी मृदु हैं। ऐसे महामहिम व्यक्तित्व की थाह कौन पा सकता है? उनके जीवन एवं व्यक्तित्व पर यह प्राचीन उक्ति पूर्णतः ठीक बैठती है।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति॥

पड़ाव पर पहुंचने पर भी उन्हें सतत साधना में रत, स्वाध्याय-चिन्तन में लीन पठन लेखन के कार्य में सलग्न तथा ज्ञान-ध्यान में निमग्न पाया। गजब की कर्मठता एवं प्रबल पुरुषार्थ है इस वीर महाश्रमण के जीवन के कण-कण और क्षण क्षण में।

संघैक्य के लिए सतत प्रयत्नशील

कितना भाग्यशाली है, श्री संघ जिसे ऐसे तपोनिष्ठ, ज्ञाननिष्ठ एवं पुरुषार्थशील आचार्य मिले है ऐसे महामहिम आचार्य को पाकर समूचा श्रमण-संघ निहाल और खुशहाल हो गया है। सच्चे अर्थों मे आप संघ के कुशलतम शास्ता तथा हितैषी है, संघ में साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका वर्ग मे ज्ञान दर्शन चारित्र की अभिवृद्धि हो, इसके लिए आप सतत प्रयत्नशील रहते हैं, संघ हित एवं संघ-निष्ठा की भावना को साकार करने के लिए ही आजकल वृद्धा-वस्था मे भी विहार यात्रा कर रहे हैं, वास्तव मे उनकी यह विहार यात्रा संघ की यात्रा है, धर्म की यात्रा है। संघ के साथ आचार्य श्री जी एकीभूत और साकार हो गये है।

संयमनिष्ठ एव आचारनिष्ठ होने के अतिरिक्त आचार्य श्री जी अपने समय के एक प्रभावशाली प्रवक्ता भी है। आपकी वाणी मे ओज है, शब्दों मे माधुर्य है, आप श्री का प्रत्येक वाक्य अन्तरतम की गहराईयों से नप-तुल कर वाणी पर थिरकता है तो जन-मन मुग्ध तथा भावविभोर हो जाते हैं। आप श्री जी जहां पधारते हैं, वहीं पर जन-मानस मे ज्ञान-दर्शन चारित्र की भावना हिलोरे लेने लगती है। अपने भाषणों मे संघ एकता तथा संघ सेवा पर बड़ा ही जोर देते है, चतुर्विध संघ खूब फूले-फले आगे बढ़े, संघ में सदा शान्ति रहे, संघ संगठित रूप मे सतत गति-प्रगति करे, संघ का अभ्युदय सबका अभ्युदय, संघ की सेवा भगवान की सेवा है और संघ की अवहेलना भगवान् की अवहेलना है, आचार्य श्री जी का यही आदेश है, यही उपदेश है, "संघे शक्तिः कलौ युगे" इस महान आदेश को वे कभी नहीं भूलते।

एक घुमक्कड़ महायोगी

आचार्य श्री जी अपने युग के एक घुमक्कड़ महायोगी है यह अधिकार की भाषा मे कहा जा सकता है! महाराष्ट्र, गुजरात, दक्षिणभारत, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, पंजाब, जम्मू (कश्मीर) तथा जंगलप्रदेश भारत का कितना लम्बा मैदान आचार्य श्री जी ने अपने पैरों से नापा है! अखिल भारतीय श्रमणसंघ के अधिनायक

संघनायक की विशाल दृष्टि

परमश्रद्धेय आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म० का सर्वप्रथम सन् १९५२ मे सादड़ी सम्मेलन के अवसर पर दर्शन करने का सौभाग्य मिला। उस समय आप पांच सम्प्रदाय के आचार्य थे। आपके सम्बन्ध मे पहले बहुत कुछ सुना था परन्तु दर्शन करने का अवसर न मिल सका। सादड़ी मे आपके कमरे मे महाराष्ट्र से आये हुए दर्शनार्थियों की इतनी भीड़ लगी रहती थी कि नये और अपरिचित व्यक्ति को आपके चरणों तक पहुँचने का अवकाश ही नहीं मिलता था, श्रमणसंघ की निर्मिति के समय ही आपके विचारों से परिचित होने का अवसर मिल पाया।

मैंने सादड़ी सम्मेलन मे देखा कि आपके मन मे संघको संगठित रूप देखने की तीव्र अभिलाषा थी और आज संगठनको दृढ़ बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। सादड़ी से पहले नया शहर (ब्यावर) मे पांच-सम्प्रदायों का एक छोटा सा सम्मेलन हुआ था जिसमें जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म०, आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म०, मालव-केसरी श्री सौभाग्यमलजी म०, शीतलदासजी सम्प्रदाय के श्री छोगालालजी म०, तथा कोटा सम्प्रदाय के श्री राम कुमारजी म० इन पांचों-सम्प्रदायों ने मिलकर एक संघ बनाया, उस संघ के आचार्य भी आप ही थे, आप स्वभाव से बहुत सरल, मधुर एवं मिलनसार हैं, आप सदा बिखरी हुई कड़ियों को जोड़ने मे संलग्न रहते हैं। सादड़ी-सम्मेलन को सफल बनाने मे आपने पूरा सहयोग दिया अपनी सारी शक्ति उसी मे लगा दी।

आपके जीवन मे अनेक विशेषताओं मे से एक विशेषता यह भी रही है संघ संचालन की कला में आप बहुत कुशल हैं। छोटे-बड़े प्रत्येक साधु को किस प्रकार निभाना यह अच्छी तरह जानते हैं। किस साधु को किस प्रकार समझाना चाहिये और उसकी मनोवृत्ति कैसी है यह जानने की कला मे आप प्रवीण हैं। यही कारण है कि ऋषि-सम्प्रदाय के तो आप आचार्य थे ही पर श्रमण संघ ने आप को प्रधानमंत्री-पद देकर श्रमणसंघ की व्यवस्था का दायित्व आपके कंधों पर डाल दिया। उसके बाद भीनासर सम्मेलन मे आपकी योग्यता एवं कार्यशक्ति को देखकर आप श्री को उपाध्याय-पद प्रदान किया गया। सन् ५९ मे श्रमणसंघ के प्रथम आचार्य श्री आत्मा राम जी म० का स्वर्गवास हो जाने और पूज्य गुरुदेव उपाचार्य श्री गणेशी लालजी म० के द्वारा श्रमणसंघ से त्यागपत्र दे देने के कारण श्रमणसंघ ने आपको आचार्य-पद से विभूषित किया। आज तक मैंने देखा है कि आपने जिस उत्तरदायित्व को स्वीकार किया उसे बहुत ही सुन्दर ढंग से निभाया और आज भी अपने दायित्व का परिपालन कर रहे हैं।

सादड़ी के पश्चात् सोजत-सम्मेलन के समय पुन दर्शनो का अवसर मिला। सम्मेलन के कुछ दिन पहले सोजत रोड मे आपकी सेवा मे रहने का अवसर मिला। उस समय मैंने आपको निकट मे अतिनिकट देखा परखा है। आप का स्वभाव बहुत मधुर एव मिलनसार है, अपरिचित व्यक्ति भी प्रथम मिलन के समय उतना ही स्नेह पाता है, जितना एक परिचित व्यक्ति प्राप्त करता है। आप छोटे-बड़े सभी साधुओं से बड़े स्नेह से मिलते रहे है, और सबको साथ लेकर चलने का प्रयत्न करते रहे हैं।

सादड़ी से लेकर भीनासर तक के तीनों सम्मेलनो में मैने आप श्री को प्रधानमत्री एवं प्रधानमत्री से उपाध्याय-पद को स्वीकार करते हुए देखा है। सादड़ी, सोजत एव भीनासर सम्मेलन के प्रारम्भ मे जबतक आप श्रमणसघ के प्रधानमत्री रहे मुझे आपके निकट पहुँचने का प्रसग आता रहता था, मै सम्मेलन का कार्यवाही लेखक (Reporter) था और मुझे सारी कार्यवाही प्रधानमत्री को सौंपनी पड़ती थी। उन दिनो मैंने देखा है कि आप कार्य मे अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी मुझे पूरा समय देते थे और मेरी बात को ध्यान से सुनते थे।

आप प्रारम्भ से सगठन के पक्ष मे रहे है, अनेक बार विघटन की आंधियाँ आई, कुछ वरिष्ठजनो ने सघ को छिन्न-भिन्न करने का अन्दर ही अन्दर प्रयत्न करते रहे परन्तु आपने अपनी कुशलता से सघ के प्रयत्नो को विफल कर दिया।

श्रमणसघ मे कुछ विचार भेद है, भीनासर सम्मेलन मे ध्वनिवर्द्धक यत्र, सचित्ताचित्त फलो आदि का निर्णय हो जाने पर भी अभी मन-मस्तिष्क बिल्कुल साफ नहीं हुए हैं। कुछ वरिष्ट सन्त आज भी ध्वनिवर्द्धक का उपयोग नही करते हैं, परन्तु श्रमणसघ के अधिकाश साधु आवश्यक होने पर उसका उपयोग भी करते हैं, यह विचारभेद आज का नही, पूर्व परम्परा से चला आ रहा है। नये और पुराने विचारों के बीच सदा से विचारो की खाई रहती आई है। उसे पाटने का प्रयत्न किया गया, पर वह कभी भी पूर्णत, नही पट पाई है, फिर भी इतना तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि आचार्य श्री का किसी से विचार भेद हो सकता है, पर मनभेद नहीं है, वे इतने उदार और नम्र हृदय के है कि नये और पुराने सभी विचारों को एक दृष्टि से देखते हैं। पंजाब यात्रा के समय पजाब अभिनव विचारक साधु-साध्वियों एव श्रावकसघ ने जो स्वागत किया और गाव-गाव में साथ रह कर आचार्य श्री जी की सेवा सुश्रूषा की उससे

श्री की सूक्ष्म बुद्धि दार्शदृष्टि गहनचिंतन एवं चिन्तन मनन पूर्वक नपे-तुले शब्दों के रूप में बोली जाने वाली वाणी तथा सभी से समान स्नेहपूर्ण आत्मीयता का व्यवहार — यही कुछ वैयक्तिक विशेषताएँ हैं—जो मैं उस समय अपने मानस पटल पर अंकित कर सका।

कुछ और संस्मरण

इसके पश्चात् आचार्य श्री के शुभ दर्शन पंजाब प्रवेश के समय अम्बाला में हुए थे। अम्बाला शहर से महात्मा प्रवर्तक मुनि पंडित श्री शुक्लचन्द्र जी म० ने जिन कुछ विशिष्ट सन्तों को अम्बाला छावनी में श्रद्धेय आचार्य श्री जी की अगवानी करने के लिए भेजा था - उन्हीं में इस अकिंचन का नाम भी था। श्रद्धेय आचार्य श्री जी के अम्बाला छावनी में पधारने से एक दिन पूर्व ही पंडित प्रवर श्री उमेश मुनि जी के साथ अपने गाम - मुनि द्वय, सावधान कुछ आहार पानी लेकर श्रद्धेय आचार्य श्री जी की पुनीत सेवा में - एक छोटे से गाव में जहाँ श्रद्धेय आचार्य श्री जी विराजमान थे — उपस्थित हो गये।

चिरकाल के पश्चात् मिलने पर भी श्रद्धेय आचार्य श्री जी ने अपनी उस भुवन मोहिनी मुस्कान के साथ पहिचानते हुए हमें स्नेहपूर्वक अपनाया तथा हमारी तुच्छ भेंट को सहर्ष स्वीकार करके हमें उपकृत किया। इसके पश्चात् तो अम्बाला छावनी, अम्बाला शहर, पटियाला, लुधियाना तथा मालेरकोटला आदि अनेकानेक स्थानों में श्रद्धेय आचार्य श्री जी के शुभ स्वागत करने और साथ रहने का गौरव प्राप्त होता ही रहा, सेवा का शुभ अवसर मिलता ही रहा।

तो इन थोड़े से संस्मरणों के माध्यम से मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी का सरलता, सात्विक ममता एवं वात्सल्य से परिपूर्ण हृदय किस प्रकार छोटे से छोटे सन्त तक के लिए स्नेह एवं सौजन्य से परिपूर्ण रहता है ? तथा श्रद्धेय आचार्य श्री जी के वरद हस्त किस प्रकार मुक्त हृदय से छोटे से छोटे सन्त पर भी अपने शुभाशीर्वाद की वर्षा करते नहीं अघाते, नहीं थकते।

गणना से परे

अधिक क्या ? श्रद्धेय आचार्य श्रीजी में सरलता, स्नेह, सेवा, सहिष्णुता सद्भावना एवं संगठन आदि विशेषताएँ इतनी प्रचुर संख्या में विद्यमान हैं यदि प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन भी किया जावे तो महाकाय-ग्रन्थ तैयार हो

आपके आचार्य बनने के करीब दस ही महीने बाद गुरुदेव श्री दिवाकर जी म० का स्वर्गवास हो गया। दिवाकर जी गुरुदेव के देहावसान के पश्चात्, जब हम मुनिगण आगरा में विराज रहे थे तब आपश्री भी आगरा में ही विराज रहे थे। उस समय आपश्री की सादगी एवं सहृदयता ने मुझे आकर्षित किया। आचार्य पदपर शोभित होते हुए भी आप में शिशु की सरलता थी। यही बात का मालूम हो सकता इसी कि एक आचार्य भी सरल ही दिख सके। ऐसी विलक्षण प्रतिभा और उसके सरलता का गुण किन्हीं भाग्यशाली में ही दिखाई देता है। मुझे आपश्री की कृपा से (आगरा में) ही सदा प्राप्त होती रही।

कार्य-कुशलता

सादड़ी सम्मेलन में जब सभी उपस्थित आचार्य भगवंतों ने अपने तीसरे पद से त्याग किया तब आपश्री को श्रमण संघ का प्रधानमंत्री पद प्रदान किया गया। संघ का नामकरण भी आपश्री जी की सूझ-बूझ का फल है। श्रमणसंघ के प्रधानमंत्री पद की जिम्मेदारी को आप ने इस शान से सम्भाला कि आपश्री सर्वप्रिय बनने लग गये। न्याय अनुशासन का पालन कराते हुए भी आपश्री ने कभी किसी के साथ कटुता नहीं की। संघ के प्रति विरोधी वातावरण के बीच में भी आप कभी हतोत्साहित नहीं हुए। आन्तरिक एवं आपसी समस्याएँ सुलझाने में आपश्री पुल का काम करते थे। कहना न होगा कि प्रधानमंत्री पद से मुक्त होना भी श्रमणसंघ की कड़ियों के अस्थिर शिथिल होने का कारण रहा। सादड़ी, सोजत एवं भीनासर सम्मेलन में भी मुझे आपश्री के कार्य संचालन को देखने का अवसर मिला है। गंभीर से गंभीर वातावरण में भी आपश्री के सुलझे विचार दर्पण के सदृश स्पष्ट होते हैं।

संघ शिरोमणि

बंबई में श्रमणसंघ के द्वितीय पट्टधर शोभित होने के पश्चात् आप श्री ने प्रतिनिधि मुनिराजों का सम्मेलन होना आवश्यक समझा और आपश्री ने बंबई से मध्यप्रदेश की ओर प्रस्थान किया। मध्यप्रदेश अपने प्रांगण में आचार्य देव को पाकर फूला नहीं समा रहा था। चातुर्मास के पश्चात् अजमेर सम्मेलन में पधारने के लिए उज्जैन पधारे तभी से मध्यप्रदेश के मुनिगण आपश्री की अगवानी के लिए तत्पर हो गये। प्र० वक्ता श्री सौभाग्यमल जी म०श्री तो नागदा पधार ही गये थे। जावरा चातुर्मास की पूर्णाहुति कर रतलाम होते हुए मैं भी अपने सिंघाड़े के साथ खाचरोद पहुँच गया था। आचार्य देव जिस दिन खाचरोद

पधारने वाले थे उसके पूर्व रात्रि को ही बरसात अपने पूरे वेग में पृथ्वी को सरस बना चुकी थी किन्तु आचार्य श्री के आगमन से भक्तों का हृदय-क्षेत्र उससे भी अधिक वेग से भक्तिरस से प्लावित हो चुका था। आचार्यश्री वृन्दावन से विहार कर खाचरोद पधार रहे थे। पूरा मार्ग कीचड़ से अवरुद्ध था। मालवा शस्य-श्यामला भूमि प्रसिद्ध है। किन्तु आचार्य श्री अपनी मस्तीभरी गजगति से पधार रहे थे। वन्दन करते ही आपने अपनी मृदु मुस्कान का दान दिया।

खाचरोद और रतलाम सैलाना और जावरा, मंदसौर और नीमच मालवा का कोई क्षेत्र आपके स्वागत में पीछे नहीं रहा, पग-पग पर भक्ति-भावों की गंगा प्रवाहित हो उठी थी, भव्य स्वागत में उमड़ती मानव-सरिता, युवकों का उमड़ता-उफनता प्रवाह लिये रतलाम एक इतिहास बना रहा था, रतलाम में ऐसा भव्य स्थानकवासी समुदाय का सम्मिलित उत्साह दिवाकर गुरुदेव के पश्चात् पहलीवार देखने को मिला।

अपने आचार्यश्री के प्रति ऐसी श्रद्धा और निष्ठा आपश्री के व्यक्तित्व की परिचायक थी।

मुझ जैसे लघु मुनि से भी समय-समय पर समाज की गुत्थियों पर विचार करना और उसे समाधान एवं सद्भावना पूर्वक सुनना आपकी अपनी विशेषता है। समाज को प्रगतिशील मार्गदर्शन देना साधु-साध्वी समाज को विद्वान एवं चरित्रशील बनाना, श्रावक समाज को सुव्यवस्थित सुगठित कर देना आदि कई योजना आप श्री के मानस में है संघ को भी आप श्री से बहुत बहुत आशायें हैं किन्तु अभी तो आपश्री की शक्ति श्रमणसंघ पर होने वाले प्रहारों को दूर करने में ही लग रही है। समाज में वह सुदिन आवे जब आचार्यश्री की शक्ति से केवल दक्षिण ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत का स्थानकवासी समाज लाभान्वित हो यही इच्छा है।

सर्वांग कहिये या श्रमण संघ के प्रथम-आचार्य पं श्रद्धेय आत्माराम जी महाराज एवं द्वितीय पट्टधर हैं आनन्दऋषिजी महाराज—आत्मा + आनन्द आत्मानन्द-आचार्यों के संघ को कहिये भी तो यही आत्मानन्द।

शतावधानी वक्ता पं० श्री अशोक मुनिजी म०—'साहित्य रत्न'
विक्रमादित्यजी
इन्दौर सिटी दि० [illegible]

मेरे हृदय के आनन्द

हमारा समाज बहुत विस्तृत एवं विकसित है, तथापि उसकी धार्मिक शक्तियाँ भिन्न-भिन्न दिशाओं में बिखरी पड़ी हैं, उनकी प्रगति की गति नहीं जैसी है। जैन समाज का अस्तित्व आज झकोर का झकोर खा रहा है पर सौभाग्य की बात है कि ऐसी समाज की नौका एक कुशल नाविक के हाथ में दे दी है जो घाटी-तूफानों में भी नाव को बचाने की क्षमता रखता है। उस नाविक का नाम है 'आनन्द'।

मैं जो कुछ लिख रहा हूँ वह सुना-सुनाया या मनगढ़ंत नहीं पर एक अनुभव की वास्तविक कसौटी पर कसने के बाद ही लिख रहा हूँ। ईस्वी सन् १९-१-६३ से १२-८-६४ तक मुझे पूज्य आचार्य श्री जी की सेवा में रहने का जो समय मिला उसके आधार पर ही लिख रहा हूँ। हमारे आचार्य श्री जी का समाज की विभिन्न सृजनात्मक प्रवृत्तियों में बहुत बड़ा योगदान है और जो आप लोकप्रिय बने हैं उसका सबसे बड़ा यही कारण है।

आप के जीवन की सबसे अधिक महानता साहित्य-सेवा, साहित्य-रचना, जन जन के मानस को जैन-धर्म के संस्कारों से संस्कारित बनाना तथा जैन धर्म के सिद्धान्तों को सर्वत्र साहित्य द्वारा पहुँचाना इन्हीं सत्कार्यों में सन्निहित है।

आप का अध्ययन चिन्तन-मनन अधिकतर आध्यात्मिकता तथा सामाजिक उत्थान का ही रहा है। आप का जीवन एक चमत्कारी जीवन है। सुषुप्त समाज में नई चेतना, नया उत्साह लाने का आप अथक प्रयत्न निरन्तर करते चले आ रहे हैं, आप का जीवन दर्पण समान समुज्ज्वल व समाज के लिए मार्ग-दर्शक है।

आप के मुखपर नैसर्गिक सौम्यता जितनी दिखाई देती है उससे कहीं अधिक परम पवित्रता आप के अन्तर में दमक रही है। आप में निष्कपटता सरलता, समता, कष्ट सहिष्णुता, संयमित जीवन यह सब नैसर्गिक या स्वभाव सिद्ध है। आत्मज्ञान आप के व्यक्तित्व में प्रतिबिम्बित होता ही रहता है, तथा आप की शुद्ध दिनचर्या एक महान आदर्श के लिए हुए है। मैंने देखी आप में गुलाब सी सौरभ एवं मुस्कान, सागर सी गंभीरता, शैल सी दृढ़ता, सूर्य सा तेज एवं चन्द्र सी शीतलता। आप के निकटवर्ती या दूरवर्ती व्यक्तियों को भी भीनी-भीनी महक मिलती है, प्रतिभा, कांति और शान्ति मिलती है।

आप का वाणी-माधुर्य दुखित जन-मन को सुख व शान्ति प्रदान करता है। यह आप का एक जीता-जागता प्रमाण है, जो लोह चुम्बक की भांति सभी को अपनी ओर खींचता है।

इस धरातल पर असख्य प्राणी जन्मते हैं और वे काल-कवलित भी होते हैं, उनकी ओर समाज नही देखती पर कौन व्यक्ति जन्म और मृत्यु के बीच के समय मे स्वय और दूसरों का निर्माण कर सका उसी के आधार पर मे उसके सफल निष्फल जीवन का अदाज लगाती है तथा सन्मान आदि प्रदान करती है। हमारे आचार्य श्री जी ने जब से समाज की बागडोर सभाली तब से ये समाजसेवा व्रत मे, बड़ी निष्ठा से लगे हुए हैं, परिणाम स्वरूप आज हमारा समाज दुनिया के सामने चमक उठा है। आपका मन एक दार्शनिक सरलता को लिए हुए है। आप प्रत्येक समस्याओं पर उसके सामूहिक पक्षो पर विचार करके ही निर्णय करते है इसमे आपका प्रतिद्वन्द्वी भी आपकी दक्षता की प्रशसा करते है।

आप के पास महान् पाण्डित्य है, अद्भुत लेखन शक्ति भी है, जब आप अपने विचारो को किसी के सामने रखते हैं तब उसका तर्क-वितर्क सहसा समाप्त हो जाता है, और उसका समाधान उसको मिल जाता है।

आप एक सफल साधक तपस्वी सत हैं आप अपने परिधान वस्त्र भी शुद्ध खादी के ही रखते है। आप चिन्तन के पथ पर अग्रसर होते हुए भी जैन समाज के निर्धन तथा संस्कारशून्य व्यक्तियों से पर्याप्त सहानुभूति रखते हैं, आपके त्याग की परपरा से प्रत्येक सत-साध्वी तथा श्रावक वर्ग खूब सुपरिचित है, आपको अनेक शास्त्रीय पदवियाँ दी गई तब भी आप को कोई अभिमान नही आया। हमेशा शान्त विनम्रवृत्ति मे ही आप अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

आप संगठन के स्तम्भ हिमायती हैं तथा शुभ निष्ठा से सगठन के अनेकों प्रयत्नो को सफलता भी मिली है। ऐसे ओजस्वी संत के लिए जो भी कुछ लिखा जाय वह थोड़ा है, अत मे श्री शासन देव से प्रार्थना है कि आपश्री चिरायु हो और शासन सेवा के कार्यों मे खूब सफल हो।

श्री श्रमणसघीय तपस्वी लाभ मुनि

चिरंजीवो आनन्द

शिखरणी छन्द

चिरंजीवो आनन्द ऋषिवर स्वामी परणमूं
गुणों की माला में नितहि उठ तेरी वरणवूं
क्षमाधारी पाली मुखदज दया जो जिन कही
कभी भी ये भाषा अलिक मुख बोले गुरु नही ॥ १ ॥

सदा ही शुद्धाचार्य निज मन कैसा बस करे
चरे पक्षी जैसे चतुर चट भारण्ड विहरे
सुनो मेरी साची विनति गुरु मारी रसभरी
बनाओ ऐसा संगठन अब डोरी कस करो ॥ २ ॥

जमाना आया है सबल बन जाओ जगत में
जरा देखो बापू श्रमण गण की हालत तुमें
मुझे देना आज्ञा अनुचर बनेगे चरन में
बजा दो भेरी संगठन चमके जैन जग में ॥ ३ ॥

सुनो है सारे पूज्य गुरुवर तेरे शरण में
सदानन्दी "हीरा" तव चरण वन्दे हर समे

श्री हीरा 'हिमकर'

●

श्रद्धा-पुष्प

सन् १९६३ के दिसम्बर माह में जब मैं मेवाड़ के वीरवान क्षेत्र में प्रचार-प्रसार कर रहा था तब मुझे सूचना मिली कि मैं अपने साथ के मुनि के साथ व वीरवाल समाज में दीक्षित तीनों महासतीजी को निम्बाहेड़ा आकर मिले। यह समाचार वर्तमान श्रमणसंघीय आचार्य प्रवर महान् क्षमा शान्त स्वभावी प्रतिभा-सम्पन्न पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी म. सा. ने मन्दसौर से हमारे को भेजे थे

आचार्य देव की आज्ञा प्राप्त होते ही हम निम्बाहेड़ा पहुँचे। उधर मध्य प्रदेश से आचार्य श्री मुनिराजों व महासतियों के परिवार से वेष्टित

प्रधान उद्देश्य सहयोग और प्रेम था। आगे चलकर इसी संगठन का व्यावहारिक प्रभाव विशाल श्रमणसंघ के रूप में प्रतिध्वनित हुआ। सादड़ी सम्मेलन उसी की एक वृहत्तम प्रतिक्रिया थी।

सादड़ी सम्मेलन में श्रमणसंघ के अत्यन्त महत्वपूर्ण और मानार्ह प्रधानमंत्री-पद पर वर्तमान आचार्य श्री जी नियुक्त हुए। श्रमण संघीय व्यवस्था के दायित्व को निभाने में उनकी प्रतिभा एवं अद्वितीय कार्य-शक्ति को श्रमण संघ ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया था।

श्रमणसंघ की समस्त गतिविधियों के वे केन्द्र समझे गये। अपनी इस अप्रतिम योग्यता के कारण ही आज आप श्रमण संघ के सर्वमान्य एवं सर्व प्रतिष्ठित आचार्य-पद पर सुशोभित हैं।

आचार्य श्री जी के सप्राण निर्देशन से संघ के अनेक साधकों का जीवन बना है, संघ का विकास हुआ है और गौरवपूर्ण इतिहास की सृष्टि हुई है। धार्मिक और शैक्षणिक संस्थानों का प्रादुर्भाव हुआ है। अनेक ज्ञान-सत्र अस्तित्व में आये हैं। उनके मन में संघहित का दृढ़ संकल्प है। संघ का गौरव वे अपना गौरव समझते हैं।

आचार्य श्री जी ने एकान्त व्यक्तिनिष्ठ जीवन का विरोध किया है। उन्होंने मुक्त मन से पारस्परिक सहयोग-युक्त सामाजिक जीवन का समर्थन किया है। आप सामाजिक सुव्यवस्था के लिए अनुशासन की शिक्षा आवश्यक मानते हैं और उसे व्यावहारिक जीवन का एक अत्यन्त आवश्यक अंग समझते हैं।

आचार्य श्री जी अनुशासन के प्रबल पक्षपाती हैं किन्तु ऊपर से बलात् लादे गये तथाकथित भावना शून्य अनुशासन में आचार्य श्री जी का विश्वास नहीं है। वे मानते हैं अनुशासन की भावना संघके प्रत्येक सदस्य के मन में वाणी और कर्म में सहज भाव से परिलक्षित होनी चाहिये। संघ के प्रति आत्मीयता का अनुभव और संघ से सुरक्षितता का भाव ही अनुशासन का मूल प्राण है। अन्दर से जागृत हुआ स्नेहमिश्रित अनुशासन ही संघहित का बुनियादी आधार है इसी से संघ व्यवस्था सुचारु होगी और अव्यवस्था की परेशानियाँ स्वयं कम होगी। आचार्य श्री जी इसी पथ पर निर्बाध गति से चल रहे हैं।

गत कुछ वर्षों में श्रमण संघ में जो तथाकथित घटनाएँ हुई हैं उनका एक मात्र कारण अनुशासन का सुव्यवस्थित नहीं होना है। सुव्यवस्थित अनु-

शासन के लिए संघ में अपेक्षित विचार चर्चा नहीं की गई और न उसके लिए अनुकूल भावना का वातावरण ही पैदा किया जा सका।

इस सम्बन्ध में आचार्य श्री जी के विचारों में एक बात और भी है वह यह कि इन दुर्घटनाओं का उत्तरदायित्व व्यक्तिगत स्वार्थ पर भी है। स्वार्थ से आक्रान्त मानव सामुदायिक विकास की परिकल्पना से वंचित रह जाता है जो व्यक्ति समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व समझता है उसकी भावना सार्वजनिक रूप में व्यापक और उदार होती है, संकीर्ण एवं अशुद्ध नहीं।

आचार्य श्री जी मानते हैं कि सामाजिक जीवन में अगर कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं और विचार तथा आचार को प्रभावित करती हैं तो उनके प्रति तिरस्कार की दृष्टि न अपनाकर एक ऐसी स्वस्थ रचनात्मक पद्धति अपनानी चाहिये जिससे कि समस्याएँ सुलझती जायें और कठिनाइयाँ हमें हतोत्साह न करें और अधिक गतिशील बनायें। इसके लिए सतत चिन्तन नितान्त आवश्यक है।

श्रमणसंघ के कतिपय चिन्तकों ने अन्य प्रकार की व्यवस्था का समर्थन किया है, पर आचार्य श्री जी का उद्देश्य रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए यथोचित अवसर उपस्थित करने चाहिये जिससे कि संघ के कल्याण में प्रत्येक व्यक्ति अपना यथासम्भव निर्माणकारी सहयोग दे सके।

संगठन के विरोध में विरोधी विचारों का अनर्गल प्रचार जब वे देखते हैं तो इसके उत्तर में उनका कहना है कि स्नेह और सद्भावपूर्ण पद्धति को अपनाने से ही इन प्रश्नों का और संघर्षों का अन्त हो सकता है। इसके लिए संघ के प्रत्येक सदस्य को सच्चे हृदय से सहयोगी बनना आवश्यक है। अनुशास्ता और अनुशासित इन दोनों के प्रयोगात्मक प्रयत्नों से ही संगठन सुरक्षित रह सकता है। इनके अभावमें संगठन की सुरक्षा संदिग्ध है। पारस्परिक सौजन्यपूर्ण सहयोग ही संघ के भाग्य का एक मात्र निर्णायक है।

आचार्य श्री का जीवन परम्परागत प्रतिबद्धताओं से विमुक्त नहीं है। वे परम्पराओं का अन्तर्मन से आदर करते हैं फिर भी उपयोगी, स्वस्थ और सुन्दर प्रगतिशील तत्त्वों का भी स्वीकार करने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। यही कारण है कि समय समय पर आचार्य श्री जी ने नये समाज की आवश्यकता के अनुरूप कुछ प्रचलित पुरानी परम्परा में परिवर्तन किया है। वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि परम्परागत रूढ़ियाँ कोई ऐसी बात नहीं हैं जिनमें किसी प्रकार का देश कालोचित परिवर्तन सम्भव नहीं है। देशकालोचित परिवर्तनों का प्राचीन काल से ही हमारे विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

वादी बन कर हमें निरन्तर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते जाना चाहिये। यही संक्षिप्त सूत्र वे समाज को दे रहे हैं।

पूज्य गुरुदेव का व्यक्तिगत जीवन सौम्य, शान्त और नम्रता की प्रतिमूर्ति है। सहिष्णुता और सहनशीलता उनका आदर्श है। इनके विशिष्ट गुणों ने समस्त समाज को प्रभावित किया है। ऐसे गुणरत्न, कर्मठ एवं चरित्रवान् साधकको आचार्य के रूप में अपना शिरोभूषण स्वीकार कर समाज उनके गौरव के ऐतिहासिक कीर्तिमान को स्थापित करके अपने को धन्य-धन्य बना रहा है।

जैनभवन–आगरा

आर्या सुमति
४–१०–६८

अद्भुत चन्द्रोदय

कुछ जीने वाले भी देखे, जो जीते जी मर जाते हैं।
कुछ मरने वाले भी देखे जो मर के अमर हो जाते हैं॥

संसार में अनेकों प्राणी जन्म लेते और मरते हैं परन्तु जो मनुष्य अपना नाम मरने के बाद भी अमर कर जाते है उनका ही जीवन श्रेष्ठ माना जाता है। मृत्यु के पश्चात् भी उनकी यश चन्द्रिका संसार को प्रकाशित करती है। ऐसे महापुरुषों से चरित्र निर्माण की शिक्षा प्राप्त कर हमें उनके पद चिन्हों पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये।

महापुरुषों की स्मृतियों की अनेक घटनाएं होती हैं। कई पुरुष परोपकार के कारण और कोई त्याग तपस्या के कारण याद किये जाते हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, धैर्य साहस, स्वावलम्बन, अकर्मण्यता का अभाव इत्यादि ऐसे गुण है जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का महान बना देते है। जैसे कहा है :–

दूसरों को जिसने दुनिया मे बनाया कामयाब।
जिन्दगी उसकी है हासिल, उसका जीवन है सफल॥

जो व्यक्ति दूसरों पर दया करता है तथा उनको अपने समान ही समझता है वह सभी से हार्दिक प्रेम करने लगता है। ईर्ष्या द्वेष घृणादि अवगुण उससे दूर हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति विचारों की संकीर्णता से निकल

कर उदार वृत्ति धारण कर लेता है। उसके लिए सम्पूर्ण विश्व परिवार सदृश बन जाता है। वह दूसरों के दुःख में दुःखी और दूसरों के आनन्द में हर्ष अनुभव करता है, ऐसे व्यक्ति का जीवन सफल माना जाता है।

जो व्यक्ति कर्तव्य को भूल जाते हैं और आज के कार्य को कल के लिए टालते रहते हैं वे कभी भी सफलता के दर्शन नहीं कर सकते।
श्री मैथिली शरण गुप्त ने कहा है :—

> कुछ काम करो कुछ काम करो
> जग में रह कर कुछ नाम करो
> यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो
> समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।
> कुछ तो उपयुक्त करो तन को
> नर हो न निराश करो मन को।

सारांश यह है कि उपर्युक्त गुणों के कारण ही राम-कृष्ण-गौतमबुद्ध ईसामसीह गांधी आदि ने सफलता प्राप्त की। ऐसे मनुष्य ही समय की बालू पर अपने पद-चिह्न छोड़ जाते हैं। जो व्यक्ति संसार में आकर श्रेष्ठ कर्म नहीं करते अथवा अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते उनका मृत्यु के पश्चात् कोई नाम तक भी नहीं लेते। समय समय पर ऐसी दिव्य-विभूतियाँ अपने पावन प्रकाश से प्राणिमात्र का समुद्धार करती रही हैं।

हमारे आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी म० का व्यक्तित्व भी इन्हीं दिव्य विभूतियों में से एक है। इन्होंने बाल्यावस्था में ही यह समझ लिया था कि मानव का कल्याण भोग में नहीं, त्याग में है, धन-सम्पत्ति में नहीं, अनन्त ज्ञान में है, हिंसा में नहीं, अहिंसा में है, वैर में नहीं, प्रेम में है।

मेरी श्रद्धा के केन्द्र आचार्य श्री जी ने अपने जीवन को त्याग-तपस्या की कसौटी पर कस कर शुद्ध बनाया है। वे त्याग-तप की मूर्ति और अद्भुत ज्योति प्रदायक हैं। स्फूर्ति उनके अंग-अंग झलकती है। वे निर्भीकता के साक्षात् स्वरूप हैं। आचार्य श्री ने अपूर्व साहस-पराक्रम तथा कर्तव्यनिष्ठा का परिचय दिया है।

वे अनेक प्रकार की विघ्न-बाधाओं के उपस्थित होने पर कभी भी नहीं [illegible] कठिन से कठिन काम करते रहने पर भी कभी [illegible]

[illegible]

करके ही वहाँ से टलते हैं। जैसे कहा है —